अंक 302 वर्ष 61

भाषा

मई–जून 2022

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भारत सरकार

भाषा मई–जून 2022

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. *भाषा* में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

मई–जून 2022
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर नागेश्वर राव

परामर्श मंडल
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित
सुश्री ममता कालिया
प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय
प्रो. पूरनचंद टंडन
प्रो. शैलेंद्र शर्मा
प्रो. सत्यकाम
डॉ. रविशंकर रवि
डॉ. एम. गोविंदराजन
डॉ. जे.एल.रेड्डी

संपादक
डॉ. किरण झा

सह–संपादक
श्रीमती सौरभ चौहान

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **61** अंक : **3** **(302)**
मई–जून 2022

संपादकीय कार्यालय

केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट :www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ईमेल :bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली- 110054
वेबसाइट :www.deptpub.gov.in
ई–मेल : |cop-dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट :www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ईमेल :bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफ़ॉर्मा भर कर भेजें।
3. भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :

1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	(डाक खर्च सहित)
4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5. बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
आपने लिखा
संपादकीय

आलेख

1. अर्थविज्ञान की भारतीय एवं पाश्चात्य परंपरा का आर्थी सिद्धांत	त्रिभुवननाथ शुक्ल	9
2. हिंदी बनाम अन्य भारतीय भाषाएँ: प्रभावात्मक अंतर्संबंध	संध्या वात्स्यायन	20
3. छायावादी काव्यः उद्भव एवं विकास की परिस्थितियाँ	नीलम सिंह	25
4. भाषा और जेंडर	भावना मासीवाल	32
5. उत्तर बंगाल में हिंदी साहित्य का अतीत और वर्तमान	मुन्ना लाल प्रसाद	38
6. वर्तमान शिक्षक शिक्षा में सृजनात्मकता, समायोजन एवं प्रबंधन शैली का महत्व	सुनीता चौधरी एवं विशी शर्मा	52
7. चिंतामणिः समालोचना का बीजक	कृष्ण बिहारी पाठक	58
8. कवि 'निशंक' की रचनाधर्मिता— 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का'	निशा शर्मा	70
9. हिंदी का वैश्विक शिक्षणः कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न	मीरा सरीन	76
10. वृद्धों की सामाजिक—आर्थिक स्थिति और उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति	सविता धामा	86
11. समकालीन विमर्शों के दौर में 'राम' की प्रासंगिकता	मानसी रस्तोगी	91
12. भारतीय समाज का सशक्त स्वर : सिनेमा	कुमारी उर्वशी	95

यात्रा वृत्तांत

13. धौलाधार पर्वत श्रृंखला की गोद में स्थित—बौद्ध आध्यात्मिकता का प्रवेश द्वार —रमणीय पर्वतीय स्थल मैकलोडगंज (मिनी ल्हासा)	प्रदीप शर्मा 'स्नेही'	102

हिंदी कहानी

14. अफसोस के लिफाफे	सुमन बाजपेयी	109
15. दहशत	भगवान अटलानी	115
16. सबरस	अजय मलिक	120
17. बड़ी—बड़ी आँखें	रामदरश मिश्र	125

हिंदी कविता

18. महान ऋषिवरः मानव उद्धारक स्वामी दयानंद सरस्वती	नरेश कुमार	130
19. उस दौर में	देवेंद्र कुमार मिश्रा	131
20. कल्पवृक्ष	हेमंत गुप्ता	132

अनूदित खंड

कहानी

21. तिम्मा (मराठी कहानी)	प्रकाश ज्ञानोबा जाधव अनुवादः सुनीता मोटे	133
22. बेटी लौट आई (ओड़िया कहानी)	गौरहरि दास अनुवादः सुरभि बेहेरा	137

कविता

23. सृष्टि, जीवन और मानव (डोगरी/हिंदी)	अनुवादः कृष्ण शर्मा	146

परख

24. स्त्री–जीवन और समकालीन यथार्थ को अभिव्यक्ति देती ग़ज़लें (आँगन का शजर /ग़ज़ल संग्रह/लेखक– ममता किरण)	कमलेश भट्ट कमल	148
25. कुछ आखिरी नहीं होताः जीवन की अक्कासी (कुछ आखिरी नहीं होता/कविता संग्रह/लेखक– ओम प्रकाश शर्मा)	स्नेह सुधा नवल	155
26. समय को सही परिप्रेक्ष्य देने की कोशिश (गांधी को समझने का यही समय/ लेखक : जगमोहन सिंह राजपूत)	जितेंद्र श्रीवास्तव	158

संपर्क सूत्र 160

सदस्यता फॉर्म

निदेशक की कलम से

सहज स्वाभाविक रूप से फैलने वाला सूर्य का प्रकाश, चाँदनी की शीतलता, नदी का जल और वृक्ष पर लदा फल अनवरत बिना किसी वर्जना के सदैव सबके कल्याणार्थ वितरित होता है। यही है जीवन का परम सौंदर्य। हमें इनसे सदैव सीख मिलती है कि 'वृक्ष कबहु नहीं फल भखै, नदी न संचै नीर परमारथ के कारने साधु ने धरा शरीर' परमार्थ और लोकोपकार से प्राप्त होने वाली अनुभूति वर्णनातीत होती है। जीवन, सभ्यता और संस्कृति एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। भाषा और साहित्य युग्म है उस विशाल धरोहर का जो युगों से संघर्षों का सामना करते हुए उन पर विजय प्राप्त करते यहाँ तक पहुँचा है। लेखन क्रिया या रचनाशीलता समाज और परिवेश में व्याप्त लेखकीय अनुभूति का प्रकटीकरण होता है। अर्थात् रचनाकार जो भी सर्जना करता है वह व्यक्ति और समष्टि का समुच्चय होता है। भाषा पत्रिका के मई–जून 2022 अंक में रचनाधर्मिता के इन्हीं रंगों से भरपूर विभिन्न आलेख, कहानियाँ, कविताएँ, अनूदित भारतीय साहित्य और पुस्तक समीक्षा से पूर्ण यह अंक शोधार्थियों, अध्येताओं एवं विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे असीम प्रसन्नता हो रही है। भाषा परिवार सदैव आपके सुझावों का स्वागत करता है। ताकि आगामी अंकों को और भी उपयोगी और ज्ञानवर्धक बनाया जा सके।

इस अंक में सम्मिलित की गई सामग्री हेतु रचनाकारों, लेखकों का एवं भाषा परिवार के सदस्यों का आभार जिनके सहयोग से इस अंक का प्रकाशन संभव हो पाया।

जय हिंद!

(नागेश्वर राव)

माँ

मैं नहीं जानता
क्योंकि नहीं देखा है कभी
पर, जो भी
जहाँ भी लीपता होता है
गोबर के घर–आँगन
जो भी
जहाँ भी प्रतिदिन दुआरे बनाता होता है
आटे कुंकुम से अल्पना

जो भी
जहाँ भी लोहे की कड़ाही में छौंकता होता है
मैथी की भाजी,
जो भी
जहाँ भी चिंता भरी आँखें लिए निहारता होता है
दूर तक का पथ
वही,
हाँ वही है माँ!!

नरेश मेहता

संपादकीय

बहुत तेजी से विकसित देश और दुनिया में व्यापक परिवर्तन हो रहे हैं कुछ बहुत सुखद तो कुछ अत्यंत आहत करने वाले अनुभव होते हैं। भारतवर्ष विश्वपटल पर अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित किए हुए है और निरंतर अपनी विशिष्टता को खास और मजबूत बना रहा है। मनुष्य और मनुष्यता दोनों का विकास और रूप परिवर्तन एक निरंतर प्रक्रिया है। दोनों का समानुपातिक संतुलन प्रगति की दिशा में शायद अस्थिर ही हो रहा है। संतुलन कायम रहना अत्यंत अनिवार्य है, न्याय की देवी के हाथों में तुला है और आँखों पर पट्टिका। यह पट्टिका संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी प्रकार के मोह, मद, मत्सर की दृश्यता से दूर मात्र तुला पर ध्यान केंद्रित रहता है। और तब निर्णय का संतुलन विकसित हो पाता है। यदि दृष्टि और सोच को दूर, दिंगत की ओर विकसित करें तो पाएँगे चारों ओर सब कुछ के पार विशाल शून्य और शांति है कोई कोलाहल नहीं किसी प्रकार की स्पर्धा नहीं। स्पर्धा की गति द्रुत से मंद और शिथिल होती हुई विलीन हो जाती है। और रह जाता है मनुष्य का मन, हृदय और मस्तिष्क की कोमल अनुभूति। हमारा देश भौतिक समृद्धि को कभी सर्वोपरि स्वीकार नहीं करता, मानव मूल्यों का अंगीकार मूलभूत और समावेशी घटक है।

मानव मूल्यों की स्थापना और उसकी समृद्धि के चतुर्दिक हमारी पूरी प्रणाली विकसित होती है। भाषा और साहित्य का योगदान इस दिशा में प्रभावशाली भूमिका निभाता है। भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में समाहित समाज और संस्कृति के सौंदर्य को समेटते हुए भाषा के इस नवीन अंक को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है। यह अंक सुधी पाठकों के मस्तिष्क को सृजनशील आधारभूमि प्रदान कर नई अनुभूति प्रदान करेगा ताकि व्यक्ति, मनुष्य मात्र का हितैषी बने। अशांति के परिदृश्य में शांति का वरण करे। मई–जून 2022 अंक को तैयार करने में सहयोग करने वाले सभी लेखकों, विद्वानों, शोधार्थियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिसके फलस्वरूप यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत हो पाया। आगामी अंकों को और उपादेय बनाने हेतु आपके सुझावों का सदैव स्वागत है।

किरण

(किरण झा)

आपने लिखा

भाषा का राम तत्व मीमांसा विशेषांक स्तरीय और पठनीय है, नए और वरिष्ठ लेखकों के सहयोग से राम, रामकथा, रामायण से जुड़े अनेक पक्षों पर प्रकाश ज्ञानवर्धक है। प्रो. आदेश के महाकाव्य पर पहली बार विस्तार से पढ़ने को मिला। सीता और अयोध्या–केंद्रित आलेख भी गंभीर और प्रमाण पुष्ट हैं। इस अंक के स्तरीय संपादन के लिए संपादक–द्वय को बधाई।

वेद प्रकाश अमिताभ

भारतीय एवं विश्व–सिनेमा विशेषांक : 'भाषा' का आयोजन

'भाषा' पत्रिका का 'भारतीय एवं विश्व सिनेमा' का यह विशेष–अंक इसी परंपरा में पूर्व प्रकाशित 'आजकल' का ज्ञानोदय' 'वर्तमान–साहित्य', 'आउटलुक' और 'नया पथ' के विशेषांकों के सरोकारों को और समृद्ध करता अंक है। 19वीं शताब्दी के आठवें दशक से प्रारंभ 'भाषा की यह बौद्धिक–वैचारिक यात्रा मूलतः भारतीय सिनेमा के अंचलों और हिंदी भाषी चलचित्रों की विकास–यात्रा के शोध पर केंद्रित है। वैश्विक–जगत में भारतीय सिनेमा को रेखांकित करते एकाध लेख भी दिए गए हैं। किंचित–ग्लोबल दृष्टि और स्तर से उसे आँका नहीं गया है। हिंदुस्तानी 'पारसी थिएटर' से जन्मे सिनेमा के मूक युग और बोलती तस्वीरों में विकसित होते रहे, समाये सिनेमा, उसके अप्रतिम सिने–पंडितों, गीतकारों, सफल अभिनेता–अभिनेत्रियों, धुनों–गीतों, मौसिकारों तथा निर्माता–निर्देशकों के रचाव की कला–भूमियों का यहाँ बोलबाला है। स्मृति–खंड मे बिछड़ गई तीन प्रतिभाओं इरफान, ऋषि कपूर, सुशांत सिंह राजपूत की सुनहरी यादों में– अजय मलिक की लेखनी ने इरफान की प्रतिभा और पूर्वदीप्ति का कारुणिक–शैली में हार्दिक विवेचन किया है। ऋषि कपूर (विनोद अनुपम) और सुशांत राजपूत (नीति सुधा) के रचे गए एहसास भी कारगर सिद्ध हुए हैं। युगीन गीतकारों में शैलेंद्र के साहित्यिक महत्व और चलचित्रों के गगन में उनकी गूँज का भी एहसास कराया गया है। गुलजार के गीतों के जीवन–रंग और (विभिन्न–छवियों को उद्घाटित किया गया है। नए विषयों में 'भूमंडलीकरण' (पृष्ठ 68), 'सिनेमा–समाज' (पृष्ठ 114), 'बाल–मन' के नवदूत सिनेमा की चर्चा भी विचारणीय प्रस्तुति है। आधुनिक फिल्म व्यवसाय, 'बदलते ट्रेंड', 'किन्नर विमर्श' ध्यान आकर्षित करते विषय हैं। शेक्सपीयर की कृतियों पर बनी फिल्मों का जिक्र और आंचलिक सिनेमा का जखीरा खोजना सब अपनी सुविधा से किया गया है। उल्लेखनीय यह है कि इस विशेषांक में सिनेमा को भी साहित्य की कोटि का सा मान दिया गया है। उसके वलय में समाहित सिने–संसार के विविध रूपकों की ज्यादातर बौद्धिक–परख बुद्धिजीवियों और आचार्य कोटि के विद्वानों ने की है रचनाकार के रूप में सिनेमा के सारथि यहाँ बहुत कम हैं। यूँ हिंदी–सिनेमा के अलवा मलयाली, भोजपुरी, गुजराती, कॉकबरक सिनेमा तथा मणिपुरी, असमिया फिल्मों का यह अनुशीलन और भूपेन हजारिका के योगदान का उल्लेख भी नया–नया सा है। विशुद्ध साहित्यिक समाजों की संगत करती आ रही और अकादमी–दायरों तथा विश्वविद्यालयी शोध के प्रबंधों की भी मार्मिक–पड़ताल करती आ रही बहुमुखी ज्ञानधाराओं की कोई प्रमुख पत्रिका जब ऐसे नवीन–प्रयास करती है तो यह हतप्रभ करती है।

प्रताप सिंह

अर्थविज्ञान की भारतीय एवं पाश्चात्य परंपरा का आर्थी सिद्धांत

त्रिभुवननाथ शुक्ल

अर्थविज्ञान के क्षेत्र में भारत और पाश्चात्य देशों में अनेक दार्शनिकों तथा वैयाकरणों ने आर्थी–सिद्धांत निश्चित करने का प्रयास किया है। भारत में इसी आधार पर अनेक मतों का प्रचलन हुआ, जिसमें नैयायिक, सांख्यिक, मीमांसक, वेदांती, जैन तथा बौद्धप्रमुख थे और वैयाकरणों में व्याडि, वैशंपायन, पंतजलि तथा भर्तृहरि। पाश्चात्य देशों में 18वीं शताब्दी से ही भाषा के अध्ययन में अर्थ को महत्व दिया जाने लगा था, परंतु अब कुछ वर्षो से अर्थ सिद्धांत और आर्थी संरचना के मॉडल[1] भी प्रस्तावित किए जाने लगे हैं।

अर्थ–विज्ञान के क्षेत्र में दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों तथा भाषा वैज्ञानिकों ने कार्य किया है। परिणामस्वरूप इसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक हो गया है। पिछले वर्षों में, विशेष रूप से, पाश्चात्य देशों में बर्टेन्ड रसेल, अरबेन, आयर, बिटगैन्सटाइन और कैसी रैर आदि दार्शनिकों, कार्नेप सरीखे तर्कशास्त्रियों, पाल, कुंट, पिल्सवरी और कोहलत आदि मनोवैज्ञानिकों, मैलिनौस्को और सीपर आदि समाजशास्त्रियों, रिचर्डस, ऐम्पसन आदि आलोचकों और विअल, अर्डमैन, यसपर्सन, सस्यर, आकडन, ईस्टर्न, गार्डिनर, फर्थ, उलमैन आदि भाषा वैज्ञानिकों ने अर्थ की समस्या का अध्ययन किया है। भारत में ही भर्तृहरि, कुमारिलभट्ट और आनंदवर्धन जैसे महाविचारकों ने अर्थ की समस्या पर विचार किया था।

विषय की प्रकृति की दृष्टि से अर्थ की समस्या का अध्ययन तीन रूपों में किया गया है– व्युत्पत्यात्मक, सैद्धांतिक तथा विश्लेषणात्मक। व्युत्पत्यात्मक अध्ययन के अंतर्गत व्युत्पत्ति दृष्टि से शब्दों के अर्थ का निर्धारण, कालांतर मेंशब्दों के अर्थ में होने वाले परिवर्तन तथा अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया, उसके प्रकार तथा कारणों का अध्ययन किया गया। इस दृष्टि से अर्थ का अध्ययन करने वाले भारतीय मनीषियों में यास्क, कात्यायन तथा पंतजलि प्रमुख हैं।

सैद्धांतिक अध्ययन के अंतर्गत– अर्थ क्या है? शब्द का स्वरूप क्या है? शब्द और अर्थ का क्या संबंध है? आदि प्रश्नों पर विचार किया गया है। इस दृष्टि से अर्थ का अध्ययन भारत तथा पाश्चात्य देशों में किया गया है जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है।

'अर्थ तत्व' का विश्लेषणात्मक अध्ययन भाषावैज्ञानिक अध्ययन मानकर किया गया है जिसे 'भाषावैज्ञानिक अर्थविज्ञान' की संज्ञा दी गई है। इस क्षेत्र के विचारकों में फर्थ, अरबैन, लायन्स, उलमैन, फाडर, काट्ज और फिलफोर प्रमुख हैं।

फर्थ ने 'अर्थ' का कार्यकारी विश्लेषण प्रस्तुत किया। आपने ध्वनि के स्तर पर आर्थी विश्लेषण के योग को लघु माना पर शब्द तथा वाक्य के स्तर पर इसे महत्व दिया।

अर्थविज्ञान के कार्य के संबंध में प्रो. फर्थ[2] का कहना है कि जब ध्वनि शास्त्री, वैयाकरण

तथा कोश–निर्माता अपना काम समाप्त कर लेते हैं तब इन तीनों के निष्कर्षों का प्रयोग करते हुए वह भाषा का आर्थी विश्लेषण तथा वर्णन करता है। आपके अनुसार वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का विशेष उद्देश्य अर्थतत्व संबंधी तथ्यों की खोज करना है। अरबैन[3] अर्थविज्ञान का क्षेत्र अत्यंत व्यापक मानते हैं। इनके अनुसार 'भाषा वैज्ञानिक अर्थविज्ञान'में अंतर व्याकरण संबंधी संबंध, पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान तथा शब्दों का अर्थ सभी सम्मिलित हैं।

प्रोफेसर लायंस[4] के अनुसार भाषावैज्ञानिक अर्थविज्ञान के अंतर्गत ध्वनि के स्तर पर आर्थी विश्लेषण का कोई महत्व नहीं है। प्रो. हैरिस[5] से उद्धरण देते हुए उन्होंने कहा कि ध्वनिग्रामिक स्तर पर अर्थ की समानता तथा भिन्नता के अतिरिक्त अन्य कोई आर्थी संबंध सार्थक नहीं है और ध्वनिग्रामिकी आर्थी समानता व्यर्थ है। उलमैन[6] अर्थविज्ञान का संबंध शब्द तथा वाक्य दोनों से मानते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'भाषावैज्ञानिक अर्थविज्ञान' का संबंध शब्द तथा वाक्य से है, ध्वनि से नहीं। पर शब्दों के अर्थों का अध्ययन इस रूप में होना चाहिए कि उससे उनके वाक्य संरचनात्मक आर्थी संबंध स्पष्ट हो सकें। इस संबंध में प्रो. उलमैन[7] ने एक अत्यंत उपयोगी तथ्य की ओर संकेत किया है कि आर्थी विश्लेषण का ऐसे शब्दों से कोई संबंध नहीं है जो तकनीकी है या गाली के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

अर्थ का तात्पर्य

अर्थ का तात्पर्य क्या है? यह प्रश्न प्राचीन काल से भारत तथा पाश्चात्य देशों के अनेक विद्वानों का ध्यान आकर्षित करता रहा है। भारतवर्ष में अर्थ का अध्ययन करने के लिए दो विचारधाराएँ प्रचलित थीं–

1. खंड पक्ष (अनित्य)
2. अखंड पक्ष (नित्य)

खंड पक्ष के अंतर्गत शब्द को महत्व दिया गया है और अखंड पक्ष के अंतर्गत वाक्य को। खंड पक्ष के अंतर्गत अनेक स्वतंत्र विद्वानों तथा विभिन्न विचारधाराओं को मानने वाले विद्वानों ने इस समस्या का अध्ययन किया। यास्क, पाणिनि, कात्यायन और पंतजलि ने शब्दों के अर्थों का व्युत्पत्यात्मक अध्ययन किया। मीमांसकों ने वाक्य के संदर्भ में शब्द के अर्थ का अध्ययन किया और शब्दार्थ और वाक्यार्थ में परस्पर संबंध खोजने का प्रयास किया। मीमांसकों के 'भट्ट संप्रदाय' और नैयायिक वैयाकरणों ने भी शब्द को महत्व दिया और अभिहितान्वयवादी सिद्धांत के अनुसार शब्द के अर्थ का अध्ययन किया। मीमांसकों के 'प्रभाकर संप्रदाय' ने व्यक्ति की भाषा की इकाई के रूप में वाक्य को स्वीकार किया और सामान्य भाषा की इकाई के रूप में शब्द को। इन्होंने 'अन्विताभिधान' सिद्धांत के अनुसार शब्दार्थ का अध्ययन किया। श्री के.के. राजा[8] के अनुसार इन दोनों ने आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि को शब्दों के वाक्य संरचनात्मक संबंधों के आधार के रूप में माना है और शब्दार्थ के लिए प्रासंगिक तथ्यों और वक्ता के प्रयोजन को भी महत्वपूर्ण माना है। खंड पक्ष के अंतर्गत औदुंबरायण और अखंड पक्ष के अंतर्गत भर्तृहरि और वर्तास के नाम उल्लेखनीय हैं। भर्तृहरि ने वाक्य को भाषा की ईकाई माना (एकोनव्यासशब्दः) और स्फोटवाद के अनुसार अर्थ को वाक्य की स्वप्रेरित प्रतिभा माना है।

पाश्चात्य देशों में भी अनेक विद्वानों ने अर्थ के सिद्धांत पक्ष का अध्ययन किया। उनमें से सूसर, गार्डिनर, आकडन, रिचर्डस, फर्थ, उलमैन, लायन्स, गमबूज तथा अर्डमैन आदि ने अर्थ के सैद्धांतिक पक्ष का अध्ययन शब्द के स्तर पर किया जबकि आधुनिक विद्वान चोमस्की काट्ज, फॉडर तथा साउथबर्थ आदि विद्वान इसका अध्ययन वाक्य के स्तर पर करने के पक्ष में हैं। इन सभी विद्वानों के लिए शब्द का अर्थ उनके द्वारा मान्य भाषा के स्वरूप के अनुसार रहा।

फर्थ[9] ने शब्द के अर्थ के दो आधार बताए–

1. शब्दों का सह संबंध 2. प्रकरण

आपने इन दोनों आधारों में अंतर किया और यह बताया कि सह संबंध पर आधारित शब्द का अर्थ शब्द की संकल्पना के अंतर्गत नहीं आता। पर शब्द के अर्थ के लिए आपने 'प्रकरण' के महत्व को स्वीकार किया। प्रो. लायन्स[10] ने अर्थ को व्यापक माना और उसके अंतर्गत शब्द के अर्थ का संबंध यथार्थ जगत के 'वस्तु और विचार' से भी स्वीकार किया। प्रो. आकडन और रिचर्डस[11] ने अर्थ को शब्द और वस्तु दोनों से संबंधित माना है। सस्यूर के मतानुसार अर्थ का रूप मानसिक है और यह आवश्यक नहीं है कि उससे संबंधित कोई वस्तु यथार्थ संसार में विद्‌यमान हो। इस प्रकार की धारणा बौद्‌धों के विज्ञानवादी संप्रदाय की भी रही है। पाश्चात्य विद्‌वानों में अर्डमैन और भारतीय विद्‌वानों में आनंदवर्धन दोनों ने अर्थ का अत्यंत व्यापक रूप स्वीकार किया। अर्डमैन[12] के अनुसार अर्थ के अंतर्गत केंद्रीय अर्थ, प्रासंगिक अर्थ तथा अर्थ का भावनात्मक पक्ष तीनों सम्मिलित हैं। इसी प्रकार आनंदवर्धन[13] ने अर्थ के अंतर्गत ज्ञानात्मक, तर्कसंगत तथा भावनात्मक तत्व सम्मिलित किए हैं और उसके निर्धारण में प्रकरणात्मक तत्वों को भी महत्वपूर्ण माना है।

शब्द और शब्दार्थ

इन संकल्पनाओं को स्पष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न है–शब्द का स्वरूप क्या है? शब्दार्थ का स्वरूप क्या है? तथा शब्द और अर्थ का परस्पर संबंध क्या है? इन प्रश्नों पर आगे (क) शब्दका स्वरूप (ख) शब्दार्थ का स्वरूप (ग) शब्द और अर्थ का संबंध, शीर्षकों के अंतर्गत विचार किया गया है।

(क) शब्द का स्वरूप

विभिन्न विद्‌वानों द्‌वारा मान्य शब्द का स्वरूप उनके द्‌वारा मान्य भाषा के स्वरूप पर निर्भर है। पाश्चात्य विद्‌वानों में सस्यूर, गार्डिनर[14] और कैसीटैर आदि तथा भारतीय विद्‌वानों में भर्तृहरि और पतंजलि आदि तथा नैयायिक और मीमासंक विद्‌वानों के अनुसार शब्द एक मानसिक प्रत्यय है। फैट, जोन्स और ब्लूम फील्ड शब्द को ध्वनि रूप मानते हैं आकडन और रिचर्डस के अनुसार शब्द, वास्तु और मानसिक दोनों हैं। ग्यूलोमे के लिए शब्द मानसिक और ध्वन्यात्मक दोनों हैं। फर्थ शब्द को वास्तु, मानसिक और ध्वन्यात्मक तीनों रूप में देखते हैं। पर अधिकतर विद्‌वानों ने शब्द का रूप मानसिक तो माना ही है।

(ख) शब्दार्थ का स्वरूप

शब्द के अर्थ के संबध में विद्‌वानों में अनेक मत प्रचलित हैं जिनका वर्णन सार के रूप में के.के राजा[15] ने अपनी पुस्तक में किया है। यों तो शब्द के अर्थ की समस्या ही इतनी व्यापक है कि इस पर अनेक शोध प्रबंध लिखे गए हैं परंतु वहाँ शब्द के अर्थ के संबंध में प्रमुख विचारधाराओं को प्रस्तुत किया गया है और उनके अनुसार शब्द और अर्थ का स्वरूप निर्धारित किया गया है। वेदांती, मीमांसक, नैयायिक तथा जैन विचारधाराओं से संबंधित विद्‌वानों तथा भर्तृहरि और पतंजलि आदि भारतीय विद्‌वानों और फर्थ आदि अनेक पाश्चात्य विद्‌वानों की मान्यता यह है कि शब्द का केंद्रीय अर्थ ही मान्य अर्थ है। मीमांसकों[16] के अनुसार शब्द का मुख्य अर्थ सामान्य अर्थ है जो उस जाति के विशेष उदाहरणों का एक आवश्यक गुण है। जैमिनि, कुमारिल भट्ट, प्रभाकर और मुरारि आदि मीमांसक तथा शंकर आदि वेदांतियों ने इस सामान्य अर्थ के लिए 'आकृति' शब्द का प्रयोग किया और बाद के लेखकों ने 'जाति' शब्द का। जैन दार्शनिकों[17] के अनुसार शब्द के अर्थ का रूप सामान्य है। उनका कहना है कि प्रायः शब्द का अर्थ विशेष 'गाय' नहीं है अपितु गाय शब्द के अर्थ में गाय के रूप जैसी सभी पशुओं की संकल्पना निहित है।

भारतीय विद्‌वान भर्तृहरि[18] के अनुसार भी शब्द का अर्थ सामान्य (जाति) है, विशेष (व्यक्ति) नहीं। पतंजलि शब्द के सामान्य अर्थ

के संबंध में कहते हैं कि सामान्य अर्थ विशेष प्रसंगों में विभिन्न तत्वों से प्रभावित होते हुए भी अपना गुण नहीं खोता। (यस्य गुणानतरेस्तापि प्रादुभावत्सु त्वम् न विहन्यते तद् द्रव्यम्) प्रो. फर्थ[19]शब्द के दो रूप मानते हैं– एक सामान्य, जो वास्तविक है और दूसरा– विशेष, जो अनेक प्रसंगों में आ उपस्थित होता है। वे केंद्रीय अर्थ को बीज रूप में मानते हैं, जिससे अनेक प्रासंगिक अर्थों की उद्भावना होती है।

शब्दार्थ की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता उसकी व्यापकता है। उलमैन, फर्थ तथा के.के राजा आदि अनेक विद्वानों ने अर्डमैन और आनंदवर्धन द्वारा प्रस्तावित शब्द के अर्थ की व्यापकता की पुष्टि इस रूप में की है कि उन्होंने शब्द के अर्थ के भाव पक्ष को केंद्रीय अर्थ माना है।

उलमैन[20] के अनुसार शब्दों का वास्तविक अर्थ उतना ही भावनात्मक होता है, जितना कि ज्ञानात्मक और यह भावना पक्ष शब्द के साथ जुड़ा रहता है, जो पर्यायवाची शब्दों के संदर्भ में मुखरित होता है। फर्थ[21] के अनुसार शब्दों में मात्र मीठा, मधुर ध्वन्यात्मक संगीत ही नहीं होता, अपितु उनमें विचार, भावना और आध्यात्मिकता भी विद्यमान रहती है। श्री के. के. राजा के अनुसार शब्द का अर्थ व्यक्तिनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ दोनों होता है। शब्द के संदर्भ में तीसरा महत्वपूर्ण प्रश्न है– अर्थ किस प्रकार निर्धारित होता है? इस संबंध में फर्थ का प्रकरण सिद्धांत प्रधानतया मान्य है। आपका कहना है कि भाषा के आर्थी विश्लेषण के लिए प्रकरण का निर्माण करने वाले यथार्थ जगत के 'वस्तु और विचार' का विश्लेषण करना आवश्यक नहीं, परंतु उनसे निर्मित प्रकरण के संदर्भ में आर्थी विश्लेषण करना उपयुक्त है। शब्द के स्तर पर भाषा का आर्थी विश्लेषण करने के लिए वाक्य में निहित प्रकरण पर्याप्त है। इससे आगे प्रकरण का विश्लेषण समाज भाषाविज्ञान का विषय है, विश्लेषणात्मक भाषा–विज्ञान का नहीं।

शब्दार्थ के लिए भारतीय विद्वानों ने भी प्रकरण को आवश्यक माना है। श्री के.के. राजा[22] ने अपनी पुस्तक में भर्तृहरि द्वारा बताए प्रकरण में तत्वों का वर्णन किया है तथा उन्होंने उन तत्वों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है– व्याकरण संबंधी, संकल्पना संबंधी तथा प्रकरण संबंधीं। भर्तृहरि द्वारा प्रस्तावित ये आर्थी तत्व इतने व्यापक हैं कि उनके अंतर्गत फर्थ के प्रकरण संबंधी सभी तत्व आ जाते हैं।

नैयायिक और मीमींसकों के भट्ट संप्रदाय के अनुयायी यह मानते हैं कि वाक्य का अर्थ समझने के लिए पहले हम शब्दों के एकांतिक अर्थ का प्रतिस्मरण करते हैं और साथ–साथ स्मृति हमें संपूर्ण वाक्य का अर्थ समझने में सहायता देती है।

बाह्य संरचनात्मक दृष्टि से संबंधित शब्दों के अर्थ ही वाक्य का अर्थ निर्धारित करते हैं। इस प्रकार की धारणा पाश्चात्य विद्वान फॉडर और काट्ज[23] की भी है। वे ऐसे ही वाक्यों से संबंधित तथ्यों की व्याख्या करने के लिए अर्थ सिद्धांत के अंतर्गत आर्थी विश्लेषण से युक्त कोश का होना आवश्यक मानते हैं। जिनकी व्याख्या व्याकरण नहीं कर पाता।

शब्द के अर्थ और वाक्य रचना के संदर्भ को श्री के.के. राजा[24] ने स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि वाक्य में शब्दों का अपना अर्थ होता है, परंतु वाक्य के अंतर्गत संरचनात्मक संबंध,शब्दों द्वारा नहीं,शब्दों के अर्थों के द्वारा निभाया जाता है।

शब्द के आर्थी अध्ययन के लिए आवश्यक प्रकरण को संपूर्णता के संबंध में प्रो. लायन्स[25] ने शब्द भंडार के अंतर्गत मुक्त वर्ग तथा अमुक्त वर्ग को भिन्न दृष्टि से देखा है। आपका कहना है कि 'प्रकरण' की पूर्णता शब्द भंडार के अंतर्गत अमुक्त वर्ग पर तो लागू होती है, पर मुक्त वर्ग के साथ प्रकरण की मुक्तता पर बंधन उस रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि मुक्त वर्ग की दृष्टि

से भाषा बँधी नहीं है। प्रो. लायन्स इस बात से सहमत हैं कि शब्द भंडार के अंतर्गत मुक्त वर्ग से संबंधित सामग्री यथा क्रिया, संज्ञा आदि शब्दों के आर्थी विश्लेषण में वर्तमान प्रकरण से ही संतुष्ट रहना होगा, क्योंकि वस्तु और विचार की दृष्टि से यथार्थ जगत परिवर्तनशील है। भविष्य की दृष्टि से प्रकरण की पूर्णता केवल सर्वनाम, अव्यय जैसे अमुक्त वर्ग के शब्दों में काफी सीमा तक स्वीकार की जा सकती है।

(ग)शब्द और अर्थ का संबंध–

भारत तथा पाश्चात्य देशों में, विशेषतया ग्रीक और फ्रांस में इस संबंध में विचार किया गया है। फर्दनान्द सस्यूर और भारत के विद्वानों के विचार इस संबंध में बहुत मिलते–जुलते हैं। सस्यूर शब्द और अर्थ का स्थायी संबंध मानते हैं और वे शब्दार्थ के अध्ययन के लिए यथार्थ जगत को वस्तुओं एवं विचारों से निर्मित्त प्रकरण के अध्ययन को महत्वपूर्ण नहीं मानते।

भारत में शब्द और अर्थ के परस्पर संबंध से संबंधित दो विचारधाराएँ रहीं हैं– एक मीमांसक और दूसरी नैयायिक। मीमांसक शब्दऔर अर्थ के संबंध को प्राकृतिक मानते हैं जिसे वे शब्द का आंतरिक सामर्थ्य अथवा 'योग्यता' कहते हैं।[26] नैयायिक विद्वान इस संबंध को 'प्राकृतिक' न मानकर परंपरागत मानते हैं। प्रो. उलमैन[27] भी शब्द और अर्थ के संबंध को परंपरागत मानते हैं। ग्रीक विचारधारा[28] में यह माना जाता है कि आदि मानव ने वस्तु की आंतरिक विशेषता और अपने पर पड़ा उस वस्तु का मनोवैज्ञानिक प्रभाव इन दोनों के आधार पर वस्तुओं को नाम दिए हैं।

शब्द और अर्थ के संबंध में दूसरी विशेषता यह है कि यह संबंध 'सह अस्तित्व' के रूप में एक आवश्यक संबंध है। उलमैन[29] के अनुसार प्रो. वेनवेनिस्टे भी इसके समर्थक हैं।

इस संबंध में तीसरी विशेषता 'नित्यता' है। भर्तृहरि के अनुसार संकेत दो प्रकार का होता है– अजानिका अथवा स्थायी और आधुनिक। इसमें से प्रथम स्थायी और मूलसंबंध है जबकि दूसरे का संबंध तकनीकी शब्दों से है जिनकी रचना तकनीकी विषयों पर विचार अभिव्यक्त करने के लिए की जाती है। इस संबंध की चौथी विशेषता यह है कि इनका आधार लोक व्यवहार है, व्युत्पत्ति नहीं।

आर्थीविश्लेषण तथा आर्थी संरचना–

अर्थविज्ञान तथा अर्थ संबंधी उपयुक्त चर्चा के आधार पर आर्थी संरचना तथा आर्थी विश्लेषण की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रस्तावित की जा सकती हैं–

(1)व्याकरणिक संरचना के समान प्रत्येक भाषा की आर्थी संरचना का अध्ययन किया जाना चाहिए। प्रो. लायन्स[30] के अनुसार अब भाषा वैज्ञानिकों के द्वारा सामान्यतः यह स्वीकार भी किया जाता है। किसी भाषा की आर्थी संरचना शब्दों और वाक्यों के आर्थी विश्लेषण द्वारा प्राप्त आर्थी संरचनाओं पर आधारित है। पर समग्र रूप में आर्थी संरचना की खोज करने के पूर्व भाषाविज्ञान के विभिन्न अंगों से संबंधित सीमित क्षेत्र यथा शब्द भंडार के अंतर्गत क्रिया, संज्ञा अथवा विशेषण शब्दों का आर्थी विश्लेषण तथा उसकी आर्थी संरचना का अध्ययन करना संभव है।

(2) आर्थी विश्लेषण और संरचना का अध्ययन वाक्य औरशब्द दोनों स्तरों पर संभव है।वाक्य के स्तर पर इस प्रकार का अध्ययन चेमस्की, फॉडर तथा काट्ज आदि विद्वानों द्वारा प्रस्तावित किया गया है। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन अंग्रेजी, हिंदी और जापानी क्रियाओं के संबंध में प्रो.एडवर्ड हरमैन वैडिक्स द्वारा किया गयाहै, परंतु सामग्री की दृष्टि से यह अत्यंत सीमित है। शब्द के स्तर पर शब्दों के अर्थ के आधार पर वर्गीकृत समानार्थी, अनेकार्थी, विपरीतार्थक शब्दों का अध्ययन दो या दो से अधिक शब्दों के अर्थों के संबंधों का अध्ययन है, जबकि अनेकार्थी शब्दों का

अध्ययन प्रत्येक शब्द का पृथक–पृथक एवं स्वतंत्रअध्ययन है। प्रो. लायन्स[31] के अनुसार इन सभी प्रकार के शब्दों का अध्ययन अर्थविज्ञान के अंतर्गत आता है।

(3) भाषा के किसी भी अंगकी आर्थी संरचना ज्ञात करने के लिए किया जाने वाला आर्थी विश्लेषण तथा व्याख्या सामान्य कोश से भिन्न है। कोश में शब्दों का व्यापक अर्थ नहीं दिया जाता। उसमें अर्थ के संबंध में इस प्रकार की सूचना नहीं दी जाती जो वाक्य संरचना की दृष्टि से सहायक एवं उपयोगी होती है। उसमें शब्दों के अर्थ का भावनात्मक पक्ष भी उपेक्षित रहता है। इसके अतिरिक्त कोश में शब्दों के केवल अर्थ और व्याकरणिक संकेत दिए जाते हैं। विश्वकोश में शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिएयथार्थ जगत के वस्तु विचार की सहायता की जाती है, परंतु उपर्युक्त दोनों में से किसी भी प्रकार के कोश में भावनात्मक पक्ष तथा वाक्य संरचनात्मक संबंधी तथ्यों के संबंध में कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती। कोश में शब्दों के अनेक अर्थ दिए जाते हैं, जबकि आर्थी विश्लेषणशब्द के केवल केंद्रीय अर्थ पर आधारित होता है। कोश में प्रत्येक शब्द का अर्थ असंबंध रूप में दिया जाता है। परिणामस्वरूप, प्रयोक्ता को दूसरे शब्दों के संदर्भ में किसी एक शब्द को समझने की सुविधा प्राप्त हो जाती है। प्रो. उलमैन[32] के अनुसार अर्थ–वैज्ञानिक का कार्य कोशाकार के कार्य से भिन्न है। कोशाकार का कार्य प्रत्येक शब्द के संबंध में पृथक–पृथक सूचना देता है जबकि 'अर्थविज्ञान' शब्द का आर्थी विश्लेषण करता है और उसकी सहायता से व्यतिरेक तथा वितरण के सिद्धांतों के आधार पर उनके अर्थ की समानता और असमानता को ध्यान में रखते हुए उनका वर्गीकरण करता है। सामान्य कोश में शब्दों के किसी प्रकार के वर्ग अथवा उपवर्ग नहीं बनाए जाते। निःसंदेह पर्यायवाची कोश में वास्तु जगत के वर्गीकरण पर आधारित शब्दों का वर्गशः प्रस्तुतीकरण तो होता है, परंतु उनमेंकेवल वर्ग मात्र दिए जाते हैं, शब्दों का आर्थी विश्लेषण नहीं। परिणामतः उन वर्गों में दिएगएशब्दों की आर्थी समानता तथा असमानता योजना प्रयोक्ता का ही काम होता है। पर्यायवाची कोशों में भी वाक्य संरचना की दृष्टि से शब्दों के संबंध में कोई सूचना नहीं दी होती।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आर्थी विश्लेषण कई रूपों में कोश से आगे की वस्तु है। प्रो. फॉडर और काट्ज[33] ने इस प्रकार के आर्थी विश्लेषण के अंतर्गत दी जाने वाली सूचना के संबंध में कहा है कि यह सूचना परंपरागत कोशों पर आधारित होनी चाहिए, पर इससे आगे आर्थी विश्लेषण के अंतर्गत इस प्रकार की आवश्यक सूचना भी दी जानी चाहिए जो वाक्य–संरचना की दृष्टि से आवश्यक तत्वों का चयन करने और अनावश्यक तत्वों का निषेध करने में सहायक हो।

(4) आर्थी विश्लेषण के लिए समान आधार होना चाहिए और शब्दों का आर्थी विश्लेषण इस रूप में होना चाहिए कि प्रत्येक शब्द के संबंध में यह जानकारी हो सके कि इन समान आधारों से निर्मित आर्थी परिधि के कितने भाग से कोई शब्द संबंधित है और कितने भाग से नहीं। कोश के अंतर्गत एक शब्द के रूप में दूसरे शब्द की आर्थी परिभाषा देने से किसी शब्द की आर्थी परिधि स्पष्ट नहीं हो पाती।

(5)व्याकरणिक संकेतों के समान आर्थी विश्लेषण के लिए आर्थी संकेतों का होना आवश्यक है। इन आर्थी संकेतों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

(क) आर्थी संकेत शब्दों के केंद्रीय अर्थ पर आधारित होने चाहिए।

(ख) आर्थी संकेत अधिक से अधिक व्यापक होने चाहिए।

(ग) आर्थी संकेत का स्वरूप सैद्धांतिक होना चाहिए।

(घ) आर्थी संकेत ऐसे होने चाहिए जिनकी सहायता से भाषा के शेष शब्द भंडार

से उस शब्दका आर्थी संबंध व्यवस्थित रूप में स्थापित किया जा सके जिसका आर्थी विश्लेषण किया गया है।[34]

(6)आर्थी विश्लेषणशब्द के केंद्रीय अर्थ पर आधारित होता है, किसी विशेष प्रसंग में शब्द के किसी विशेष अर्थ पर नहीं। केंद्रीय अर्थ का संबंध अभिधार्थ से है, लक्षणा अथवा व्यंजना से नहीं ।

(7)आर्थी विश्लेषण के लिए केंद्रीय अर्थ का व्यापक रूप स्वीकार किया जाता है और इस व्यापक अर्थ के आधार पर ही आर्थी संकेतों का चयन किया गया है ।

(8) ये आर्थी संकेत चार प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार के संकेत शब्दों में निहित संकल्पना को स्पष्ट करते हैं। दूसरे प्रकार के संकेत शब्दों से संबंधित वास्तु अथवा सामाजिक प्रकरण की ओर संकेत करते हैं। तीसरे प्रकार के संकेत वाक्य संरचनात्मक संबंधों को स्पष्ट करते हैं, परंतु वे व्याकरणिक शब्द–भेदों के संकेत नहीं होते। चौथे प्रकार के संकेत शब्दों के भावना–पक्ष से संबंधित हैं।

(9) आर्थी विश्लेषण की सहायता से आर्थी तत्वों की समानता और असमानता के आधार पर अनेक वर्ग तथा उपवर्ग बनाए जा सकते हैं, उदाहरणार्थ, भावनात्मक दृष्टि से सकारात्मक तथा नकारात्मक संकल्पनाएँ तथा वक्ता और श्रोता के विभिन्न संबंधों पर आधारित वर्ग यथा– बड़ा–छोटा, छोटा–बड़ा तथा समान। ये वर्ग तथा उपवर्ग ही इस संरचना की इकाई है,एक क्रिया नहीं।

(10) आर्थी विश्लेषण पर आधारित यह आर्थी संरचना भाषा के विश्लेषणात्मक वर्णन तथा भाषा प्रयोग दोनों की दृष्टि से सहायक होती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित उपयोगी निष्कर्ष निकलते हैं–

(1) भाषा के आर्थी पक्ष से संबंधित अध्ययन शब्द तथा वाक्य दोनों स्तरों पर किया जा सकता है।

(2)भाषा की आर्थी संरचना ज्ञात करने के लिए तकनीकी अथवा गाली के रूप में प्रयुक्त होने वाले शब्द उपयोगी नहीं हैं।

(3)शब्द के स्तर पर अर्थ का अध्ययन इस रूप में किया जाना चाहिए कि वह वाक्य संरचनात्मक तथ्यों की व्याख्या में सहायक हो सके।

(4) शब्दार्थ एक मानसिक प्रत्यय है।

(5)शब्द का अभिधार्थ (केंद्रीय अर्थ) ही विश्लेषण का विषय है,लक्षणा अथवा व्यंजना नहीं।

(6)शब्द का केंद्रीय अर्थ व्यापक होता है जिसमें ज्ञानात्मक, प्रकरणात्मक, वाक्य संरचनात्मक तथा भावनात्मक पक्ष निहित हैं।

(7)शब्द और अर्थ का संबंध परंपरागत, आवश्यक,यादृच्छिक नित्य तथा लोक व्यवहार पर आधृत है।

(8)शब्द और अर्थ का विश्लेषण वाक्य द्वारा प्रस्तुत प्रकरण में किया जाना चाहिए। वाक्य के बाहर वास्तु संसार और सामाजिक क्रियाओं से निर्मित प्रकरण भाषा वैज्ञानिक आर्थी अध्ययन का विषय नहीं है।

(9)वाक्य द्वारा प्रयुक्त प्रकरण का अध्ययन करने के लिए विभिन्न तत्वों का ध्यान रखना चाहिएयथा शब्दों के आंतरिक प्रत्यय से संबंधित आर्थी तत्व, प्रकरणात्मक आर्थी तत्व, व्याकरणिक तत्व तथा भावनात्मक तत्व।

(10) संकल्पनात्मक अंतर(व्यातिरेक) और प्रकरणात्मक एवं व्याकरणिक वितरण के सिद्धांत पर शब्दों के अर्थ का अध्ययन किया जाना चाहिए।

(11)शब्दों के आर्थी विश्लेषण पर आधारित उनका अर्थपरक अध्ययन इस रूप में होना चाहिए कि उससे भाषा के उस अंश तथा उसी सीमा तक भाषा की आर्थी संरचना का उद्घाटन हो और वह भाषा के विश्लेषणात्मक वर्णन तथा भाषा प्रयोग दोनों के लिए आवश्यक हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. (अ) भाषा खंड 43 नंबर 1 मार्च, 1967, साउथवर्थ, फ्रैंकलिंकेन सी, शब्दार्थ संरचना का एक मॉडल, पृष्ठ 342

(ब) "द स्ट्रक्चर ऑफ लैंग्वेज, रीडिंग इन द फिलॉसफी ऑफ लैंग्वेज एडिटेड बाय सेम ऑथर, 1964, फ्रेंटिस हॉल, इंक। एंगलवुड, क्लिफ्स, न्यू जर्सी। काट्ज, जेरोल्ड, जैरीएलन फोडर, जेरी ए। शब्दार्थ सिद्धांत की संरचना, पृष्ठ 479

2.(अ)लेकिन जब ध्वन्यात्मक व्याकरणविद और कोशकार ने अपने अवशेषों को समाप्त कर लिया है, तब भी शब्दार्थ अध्ययन में उनके सभी कार्यों का उपयोग करते हुए बड़े–अंतर एकीकरण और यह इस स्थितिजन्य और प्रायोगिक अध्ययन के लिए है कि मैं शब्दार्थ शब्द को सुरक्षित रखूँगा। फर्थ, जे. आर. पी. पृष्ठ 27

(ब) वास्तव में, वर्णनात्मक भाषाविज्ञान की मुख्य चिंता अर्थ के बयान देना है। फर्थ, जे.आर. पृष्ठ 191

3. शहरी भाषाई शब्दार्थ के क्षेत्र को बहुत उदारतापूर्वक मानचित्रित करते हैं, उनके विचार में यह भाषाई भाषा से संबंधित है, जिसे विचार के एक उपकरण के रूप में माना जाता है, जिसमें व्याकरणिक संबंध, आकृति विज्ञान और वाक्य–रचना का विश्लेषण, शब्द के जीवन का अर्थ शामिल है। भाषण, उनमें से प्रत्येक का अपना विशिष्ट कार्य होता है और उनके अध्ययन के लिए समर्पित एक विशेष विज्ञान होता है। भौतिक, ध्वन्यात्मक भेदभाव ध्वन्यात्मकता, शब्दार्थ, विश्लेषण, शब्द–संकेत शब्दावली, संबंधपरक, वाक्य–विन्यास संप्रेषण विश्लेषण संबंध, उलमन, स्टीफन, पृष्ठ 11

4. एकमात्र अर्थ–संबंध जो स्वरों के मामले में प्रासंगिक है, वह है समानता और अर्थ का अंतर और ध्वन्यात्मक पर्यायवाची आमतौर पर छिटपुट और तुच्छ लगता है। लियोंस, जॉन, पृष्ठ 28–29

5. ध्वन्यात्मक पर्यायवाची का एक उदाहरण इंटर चार्ज क्षमता है (शब्द के पहले शब्दांश में/ई/और/आई/के कुल उच्चारण में अर्थ के परिवर्तन के बिना, हैरिस का अर्थविज्ञान, स्ट्रक्चरल लिंग्विस्टक्स में पृष्ठ 185, एम. लियोंस, जॉन. पृष्ठ 29

6. संक्षेप में, एंग्राफिक प्लेन पर तीन बुनियादी प्रकार की भाषा इकाइयाँ होती हैं, जो तीन प्रकार के ऑपरेशन के अनुरूप होती हैं, जिसके द्वारा उन्हें कनेक्टेड स्पीच से अलग किया जाता है, उनमें से प्रत्येक का अपना एक विशिष्ट कार्य होता है, जो उनके अध्ययन के लिए समर्पित एक विशेष विज्ञान होता है, भौतिक, ध्वन्यात्मक भेदभाव ध्वन्यात्मकता, शब्दार्थ विश्लेषण शब्द, लेक्सकोलॉजी रिलेशनल को दर्शाता है, सिंटोंगमैन सिंटेक्स विश्लेषण रिलेशन को व्यक्तकरताहै।उलमन, स्टीफन पृष्ठ 30–31।

7. बर्बरता, प्रांतवाद, अश्लीलता, पुरातनवाद और तकनीकी शब्दों की शैलीगत बारीकियाँ शब्दार्थ के दायरे से बाहर हैं, इसका अधिकांश हिस्सा स्पष्ट रूप से 'टू–पोरोल' से संबंधित है न कि 'ला–लैंगु' से। उलमन, स्टीफन, पृष्ठ 101

8. दोनों सिद्धांतों ने स्वीकार किया कि वाक्य में शब्दों के बीच वाक्यात्मक संबंध की शर्तें परस्पर प्रत्याशा (आकांक्षा) संगति (योग्यता) और निकटता (सन्निधि) हैं और प्रासंगिक कारकों के महत्व और अर्थ को निर्धारित करने के रूप में वक्ता के इरादे को भी मान्यता दी है। राजा, के.के. पृष्ठ 9

9. कोलोकेशन द्वारा अर्थ वाक्य–विन्यास के स्तर पर एक बाधा है और इसका सीधे तौर पर शब्दों के अर्थ के लिए वैचारिक या विचार दृष्टिकोण से कोई संबंध नहीं है। रात के अर्थों में से एक अंधेरे के साथ इसकी सहसंयोजकता है और निश्चित रूप से, सही के साथ टकराव। फर्थ, जे.आर. पी. पृष्ठ 196

10. एक विशेष भाषाई इकाई को उस संदर्भ में लागू किया जाता है जिसमें यह होता

है, और जहाँ इकाई और स्थिति को एक देखने योग्य विशेषता (एक चीज, व्यक्ति या संपत्ति, या चीजों के वर्ग के बीच संदर्भ का

संबंध स्थापित किया जा सकता है), व्यक्तियों या संपत्तियों, इकाई को इस इकाई या संस्थाओं के वर्ग पर लागू होने के लिए कहा जाता है। लियोंस, जॉन, पृष्ठ 55

11. ऑग्डेन और रिचर्ड्स रिफ्रेंट, संदर्भ, प्रतीक के तीन शब्दों या त्रिकोण में स्थितिजन्य अर्थ को हल करते हैं। लेकिन अर्थ उनके लिए तथ्यों और घटनाओं के बीच मन में एक संबंध है, एक तरफ आप जिन प्रतीकों या शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, उन्हें संदर्भित करते हैं। फर्थ, जे.आर.पी. पृष्ठ 19

12. एर्डमैन तीन प्रकार के अर्थों को अलग करता है (1) बेग्रिफसिनहाल्ट, या हौप्ट फेडयुटुंग, मोटे तौर पर हमारा आवश्यक या केंद्रीय अर्थ या निरूपण। (2) नबेन्सिन या एप्लाइड मीनिंग या प्रासंगिक अर्थ (3) और गेफिह्ड्सवर्ट या स्टिमुंगसेहाल्ट या फीलिंग टोन। फर्थ, जे.आर.पी. पृष्ठ 10

13. आनंदवर्धन ने भर्तृहरि से अधिकार लिया और व्यंजना या सुझाव के अपने सिद्धांत को विकसित किया। अर्थ या अर्थ शब्द के तहत न केवल संज्ञानात्मक, तार्किक अर्थ, बल्कि भावनात्मक तत्व और उच्चारण के सामाजिक सांस्कृतिक महत्व को भी शामिल किया जाता है, जिसे प्रासंगिक कारकों की मदद से सुझाया जाता है। राजा, के. के. पृष्ठ 10

14. सर ए गार्डिनर स्वयं इस भेद को स्वीकार करने की तार्किक आवश्यकता से अवगत हैं। उनका कहना है कि एक शब्द का इस्तेमाल कई अलग–अलग मौकों पर किया जा सकता है और एक ही शब्द का इस्तेमाल भाषाई समुदाय के सभी अलग–अलग सदस्यों द्वारा किया जा सकता है। यह वास्तव में अपेक्षाकृत स्थायी, व्यापक रूप से फैली हुई और व्यक्तियों की भीड़ द्वारा आम तौर पर कब्जा करने में सक्षम कुछ चीज है। ये सभी विचार विरोधाभास की संभावना से परे साबित करते हैं कि शब्द पार हो जाता है, और स्पीकर के मुँह से निकलने वाले दौरों की तुलना में पूरी तरह से कम लुप्त होती संस्थाएँ हैं और श्रोता के कान तक पहुँचने के तुरंत बाद शून्य में गायब हो जाती हैं। राजा, के.के. पृष्ठ 13–14

15. इस प्रकार अर्थ या भाव ऑग्डेन तथा रिचर्ड्स में स्टर्न में मानसिक सामग्री, विचार या संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रतीत होता है, गाम्बोज में भावना, रूडेट मे विचार, वेइसफर में अवधारणा और गार्डिनर में अर्थ, यह अर्थगत या वस्तु सार्वभौमिक है मीमांसक, अपोह के रूप में या बौद्धों के अनुसार अन्य सभी चीजों की अस्वीकृति, स्थायी व्यक्ति या द्रष्टि, या एक मानसिक छवि। राजा, के.के. पृष्ठ 25

16. मीमांसकों के अनुसार एक शब्द का प्राथमिक अर्थ सार्वभौमिक है जो कि वर्ग के विशेष उदाहरणों के लिए आवश्यक गुण है। राजा, के.के. पृष्ठ 72

17. जैन दार्शनिक मानते हैं कि गाय जैसे शब्द का अर्थ गाय विशेष नहीं होता है। यह शब्द उन सभी जानवरों पर लागू होता है जिनके पास गाय का सामान्य रूप होता है। तो, किसी शब्द का प्राथमिक अर्थ आकृति या आकृति है। राजा, के.के. पृष्ठ 71

18. भर्तृहरि कहते हैं कि सभी अभूतपूर्व अधिकारों में या दो तत्व हैं या जाति का तात्पर्य वास्तविक तत्व से है और शक्ति से असत्य। राजा के.के पृष्ठ 27

19. तब हमारे पास अर्थ शब्द के दो प्रयोग हैं। पहला, किसी शब्द के ट्रू, ऑरिजनल और आवश्यक अर्थ के अर्थ में और दूसरा उसके उपयोग या उपयोग में आने वाले कई अर्थ। फर्थ, जे.आर. पृष्ठ 10

20. (i) कभी–कभी, हालाँकि, ये सामग्री भी अनावश्यक होती है कि शब्द के आंतरिक मूल को अलगाव में भी कहा जाता है, जिसमें भावात्मक कारक शामिल होते हैं, उनका

वास्तविक महत्व उतना ही भावनात्मक होता है जितना कि यह वैचारिक है। उल्मन, स्टीफन। पृष्ठ 99

(ii) दूसरी ओर, कुछ भावनात्मक तत्व न तो व्यक्तिगत हैं और न ही विशुद्ध रूप से प्रासंगिक हैं या वे शब्द की एक स्थायी संगति हैं और कभी–कभी इसका बहुत ही मूल आहार है, उनका मूल्य समानार्थक शब्दों की श्रृंखला में सबसे अच्छा लाया जाता है, या बल्कि छद्म पर्यायवाची 'लड़की–नुकसान–युवती', माँ-मम्मी-माते,मोटे-छोटे-फीनी-वीनी-वी-मिनट लघु सूक्ष्म और इतने पर। उलमन, स्टीफन पृष्ठ 99

21. (i) शब्दों में केवल संगीत उतना ही मधुर नहीं है जितना कि वॉयलिन और वीणा में! रंग उतना ही समृद्ध और ज्वलंत है जितना कि हमारे लिए वेनेशन या स्पैरियार्ड का कैनवास, और प्लास्टिक से कम निश्चित और निश्चित नहीं है कि जो भी हो संगमरमर या काँसे में खुद को वील करता है लेकिन हालाँकि जुनून और आध्यात्मिकता भी उनकी है, वास्तव में अकेले हैं। फर्थ, जे.आर. पृष्ठ 193

(ii) दूसरे, शब्द का पूरा अर्थ हमेशा प्रासंगिक होता है और किसी भी अध्ययन या अर्थ को पूर्ण संदर्भ से एक भाग को गंभीरता से नहीं लिया जा सकता है। फर्थ, जे.आर. पृष्ठ 7

22. भर्तृहरि द्वारा उल्लिखित प्रासंगिक कारक निम्नलिखित हैं– राजा, के.के. पृष्ठ 50

(ए) संस्कार (संपर्क) या संयोग (एसोसिएशन)

(बी) विप्रयोग (पृथक्करण)

(सी) सहकार्य (सहयोग) आपसी सहयोग में

(डी) विरोधी (विरोधी) प्रसिद्ध शत्रुता है।

(ई) अर्थ या उद्देश्य की सेवा

(एफ) प्राकरण या स्थिति का संदर्भ

(जी) लिंग दूसरी जगह से संकेत है

(एच) जीस्योन्यास्य सन्निधिः एक और शब्द के आसपास

(आई) समर्थम वह क्षमता है जो परिणाम से जानी जाती है

(जे) औचित्य या सर्वांगसमता है।

(के) देश या स्थान

(एल) काल या समय

(एम) व्यक्ति या व्याकरणिक लिंग

(एन) स्वर या उच्चारण

23. एक शब्दार्थ सिद्धांत के घटक के रूप में एक शब्दकोश को शामिल करने के लिए तर्कसंगत वाक्यों और उनके जो व्याकरण अस्पष्टीकृत छोड़ देता है। आर.एच. फोडर और काट्ज पृष्ठ 492

24. एक वाक्य में प्रत्येक शब्द अपने पृथक अर्थ को व्यक्त करने का कार्य करता है और इसके साथ ही वाक्यात्मक संबंध शब्दों से नहीं, बल्कि शब्द अर्थ से व्यक्त होता है। राजा, के.के. पृष्ठ 8

25. सभी परिवेशों की समग्रता, केवल एक बंद कोश के संबंध में, वातावरण के प्रचुर सेट के लिए लागू होती है और यहाँ जैसा कि हमने अभी देखा है जहाँ हमारे पास इसका कोई उपयोग नहीं है, यह एक निराधार सेट के संबंध में लागू होता है इस भूमि में वातावरण और भाषा निराधार है। लियोंस, जॉन, पृष्ठ 21

26. शब्दों और अर्थ के बीच इस प्राकृतिक संबंध को शब्दों की सहज क्षमता या योग्यता के संदर्भ में भी समझाया गया है। राजा, के.के. पृष्ठ 20

27. कठिनाई को कम किया जा सकता है, जबकि पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सकता है, अगर 'मनमाने ढ़ंग से 'पारंपरिक' द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है तो मैं प्रतीकों की परंपरागतता के बारे में बात करूँगा। शब्द "सम्मेलनों" को निश्चित रूप से अपने शैलीगत अर्थ में नहीं लिया जाना चाहिए, जिसका अर्थ स्पष्ट है या प्रतीकात्मक मूल्य पर घटना समझौता, इसका मतलब है कि नाम और भाव के बीच किसी भी 'प्राकृतिक' संबंध के किसी भी आंतरिक

परिपक्वता या औचित्य का अभाव है। उलमन, स्टीफन पृष्ठ 85।

28. यह यूनानी विद्वानों का स्वाभाविक सिद्धांत है, जो मानते थे कि दिए गए नामों में आपत्ति करने के लिए आदिम मनुष्य वस्तु के किसी जन्मजात गुण या मनोवैज्ञानिक प्रभाव से प्रेरित था। राजा के.के. पृष्ठ 20

29. इस अर्थ में, हम प्रोफेसर बेनवेनिस्ट के इस तर्क का समर्थन कर सकते हैं कि नाम और भाव 'सह–पर्याप्त' हैं और उनके बीच संबंध आवश्यक है। उलमन, स्टीफन पृष्ठ 81

30. अब यह सामान्य रूप से भाषाविदों द्वारा स्वीकार किया जाता है कि उनके शब्दार्थ विवरण के लिए भाषा के ध्वन्यात्मक और व्याकरणिक विश्लेषण में लंबे समय से प्रचलित 'संरचनात्मक दृष्टिकोण' की आवश्यकता होती है। प्रत्येक भाषा को अपनी स्वयं की शब्दार्थ संरचना के रूप में माना जाता चाहिए, जैसे कि इसकी अपनी फोनोलॉजिकल और व्याकरणिक संरचना होती है। लियोंस जॉन, पृष्ठ 37

31. मैं 'सिमेंटिक स्ट्रक्चर' की धारणा को कुछ निश्चित संबंधों के संदर्भ में परिभाषित करने का प्रस्ताव करता हूँ जो एक विशेष विषयगत सब सिस्टम में वस्तुओं के बीच धारण करते हैं। उनमें समानता और अर्थ के अंतर में समानता, विलोम, आदि जैसे संबंध शामिल हैं, जिन्हें प्रथागत रूप से अर्थ के सिद्धांत के दायरे में आने के लिए माना जाता है। लियोन्स, जॉन, पृष्ठ 97

32. इस प्रकार, एक कोशकार भी शब्द के उपयोग के बारे में जानकारी देना चाहता है, लेकिन दार्शनिक उससे अलग है कि वह विशेष अभिव्यक्ति के उपयोग के साथ नहीं बल्कि अभिव्यक्ति के वर्गों के साथ चिंतित है और जहाँ शब्दावली के प्रस्ताव अनुभवजन्य, दार्शनिक हैं प्रस्ताव, यदि वे सत्य हैं तो आमतौर पर विश्लेषणात्मक होते हैं। उलमन, स्टीफन पृष्ठ 10

33. इस प्रकार की शब्दकोश जानकारी के हमारे पुनर्निर्माण को पारंपरिक शब्दावली प्रक्रिया का पालन करना चाहिए, लेकिन आगे जाना चाहिए कि पुनर्निर्माण में चयन और बहिष्करण निर्धारित करने के लिए आवश्यक सभी जानकारी प्रदान करनी चाहिए। फोडर और काट्ज, पृष्ठ 500

34. इस प्रकार, एक शब्दकोश प्रविष्टि में एक लेक्सिकल आइटम को सौंपे गए सिमेंटिक मार्करों का उद्देश्य उस आइटम और भाषा की बाकी शब्दावली के बीच जो भी सिस्टमेटिक सिमेंटिक संबंध है, उसे प्रतिबिंबित करना है। फोडर और काट्ज. पृष्ठ 497

❑❑❑

हिंदी बनाम अन्य भारतीय भाषाएँ: प्रभावात्मक अंतर्संबंध

संध्या वात्स्यायन

जब हम हिंदी की बात करते हैं तो उसे दो रूपों में स्वीकार करते हैं— एक साहित्यिक हिंदी और दूसरी बोलचाल की हिंदी। साहित्यिक हिंदी में संस्कृत प्रधान अर्थात् तत्सम शब्दों की प्रधानता होती है तो बोलचाल में आम प्रचलित शब्दों की प्रधानता होती है। इसमें संस्कृत प्रधान शब्द भी शामिल होते हैं। यह शोध— आलेख हिंदी का अन्य भाषाओं पर प्रभाव तथा संबंध को आधार बनाकर लिखा गया है। और हम पाते हैं कि हिंदी के दोनों रूपों—साहित्यिक एवं बोलचाल का प्रभाव भारत की अन्य भाषाओं पर भी पड़ा है साथ ही साथ हिंदी भी उनसे प्रभावित हुई है। यह प्रभाव भाषा की परिवर्तनशीलता के कारण है। डॉ. रामविलास शर्मा ने 'भाषा और समाज' में भाषा की इसी विशेषता की ओर संकेत करते हुए लिखा है— "भाषा निरंतर परिवर्तनशील है और विकासमान है। विरोध और भिन्नता के बिना भाषा न गतिशील हो सकती है, न उसका विकास हो सकता है।"[1]वे भाषा के विकास एवं प्रभाव के तीन प्रमुख आधार मानते हैं— पहला ध्वनि प्रकृति, दूसरा भाव प्रकृति तथा तीसरा शब्द भंडार।[2] हिंदी का अन्य भाषाओं पर प्रभाव को हम इन बिंदुओं पर भी परख सकते हैं।

हिंदी पर सबसे पहला प्रभाव संस्कृत भाषा का ही है। संस्कृत हिंदी की जननी है। 'हरिऔध' लिखते हैं— "हिंदी भाषा में सबसे अधिक संस्कृत के शब्द पाए जाते हैं। विवाह, यज्ञोपवीत आदि संस्कारों, धर्म—चर्चाओं तथा अनेक पर्व—त्योहारों में पंडितों द्वारा संस्कृत के शब्दों का उच्चारण किया जाता है।"[3] बावजूद इसके इनकी संख्या कम है। हिंदी में संस्कृत भाषा से संबंधित तीन प्रकार के शब्द प्रचलित हैं— तत्सम, अर्द्ध तत्सम, तद्भव। जैसे— अग्नि (तत्सम), अगनि (अर्द्ध तत्सम), आग (तद्भव)। अर्द्ध तत्सम जैसे शब्द प्रायः अवधी और ब्रज भाषा में मिल जाते हैं। जैसे— धरम (धर्म), करम (कर्म), हिरदय (हृदय), किरपा (कृपा) आदि।

कुछ शब्द संस्कृत से प्राकृत और फिर प्राकृत से हिंदी में आते हैं। जैसे— हस्त (तत्सम), हत्थ (प्राकृत), हाथ (तद्भव)। हालाँकि खड़ी बोली में अर्द्ध तत्सम तथा हिंदी के प्राकृत रूपों का प्रयोग लगभग नहीं के बराबर होता है। इसकी अपेक्षा वे देशज शब्दों का प्रयोग कर लेते हैं। देशज वे शब्द हैं जिनकी उत्पत्ति संस्कृत अथवा प्राकृत शब्द से नहीं है जैसे— चटपट, गोड़, जलेबी आदि। हिंदी और हिंदीतर भाषाओं में रूप प्रायः मिल जाते हैं।

भाषा के अर्थ में संस्कृत (संस्कार की गई, शिष्ट या अप्रकृत) शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है।[4] हिंदी की भाँति संस्कृत में भी भाषा के दो रूप प्रचलित थे— एक साहित्यिक भाषा, दूसरी बोलचाल की भाषा। क्लासिकल संस्कृत साहित्यिक भाषा थी और पाणिनीय संस्कृत बोलचाल की भाषा। हिंदी लगभग पाणिनीय संस्कृत के नज़दीक है। यह प्राकृत के भी नज़दीक थी। जैसे—कुक्कुर (कुत्ता), घुण (घुन) आदि। इसी परंपरा में मध्यकालीन आर्य भाषाओं का जन्म होता है जिससे हिंदी का जन्म होता है। हिंदी में संस्कृत का भले ही प्रभाव हो परंतु हिंदी वही श्रेष्ठ है जो बोलचाल के निकट हो। 'हिंदी पर संस्कृत का प्रभाव' लेख में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसी हिंदी को श्रेष्ठ माना जो बोलचाल के निकट बैठती है। वे लिखते हैं— "कोई कारण नहीं कि जब तक बोलचाल

की भाषा के शब्द मिलें, संस्कृत के कठिन शब्द क्यों लिखे जाएँ? 'घर' शब्द क्या बुरा है जो 'गृह' लिखा जाए? 'कलम' क्या बुरा है जो 'लेखनी' लिखा जाए? 'ऊँचा' क्या बुरा है जो 'उच्च' लिखा जाए? संस्कृत जानना ज़रूर हम लोगों का कर्तव्य है। पर मेल से अपनी बोलचाल की हिंदी को दुर्बोध करना मुनासिब नहीं।"[5] संस्कृत और हिंदी की सबसे बड़ी समानता यही है कि दोनों का व्याकरण एक है। और दोराय नहीं कि हिंदी का बड़ा शब्द–भंडार संस्कृत शब्द भंडार की देन है।

भारत की प्रमुख भाषाओं से हिंदी के संबंध के आधार पर भाषाओं को निम्नलिखित वर्ग में बाँट सकते हैं –

1. हिंदीतर आर्य भाषाएँ
2. हिंदीतर अनार्य भाषाएँ

हिंदीतर आर्य भाषाओं के अंतर्गत– मराठी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, असमी, ओड़िया, बंगाल।

हिंदीतर अनार्यभाषाओं के अंतर्गत कई शाखाएँ हैं परंतु तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम भाषाएँ प्रमुख हैं। उन्हें द्रविड़ परिवार की भाषाएँ माना जाता है।

शोध–आलेख के आधार पर सबसे पहले हिंदीतर आर्यभाषाओं का परिचय तथा हिंदी के साथ उनके संबंध को विवेचित किया जाएगा।

मराठीः मराठी का विकास 10वीं शती के आस–पास माना जाता है। इसका विकास हिंदी के समांतर हुआ। इसे आधुनिक महाराष्ट्र की भाषा कहा जाता है जिसकी लिपि देवनागरी है जिसे 'बालबोध'[6] भी कहा जाता है। मराठी का उच्चारण हिंदी के अधिक निकट है परंतु उसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दों की भरमार है। मराठी का व्याकरण संस्कृत के अधिक निकट है जैसा कि हिंदी का है। जैसे– संस्कृत की भाँति मराठी में तीन लिंग तथा दो वचन हैं। मराठी में कारक–परसर्गों का प्रयोग हिंदी की भाँति होता है। भोजपुरी के कई शब्द मराठी में मिल जाते हैं। जैसे– आइल, गइल आदि।

मराठी का अन्य भाषाओं विशेषतः हिंदी भाषा के साथ संपर्क अधिक रहा। भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में मराठी संत कवियों, संत ज्ञानदेव, संत नामदेव का अच्छा– खासा प्रभाव रहा। इनके अतिरिक्त संत तुकाराम, एकनाथ एवं रामदास का भी हिंदी पर प्रभाव दिखता है। संत ज्ञानदेव तथा नामदेव ने मराठी के साथ–साथ हिंदी में भी पदों की रचना की। हिंदी मुद्रण के लिए देवनागरी टाइप का विकास महाराष्ट्रके बाल गंगाधर तिलक ने किया था।[7] मराठी के प्रमुख उपन्यासकार हरिनारायण आप्टे, विष्णु सखाराम खांडेकर हिंदी क्षेत्र में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले उपन्यासकार हैं। 'केसरी' समाचार पत्र का हिंदी संस्करण माधवराव सप्रे लिखते थे– जो स्वयं मराठी थे।

हिंदी के प्रसिद्ध रचनाकारों में गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे मराठी ही थे। हिंदी फिल्मों का सबसे बड़ा केंद्र है– मुंबई। हिंदी के प्रचार–प्रसार का सबसे बड़ा केंद्र है–महाराष्ट्र।

बांग्ला– भारत की आधुनिकतम भाषाओं में बांग्ला का स्थान है। यह भारतीय आर्य भाषा की आधुनिक भाषा है जिसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ। बांग्ला का तद्भव शब्द भंडार संस्कृत की तत्सम शब्दावली के अधिक निकट है। संस्कृत की अधिकांश प्रवृत्तियाँ आधुनिक भाषाओं में सुरक्षित है। यही कारण है कि बांग्ला में हिंदी के कारक परसर्गों की अपेक्षा संस्कृत की भाँति शब्द परिवर्तन ही मिलता है यथा– रामेर (राम का)।[8] बांग्ला साहित्य लगभग 1300ई. से माना जाता है। मध्यकाल में चैतन्य महाप्रभु में बांग्ला का साहित्यिक रूप मिलता है। चंडीदास, बोद्ध, सिद्ध कवि तथा कृत्तिवास बांग्ला साहित्य के प्रारंभिक साहित्यकार माने जाते हैं। बांग्ला साहित्य में कृष्ण भक्ति काव्य का अच्छा–खासा प्रभाव देखने को मिलता है। इसी कारण बांग्ला साहित्य में 'ब्रजबुलि' साहित्य अत्यंत लोकप्रिय हुआ।

बांग्ला में हिंदुस्तानी अर्थात् हिंदी के प्रचार–प्रसार या प्रभाव को लेकर विद्वानों के अलग–अलग मत हैं। डॉ. सुनीति कुमार चाटर्जी मानते हैं कि बंगाल की भाषा बांग्ला थी, न कि हिंदुस्तानी।[9] जबकि प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा की राय इससे अलग है। वे मानते हैं– " बंगाल में हिंदुस्तानी भाषा संपर्क भाषा के रूप में फैली, अंग्रेजी राज कायम होने पर यह प्रक्रिया जारी रही, बांग्ला को शेष भारत से मिलाने वाली भाषा अंग्रेजी नहीं थी, हिंदुस्तानी थी। यह तथ्य निर्विवाद है।"[10] 'हिंदुस्तानी' से डॉ. रामविलास शर्मा का अर्थ 'हिंदी' से है। डॉ. रामविलास शर्मा मानते हैं कि 'बांग्ला में वहाँ की बोलियों के अलावा हिंदी का भी व्यवहार व्यापक रूप से होता था।'[11] बंगाल में राजा राम मोहनराय ने हिंदी को सार्वदेशिक भाषा के रूप में प्रचारित किया।[12] हिंदी और बांग्ला का साहित्यिक संबंध अत्यंत पुराना है। 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना ने हिंदी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी की सर्वधन्य पत्रिका 'सरस्वती' की स्थापना बंगाली भाषा–भाषी चिंतामणि बोस ने ही की। हिंदी को समृद्ध करने में बांग्ला का अपूर्व योगदान है।

<u>असमिया</u>: असमिया भाषा का विकास संस्कृत से माना जाता है। जिसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। जिस अपभ्रंश से बिहारी का जन्म हुआ। असमिया मूलतः बांग्ला के नज़दीक है। कई विद्वान तो असमिया और बांग्ला को एक ही भाषा मानते हैं। असमिया को बांग्ला लिपि में लिखा जाता है। असमिया संविधान स्वीकृत भाषा है। असमी/असमिया साहित्य का प्रारंभ बांग्ला साहित्य के आसपास माना जाता है। लगभग 13वीं शती से। असमिया का हिंदी से गहरा संबंध है। मिथकीय साहित्य में कई चरित्र असम से लिए गए जिसमें अर्जुन की पत्नी चित्रांगदा थी। असम में असमिया भाषा की कई रामायण हैं। परंतु वहाँ असमिया भाषा में अनूदित तुलसीदास कृत रामचरितमानस अत्यंत लोकप्रिय है। असमिया के प्रसिद्ध साहित्यकार शंकरदेव ने 'वरगीत' की रचना हिंदी में की। यह रचना 'ब्रजबुलि' में की गई। इसके अतिरिक्त 'असम हिंदी प्रचार समिति' तथा 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के माध्यम से हिंदी के प्रचार–प्रसार पर ज़ोर दिया जा रहा है। असम में हिंदी की तीस से अधिक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं जो हिंदी तथा हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रही हैं।[13]

<u>गुजराती</u>: गुजराती आर्य भाषा है माना जाता है इसका नाम प्राचीन गुर्जर जाति के नाम के आधार पर पड़ा। गुजराती में दो लिपियाँ प्रसिद्ध हैं– एक देवनागरी दूसरी कैथी। गुजराती राजस्थान की मारवाड़ी के भी निकट है। दोनों में पर्याप्त समानताएँ हैं। गुजराती शब्दों में परिवर्तन संस्कृत से उसी तरह परिवर्तित होते हैं जैसे हिंदी में। जैसे–पृष्ठ–पीठ, धृष्ट–धीठ।[14] गुजराती में विशेषणों का व्यवहार हिंदी के समान होता है। गुजराती साहित्य का प्रभाव हिंदी साहित्य पर ज़बरदस्त है। भक्तिकाल के गुजराती कवि नरसी मेहता ने हिंदी पदों की रचना भी की है। स्वामीनारायण तथा वल्लभ संप्रदाय का प्रभाव गुजराती साहित्य में पर्याप्त है। जिसके कारण गुजरात के कई भक्त कवियों ने हिंदी में रचना की। जैन साहित्य का केंद्र गुजरात था जिनकी भाषा हिंदी थी। आर्य समाज का प्रचार करते समय– स्वामी दयानंद सरस्वती (जो गुजरात से हैं)– हिंदी को माध्यम बनाते थे। 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना वर्धा में की गई। हिंदी के प्रचार–प्रसार में गुजराती समाज तथा गुजराती भाषा का अमूल्य योगदान है।

<u>ओड़िया</u>: ओड़िया का विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ। कुछ लोग पालि को ही ओड़िया माना लेते हैं। परंतु ओड़िया का स्वरूप बांग्ला के निकट है। ओड़िया को कृषि प्रधान संस्कृति के कारण 'ओड़' (कृषि करना) कहा गया जो बाद में ओड़िया जाना गया।[15] इस नामकरण में तमिल का प्रभाव अधिक है। ओड़िया में तेलुगु और मराठी का भी प्रभाव है।

परंतु ओड़िया की लिपि देवनागरी है। उच्चारण बांग्ला के समान।

ओड़िशा को बौद्ध साहित्य का भंडार केंद्र कहा जाता है। हिंदी से उसका जुड़ाव प्राचीनतम है। कई सहजयानी चर्या पद जो हिंदी में प्रचलित हैं, वे ओड़िया से मिलते–जुलते हैं। जैसे– युहावी, सुआर, राति, कमार आदि। मराठी शासन के दौरान ओड़िया हिंदी और उर्दू (हिंदुस्तानी) के संपर्क में आयी। 15 वीं शती के कई ओड़िया साहित्यकार, जैसे– बलरामदास, अनंतदास, दीनकृष्णदास आदि हिंदी में लिखते रहे हैं। ओड़िशा में हिंदी अनिवार्य रूप से विद्यालयों में पढ़ाई जाती है।

पंजाबीः पंजाबी आधुनिक आर्य भाषा मानी जाती है। जिसका विकास लगभग 12वीं शती से माना जाता है। हिंदी के कई शब्द विभक्त होकर पंजाबी रूप ले लेते हैं। जैसे– क्रोध–करोध, प्रेम–परेम, मित्र–मितरा या मित्तरा। आँख–'अक्ख' या 'अख' बन जाती है। पंजाबी हिंदी–उर्दू के निकट रही है। नानकदेव की कई रचनाएँ हिंदी में हैं। ब्रजभाषा के श्रेष्ठ पंजाबी कवियों में गुरु गोविंद सिंह को गिना जाता है। रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि 'ग्वाल' रणजीत सिंह के दरबारी थे। मंटो पंजाबी के उर्दू कवि थे। इसके अतिरिक्त हिंदी के प्रसिद्ध रचनाकार– चंद्रधर शर्मा गुलेरी, सत्यदेव परिव्राजक, यशपाल, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, स्वदेश दीपक, रवींद्र कालिया, राजी सेठ, नरेंद्र कोहली आदि पंजाब प्रांत से आए रचनाकार हैं जिन्होंने हिंदी को समृद्ध किया।

कश्मीरीः कश्मीर के राजाओं के दरबार की प्रमुख भाषाओं में से संस्कृत भी एक भाषा थी। कल्हण, विल्हण तथा जल्हण कश्मीर के संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान थे। कश्मीर श्रेष्ठ रचनाकारों में से एक ललद्यद को अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में पढ़ाया जाता है। कश्मीर में उर्दू का हिंदुस्तानी रूप मिलता है। जो उसे हिंदी के निकट लाती है।

इसके अतिरिक्त हिंदीतर अनार्यभाषाएँ जिन्हें दक्षिणी भाषा भी कहा जाता है–इन भाषाओं से हिंदी का संबंध रहा है।

तमिल एवं हिंदी का संबंध संस्कृत के कारण है। कहा जाता है कि तमिल में हिंदी–विरोध काफी है परंतु स्वाधीनता आंदोलन के समय तमिल की भाँति हिंदी को भी 'स्वराज्य भाषा' कहा जाता था। तमिलनाडु के सी. गोपालाचारी हिंदी के प्रबल समर्थकों में से एक थे। धीरे–धीरे तमिल में हिंदी के प्रति स्वीकार का भाव जागा है और वह तमिल के बाद अंग्रेजी का स्थान लेने लगी है।

तेलुगु में सगुण कृष्ण भक्ति के प्रभाव के कारण ब्रजभाषा की कई रचनाओं का अनुवाद हुआ दक्खिनी हिंदी का प्रचार–प्रसार भी इन क्षेत्रों में पर्याप्त दिखता है। आंध्र प्रदेश के कई लोकगीतों को हिंदी में लाने का श्रेय आंध्र के राधाकृष्ण मूर्ति को जाता है। इब्राहीम शरीफ, सुब्बाराव बाल शौरि रेड्डी आदि हिंदी लेखन के लिए प्रसिद्ध हैं।

इसी प्रकार कन्नड एवं मलयालम क्षेत्रों में हिंदी का प्रभाव देखा जाता है। केरल में 1922 से ही हिंदी का प्रचार–प्रसार शुरु हो गया था। केरल में हिंदी साहित्य को लेकर अत्यंत उत्सुकता देखी जाती है। डॉ. विश्वनाथ अय्यर, प्रो. अरविंदाअन, डॉ. तंकमणि अय्यर, के.जी.बाल कृष्णन, सुधा बालाकृष्णन आदि समकालीन लेखकों ने हिंदी की समृद्धि में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

अतः कह सकते हैं कि हिंदी का प्रभाव तथा अन्य भाषाओं का हिंदी पर प्रभाव अत्यंत व्यापक है। हिंदी का अन्य भाषाओं से संबंध संस्कृतकालीन है जो हिंदी की अन्य बोलियों से कालांतर तक जुड़ा रहा। हम पाते हैं कि भाषाई भेद को हिंदी ने आज कम कर दिया है। अन्य भाषाओं से हिंदी का संपर्क बड़ा है और इससे भारतीय भाषाई सूत्र मज़बूत हुए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भाषा और समाज–रामविलास शर्मा–राजकमल प्रकाशन– सातवाँ संस्करण–2010, आवृत्ति–2014, पृष्ठ 25

2. भाषा और समाज–रामविलास शर्मा–राजकमल प्रकाशन– सातवाँ संस्करण–2010, आवृत्ति–2014, पृष्ठ 25

3. हिंदीभाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव, m. wikisource.org

4. हिंदीभाषा– डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, सं.–1998, पृष्ठ 10

5. हिंदी पर संस्कृत का प्रभाव–आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, shabdavali.blog spot.com 2007/2008

6. भारतीय साहित्यःलक्ष्मीकांत पांडेय, प्रमिला अवस्थी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 23

7. भारतीय साहित्यःलक्ष्मीकांत पांडेय, प्रमिला अवस्थी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 24

8. भारतीय साहित्यः लक्ष्मीकांत पांडेय, प्रमिला अवस्थी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 20

9. भाषा और समाजः रामविलास शर्मा–राजकमल प्रकाशन, आवृत्ति– 2014, पृष्ठ 451

10. भाषा और समाजः रामविलास शर्मा–राजकमल प्रकाशन, आवृत्ति– 2014, पृष्ठ 451

11. भाषा और समाजः रामविलास शर्मा–राजकमल प्रकाशन, आवृत्ति– 2014, पृष्ठ 458

12. भारतीय साहित्यः लक्ष्मीकांत पांडेय, प्रमिला अवस्थी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 21

13. भारतीय साहित्यः लक्ष्मीकांत पांडेय, प्रमिला अवस्थी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 20

14. भारतीय साहित्यः लक्ष्मीकांत पांडेय, प्रमिला अवस्थी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 25

15. भारतीय साहित्यः लक्ष्मीकांत पांडेय, प्रमिला अवस्थी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 22

❑❑❑

छायावादी काव्यः उद्भव एवं विकास की परिस्थितियाँ

नीलम सिंह

द्विवेदीयुगीनइतिवृत्तात्मक, उपदेशात्मक, नीरस और स्थूल आदर्शवादी नियमों एवं रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों के विरुद्धविद्रोह के रूप में छायावाद का उदय हुआ। छायावाद का उद्भव सन् 1916 ई. से 1920 ई. के मध्य स्वीकार किया जाता है, जिसका समाप्ति काल सन् 1936 ई. से 1938 ई. के मध्य तक रहा। छायावादी काव्य की झलक उन्नीसवीं सदी के अंत में पंडित श्रीधर पाठक की कुछ कविताओं में दिखाई दी। इसके लगभग दो दशक उपरांत प्रसाद की कविताओं में हमें छायावादी कविता के दर्शन होते हैं। परंतु उनका रूप पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो पाया था। ये रचनाएँ द्विवेदी जी की साहित्यिक मान्यताओं और आदर्शों से मेल नहीं खाती थीं। परिणामस्वरूप प्रसाद व उनके सहयोगी कवियों ने द्विवेदीजी के खिलाफ विद्रोह की नीति अपनाई। कवियों ने अपनी कविताओं में नए–नएविषय और भाषा–शैली के नए–नए प्रयोग करना प्रारंभ कर दिए थे और उसके भावी विकास की योजना बनाते थे। डॉ. विजयपाल सिंह छायावाद के उदय पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि "भारतेंदु–युग में यथार्थवादी भावभूमि, राष्ट्रीय भावना और स्वच्छंदतावादी मनोवृत्ति–इन तीन भावभूमियों का स्वरूप निर्धारित हो चुका था। द्विवेदी–युग में प्रथम दो का विकास तो व्यापक रूप में हुआ, किंतु तीसरी का मार्ग अवरुद्ध–सा हो गया श्रीधर पाठक, मुकुटधर पांडेय और मैथिलीशरण गुप्त की कुछ गीतात्मक रचनाओं में इसका ईषत् आभास पाया जाता है। छायावादी–युग में आकर यह तीसरी भावभूमि अत्यंत प्रधान हो गई और अन्य दोनों के विकास ने छायावादी काव्य को पूर्णता प्रदान की। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कविता कहीं बीच से टपकी हुई वस्तु नहीं है, बल्कि उसकी विकास–प्रक्रिया एक सुनिश्चित आधार पर प्रतिष्ठित है।"[1]

छायावाद के प्रादुर्भाव को लेकर विद्वानों में प्रायः मतभेद व्याप्त था। कुछ विद्वान व आलोचक छायावाद की प्रेरणा अंग्रेजी और बांग्ला कविताओं से आयी मानते हैं, कुछ छायावाद को रहस्यवाद के अंतर्गत रखते हैं, अन्य छायावाद को शुद्ध भारतीय वस्तु मानते हैं। कुछ इसे आधुनिक युग का विद्रोह मानते हैं। आचार्य शुक्ल ने इस नामकरण का श्रेय बांग्ला के कवियों को देते हुए लिखा था–"पुराने ईसाई संतों के छायाभास (फैंटासमाटा) तथा यूरोपिय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिंबालिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बांग्ला में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगी थीं।"[2] अतः हिंदी में भी इस तरह की कविताओं का नाम छायावाद चल पड़ा। इस संबंध में यह द्रष्टव्य है कि बांग्ला–साहित्य, हिंदी से काफी पहले से ही अंग्रेजी–साहित्य का अनुसरण करने लगा था। बांग्ला के कवियों पर भी रोमांटिक काव्य का प्रभाव पड़ा था, साथ ही अंग्रेजी के रहस्यवादी (मिस्टिक) कवियों का भी। और वहाँ ऐसे नवीन पद्धति के काव्य को 'छायावादी–काव्य' कहा जाने लगा था। रवींद्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' तथा इसी पद्धति की अन्य बांग्ला रचनाओं का हिंदी के इस नवीन काव्य पर प्रभाव पड़ा था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कहना है कि बांग्ला में 'छायावाद' नाम कभी चला ही नहीं। छायावाद नाम पड़ने का कारण चाहे जो भी रहा हो, इसमें कोई संदेह नहीं

कि 1920 ई. के आसपास ही इस नवीन काव्य धारा का 'छायावाद' नाम प्रचलित हो गया था।

कुछ विद्वानों का कहना है कि हिंदी में छायावाद का उद्भव और विकास अंग्रेजी के रोमांटिक–काव्य से प्रभावित होने के कारण हुआ था। इंग्लैंड में जिन विषम परिस्थितियों में रोमांटिक काव्यधारा का उदय हुआ था, लगभग वैसी ही विषम परिस्थितियाँ पचास वर्ष बाद भारत में भी उत्पन्न हो गई थी? इसलिए उन विषम परिस्थितियों से क्षुब्ध और पीड़ित हिंदी के नव–कवियों ने अपनी वैसी ही विषम मानसिक मनःस्थितियों के कारण अंग्रेजी की रोमांटिक काव्यधारा को अपने अधिक अनुकूल पाया था। यही कारण है कि हमें हिंदी के छायावादी काव्य पर अंग्रेजी के उस रोमांटिक–काव्य का प्रभाव दिखाई देता है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार– "स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्ति छायावाद में अवश्य है, पर छायावाद स्वच्छंदतावाद नहीं है। स्वच्छंदतावाद या रोमांटिसिज्म यूरोप में अठारहवीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्पन्न और विकसित हुआ और उसके मूल में यूरोप की तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया का ही प्रमुख हाथ था। इसके विपरीत छायावाद उसके सौ वर्ष बाद भारतीय भूमि में भिन्न आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के बीच विकसित हुआ। यद्यपि दोनों में ही व्यक्ति–स्वातंत्र्य, स्थूल बंधनों और रूढ़ियों के विरुद्धविद्रोह, सौंदर्य–प्रेम और आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्तियाँ समान रूप से पाई जाती हैं, पर दोनों के बीच देश और काल की जो दूरी है, उससे दोनों के स्वरूप में पर्याप्त अंतर भी है। अतः 'छायावाद' शब्द रोमांटिसिज्म का हिंदी अनुवाद नहीं है और न ही वह यूरोपीय रोमांटिक कविता का अंधानुकरण है। वह तो भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित, भारतीय परिस्थितियों से अनुप्रेरित और प्रथम महायुद्ध के बाद के नवीन मानवतावादी आदर्शवाद पर आधारित हिंदी की मौलिक काव्यधारा है।"[3] हिंदी में कुछ समय तक रहस्यवाद को ही छायावाद माना जाता था, परंतु बाद में रहस्यवाद और छायावाद में अंतर माना जाने लगा। हिंदी साहित्य कोश में कहा गया है कि–"रहस्यवाद छायावाद का एक लघु अंशमात्र है, दोनों एक नहीं हैं, अर्थात् सभी रहस्यवादी कविताएँ छायावादी नहीं होतीं और न सभी छायावादी कविताएँ रहस्यवादी ही होती हैं।"[4] अतः स्पष्ट है कि छायावाद काव्य धारा को अंग्रेजी की रोमांटिक व स्वच्छंदतावादी काव्य धारा प्रभावित करती है।

छायावाद का प्रवर्तन करने वाले कवियों में किसका नाम लिया जाए, इस पर विद्वानों में प्रायः मतभेद है। विनयमोहन शर्मा और प्रभाकर माचवे, माखनलाल चतुर्वेदी को छायावाद का प्रवर्तक मानते हैं। पंडित नंददुलारे वाजपेयी, सुमित्रानंदन पंत को छायावाद का पहला कवि मानते हैं। वे पंत के 'उच्छ्वास' नामक कविता से छायावाद का उदय मानते हैं। इलाचंद्र जोशी, राय कृष्णदास, शिवनाथ एवं स्वयं सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद को छायावाद का पहला कवि मानने के पक्ष में हैं। वास्तव में, अगर देखा जाय तो छायावाद का आरंभिक विवेचन मुकुटधर पांडेय ने जबलपुर से प्रकाशित 'श्री शारदा' पत्रिका (सन् 1920 ई.) में किया। इसी के आस–पास स्वयं छायावादी कवियों ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करना आरंभ कर दिया था, पर छायावाद को समझने की पहल श्री मुकुटधर पांडेय ने की, इसमें संदेह नहीं। 1920 ई. में 'श्री शारदा' पत्रिका में 'छायावाद' शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने लेख लिखे। जिनमें 'छायावाद क्या है?', हिंदी में 'छायावाद' प्रमुख निबंध है। इन निबंधों का ऐतिहासिक दृष्टि से यह महत्व है कि जब छायावादी काव्य का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट नहीं था, तब मुकुटधर पांडेय ने उसका स्वरूप स्पष्ट करने की चेष्टा

की। आचार्य शुक्ल का मत है कि "हिंदी कविता की नई धारा (छायावाद) का प्रवर्तक इन्हीं को विशेषतः मैथिलीशरण गुप्त और मुकुधर पांडेय को समझना चाहिए।"[5] श्री इलाचंद्र जोशी ने आचार्य शुक्ल के इस मत का खंडन किया है। उनके अनुसार छायावाद की उत्पत्ति और विकास के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का वक्तव्य एकदम भ्रामक निर्मूल एवं मनगढ़ंत है। जोशी जी जयशंकर प्रसाद जी को अविवादास्पद रूप से हिंदी के सर्वप्रथम छायावादी कवि घोषित करते हैं।उनके अनुसारमैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय और माखनलाल चतुर्वेदी में छायावाद की प्रवृत्ति गौण रूप में मिलती है, समग्र रूप से उन्हें छायावादी नहीं कहा जा सकता। गणपतिचंद्र गुप्त, जयशंकर प्रसाद को छायावाद के प्रथम कवि स्वीकार करते हुए कहते हैं– "प्रसाद के 'झरना' (सन् 1919) से ही छायावाद का प्रारंभ मानना चाहिए, किंतु यह ध्यान रहे, प्रसाद की कुछ कविताएँ इससे पूर्व भी पत्र–पत्रिकाओं में छप गई थीं, जिनमें छायावादी शैली का प्रारंभिक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है तथा इन रचनाओं का प्रकाशन काल सन् 1909 से 1917 है, अतः छायावाद का उद्भवकाल और पीछे तक ले जाया जा सकता है। अतः इन सब तथ्यों पर विचार करते हुए छायावाद का आरंभ प्रसाद की स्फुट कविताओं से ही मानना उचित होगा।"[6] मुकुटधर पांडेय भी प्रसाद को ही छायावाद का प्रथम कवि मानते हैं क्योंकि प्रसाद जी की छायावादी रचनाओं का संकलन 'झरना' सन् 1918 ई. में प्रकाशित हो चुका था। उन्होंने स्वयं लिखा है–यह बात सही है कि मैंने 'छायावाद' का नामकरण किया और 'छायावाद' पर सर्वप्रथम लेखमाला लिखी। पर मैं मानता हूँ। मेरी किसी कविता में छायावाद के उपादान पाए जाते हों, यह दूसरी बात है।"[7] अतः संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि छायावाद का उदय किसी एक परिस्थिति के कारण नहीं हुआ, बल्कि उस काल की विभिन्न परिस्थितियों और विचारधाराओं ने छायावाद के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पूँजीवाद की प्रवृत्तियाँ, अंग्रेजी की रोमांटिक व स्वच्छंदतावाद, रहस्यवाद, बांग्ला में ब्रह्म समाज का आंदोलन, राजाराम मोहन राय की क्रांतिकारी विचारधाराएँ, संपूर्ण समाज के स्वातंत्र्य की भावना आदि इन विभिन्न परिस्थितियों के कारण छायावाद का उदय हुआ। इसके अलावा रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ व द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता के विरुद्धविद्रोह ने भी छायावाद के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

जिस प्रकार मनुष्य का जीवनकाल व परिस्थिति के अनुसार हर क्षण बदलता रहता है, उसी प्रकार साहित्य भी परिवर्तित होता रहता है। मनुष्य के जीवन का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है और साहित्य का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ मनुष्य के जीवन को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उसी प्रकार साहित्य भी मनुष्य के जीवन के साथ–साथ बदलता रहता है। प्रथम महायुद्धके बीच और उसके बाद भारत की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। उन परिवर्तनों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। छायावाद काव्य में निर्माण की पृष्ठभूमि में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। प्रथम विश्व युद्धके बाद भारतीय राजनीतिक जीवन अभूतपूर्व संघर्ष का जीवन रहा है। अंग्रेजों ने सारे छोटे–छोटे और विद्रोही राज्यों को समाप्त कर, सारे देश में अपना आतंक जमा लिया उनकी खर्चीली शासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, अन्याय–अत्याचार, नए–नए करों, शोषण की नीति, व्यापार नीति और ईसाई धर्म के प्रचार ने सामान्य जन में एक गहरा असंतोष उत्पन्न कर दिया था, जो धीरे–धीरे भयावह रूप धारण करता जा रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी में देश की पराधीनता के फलस्वरूप पूर्व

और पश्चिम का जो संघर्ष स्थापित हुआ, उससे भारत में नवीन चेतना उत्पन्न हुई। डॉ. शम्भुनाथ के अनुसार– "1918–20 के वर्ष भारतीय राजनीति में युगांतर के वर्ष हैं। महायुद्धकी समाप्ति, मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड–सुधार, सत्याग्रह, पंजाब हत्याकांड, खिलाफत आंदोलन, तिलक की मृत्यु और गांधी जी का कांग्रेस पर प्रभुत्व, असहयोग आंदोलन का प्रारंभ, ये सब महत्वपूर्ण घटनाएँ इसी काल में हुईं, जिन्होंने भारतीय मध्यवर्ग की चेतना को बिल्कुल बदल दिया।"[8] देश में क्रांतिकारी संगठन भी बनने प्रारंभ हो गए थे। ये संगठन स्वतंत्रता प्राप्ति में सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। उधर गांधी जी के नेतृत्व में अनेक अहिंसात्मक आंदोलन चलाए जा रहे थे, जिससे देश में नवचेतना, नवस्फूर्ति, नवशक्ति का संचार हो रहा था। गांधी जी के नेतृत्व में यह आंदोलन धीरे–धीरे जन आंदोलन बनता जा रहा था। जलियाँवाला बाग का अमानुषिक हत्याकांड, रॉलेट ऐक्ट, खिलाफत आंदोलन, साइमन कमीशन, नमक कानून, गोलमेज परिषद्, तथा 1917 ई. में लेनिन के नेतृत्व में हुई समाजवादी रूसी क्रांति ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ थी, जिसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को तीव्रतर बना दिया गांधी जी के सिद्धांतों और उपदेशों से मध्यवर्ग को यह विश्वास हो गया था कि अंग्रेजों का सामना करने के लिए भारतीयों के पास अपनी आत्मिक शक्ति के सिवा और कोई रास्ता नहीं है। गांधी जी का प्रभाव पूँजीपति–वर्ग ही नहीं, मध्यवर्ग के नौकरी पेशा लोगों, निम्न मध्यवर्ग के किसानों पर भी पड़ा; क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति को जाग्रत कर जनता के मन से भय की भावना को निकाल बाहर किया। डॉ. नगेंद्र के शब्दों में–"भारत में जो नवीन चेतना उत्पन्न हुई। उसके मूल में भारत का अपनी खोई हुई आत्म गरिमा खोजने का अथक प्रयास था और उसका राजनीतिक संघर्ष उसी प्रयास का एक महत्वपूर्ण पथ था।"[9] यह संघर्ष केवल आंतरिक ही नहीं, बल्कि बाह्य भी था। साहित्यिक दृष्टि से भी यह समय काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ। तत्कालीन साहित्यकारों की रचनाओं में भी हमें यह संघर्ष देखने को मिलता है। जिसका प्रभाव भारतेंदु व द्विवेदी युग के अलावा छायावादी युग में भी दिखाई देता है। डॉ. शम्भुनाथ के अनुसार– "प्रथम महायुद्धके समय और उसके बाद अंग्रेजों की नीति बदली, देश का औद्योगीकरण तेजी से शुरू हुआ और राजनीतिक संघर्ष भी उत्तरी भारत में तीव्रतर हुआ। गांधी जी के राजनीति में प्रवेश के बाद किसान आंदोलन भी शुरू हुए और कांग्रेस का साथ सभी वर्गों के लोग देने लगे। इन सब कारणों से मध्यवर्ग की चेतना विद्रोही बन गई। वही विद्रोहात्मक परिवर्तन हिंदी कविता में छायावाद के रूप में दिखलाई पड़ा।"[10]राष्ट्रीय कविता में छायावादी शैली में गांधीवादी राजनीतिक विचारधारा व्यक्त की गई और साम्राज्यवाद के विरुद्धसंघर्ष करने के लिए जनता को प्रेरित किया गया

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना होने के साथ ही आर्थिक स्थिति बिगड़नी शुरू हो गई। अंग्रेज व्यापारी भारत का शोषण कर अपना खजाना भरने में लगे थे। अंग्रेजों ने भारत में दोहरी शोषण पद्धति अपनाई। एक ओर परंपरागत उद्योगों का विनाश और दूसरी ओर सरकारी मशीनरी के बढ़ते हुए खर्च को पूरा करने के लिए नित्य नवीन करों की वृद्धि। इस दोहरे शोषण के फलस्वरूप पैदा होने वाली भारत की कंगाली का एकरूप उन अकालों और प्लेग आदि महामारियों के प्रकोप के रूप में देखा जा सकता है, जिनका शिकार वह उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। अंग्रेज स्वभाव से ही व्यापारी थे। उसकी इस साम्राज्य स्थापना का मूल उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण कर अपना खजाना भरना था। पहले तो उसने भारतीय रजवाड़ों को लूटकर उनकी सारी धन–दौलत इंग्लैंड भेज दी। फिर अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए उसने भारतीय उद्योग–धंधों और व्यापार को नष्ट करना आरंभ कर दिया, वह भारत से कच्चा माल सस्ते दामों में खरीद कर इंग्लैंड भेज

देता था और फिर उससे नाना प्रकार की वस्तुएँ, वस्त्र आदि बनवाकर भारत में मनमानी कीमत पर उन्हें बेचता था। उसकी इस नीति से भारतीय उद्योग–धंधें नष्ट होने लगे। किसानों को उसका उचित मूल्य मिलना बंद हो गया था। उन पर मनमाना लगान लगाकर उन्हें निर्धन और सूदखोर साहूकारों की कृपा का मुँहताज बना रखा था। इस तरह भारतीय–व्यापार पर अंग्रेजों का एकाधिकार स्थापित हो चुका था। अंग्रेजों ने भारत में जो आर्थिक नीतियाँ समायोजित की, वह ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की जरूरतों को ध्यान में रखकर की गई थीं, जिससे भारतीय परंपरागत अर्थव्यवस्था ध्वस्त हो गई। 1857 ई. के बाद अंग्रेजों ने हिंदुस्तान में शोषण की नीति अपनाई। यह बैंक पूँजी द्वारा शोषण की नीति थी। 1914 ई. के बाद यह शोषण और भी तीव्र हुआ। अंग्रेजों का शोषण कार्य बैंक पूँजी द्वारा निरंतर बढ़ता गया बैंकों, व्यापार, बीमा, जहाज, रेल, खाद्य सामानों आदि उद्योगों में ब्रिटिश पूँजी ही अपना एकाधिकार जमाए रही। इस तरह हिंदुस्तान में मंदगति से ही सही, जो कुछ औद्योगिक विकास हुआ, उससे भारतीय पूँजीवाद की जड़ें जम गईं। अंग्रेजों ने अपने शोषण की नीति के द्वारा हिंदुस्तान की जनता को और भी गरीब और खेती पर निर्भर रहनेवाला बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में साम्राज्यवादी पूँजीवादी के विरुद्धभारतीय जनता का संघर्ष और भी तीव्र हुआ। जिसमें पूँजीवादी, मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग सबने भाग लिया। इन प्रवृत्तियों का प्रभाव हमें तत्कालीन आधुनिक हिंदी साहित्य में भी दिखलाई पड़ता है। साहित्यकारों ने देश में बढ़ती हुई महंगाई, समय–समय पर पड़ने वाले अकालों, प्लेग आदि महामारियों, विभिन्न प्रकार के लगाए गए कर (टैक्स) तथा कृषि की दुर्व्यवस्था पर लेख व कविता लिखी गई।

भारत की धार्मिक स्थिति भी अत्यंत दयनीय थी। भारतीय समाज पूरी तरह धार्मिक अंधविश्वासों के जाल में जकड़ा हुआ था और इसके चलते सामाजिक सुधार की कोई गुंजाइश नहीं थी। धार्मिक क्षेत्र में जो आंदोलन हुए उनमें प्रमुख रूप से अंधविश्वास, मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, वंशानुगत पुरोहिती आदि का विरोध किया गया, इनमें सुधारों के प्रयास किए जाने लगे। इन धार्मिक सुधार आंदोलनों ने भारतीय जनमानस को उद्वेलित किया, जिससे समाज के प्रत्येक क्षेत्र में बदलाव प्रारंभ हुआ। इस नवीन चिंतन ने धर्म के क्षेत्र में धार्मिक सुधार आंदोलन को जन्म दिया, जिसका व्यापक प्रभाव भारतीय जनमानस पर भी पड़ा। इस संबंध में विपिन चंद्र ने लिखा है– "धर्म सुधार के आन्दोलनों ने अनेक भारतीयों को इस योग्य बनाया कि वे आधुनिक विश्व से तालमेल बिठा सके। वास्तव में उनका जन्म ही पुराने धर्म को एक नए आधुनिक साँचे में ढालकर उनको समाज के नए वर्गों की आवश्यकताओं के अनुरुप बनाने के लिए हुआ था।"[12] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में जो नया समाज विकसित हो रहा था, उस पुराने धर्म की मान्यताएँ, परंपराएँ, धर्मांधताएँ, आदि उसके विकास में बाधक थी। ऐसी स्थिति में धार्मिक सुधार आंदोलन अनिवार्य था।

स्त्रियों की दशा अत्यंत दयनीय थी। लड़कियों का जन्म लेना अभिशाप माना जाता था, इसलिए कुछ क्षेत्रों में उनके जन्मते ही मार डालने की प्रथा प्रचलित थी। बाल विवाह, अनमेल विवाह के साथ–साथ उन्हें सती प्रथा जैसे घोर अमानुषिक कुकृत्यों का भी सामना करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त उन्हें समाज में न तो शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था और न ही विधवा विवाह की ही अनुमति प्राप्त थी। निम्न वर्ग की दशा अत्यंत दयनीय थी। इसके अलावा दूसरे कई तरह के सामाजिक नियंत्रण, अंधविश्वास, धार्मिक कट्टरता, अंधभाग्यवाद, हैसियत और अधिकार जैसे कारक थे, जिन्होंने समाज को कई स्तरों पर बाँट रखा था। इस तरह स्पष्ट

है कि तत्कालीन सामाजिक स्थिति अत्यंत जटिल एवं दयनीय थी। अंग्रेजी सभ्यता और जीवन पद्धति का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा। अंग्रेजी शिक्षा नीति के कारण अंग्रेजी पढ़े–लिखे कुछ भारतीयों ने अपने धर्म और समाज की रूढ़ियों, अंध विश्वासों, रहन–सहन की पद्धति आदि को बदलने के लिए आंदोलन आरंभ किया। उन्नीसवीं सदी में नए शिक्षित मध्य वर्ग का ध्यान इन सामाजिक बुराईयों एवं धार्मिक अनैतिक कुकृत्यों एवं बाह्याचारों की ओर गया और इसका विरोध शुरू किया। तत्कालीन समाज में इस प्रकार की बहुत पहले से चली आ रही कुप्रथाओं का विरोध आसान नहीं था, क्योंकि इसकी पहली शर्त थी धर्मसुधार। इसलिए धर्म की विद्रूपताओं पर प्रहार के साथ–साथ समाज सुधार की प्रक्रिया आगे बढ़ी। इन्हें दूर करने के लिए समाज के विभिन्न वर्गों में शिक्षा का प्रचलन जरूरी कार्य था। यह कार्य विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक संगठनों यथा ब्रह्म समाज,प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी, आर्य समाज आदि द्वारा शुरू किए गए। यद्यपि इन संगठनों के बीच धर्म के स्वरूप को लेकर काफी विभेद भी रहा।

डॉ. नगेंद्र के अनुसार–"साहित्यकारों ने यद्यपि प्रधानतः भारतीय उपनिषदों, वेदांत, वैष्णव भक्ति और कुछ शैवागमों और बौद्धधर्म का समन्वय प्रस्तुत किया, तो भी उन्होंने हेगेल के आध्यात्मिक सर्वात्मवाद और आलोच्य काल के लगभग अंत में मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का प्रभाव भी स्वीकारकिया। सांस्कृतिक चेतना, मानवतावादी मूल्य, राष्ट्रीयता, लोकतांत्रिक विचारधारा, सामाजिक समता, बुद्धिवाद, नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण, उपयोगितावाद,आदर्शवाद, विश्वबंधुत्व, निःस्वार्थ सेवा एवं रहस्यवाद, आदि ने आलोच्यकालीन हिंदी साहित्य का क्षितिज व्यापक बनाया और साहित्यकारों ने अनेक प्रकार की नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और दार्शनिक समस्याएँ सुलझाने का प्रयास किया। प्रथम महायुद्धके बाद की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों, रूसी राज्यक्रांति तथा महात्मा गांधी की विचारधारा और वैज्ञानिक प्रगति ने मध्ययुगीन दृष्टिकोण पर प्रहार किया और सामान्य जन के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न किया।"[13]

इस प्रकार एक संघर्षमय युग में साहित्यकारों का आविर्भाव होने के कारण उनकी रचनाओं में विविधता होना स्वाभाविक था। उन्होंने नए–नएविषयों को जैसे–राष्ट्रीय जागरण, नए मानवीय मूल्य, नारी स्वातंत्र्य, प्रकृति चित्रण, आदि को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया यह परिवर्तन हमें छायावादी युग की रचनाओं में भी देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. छायावाद के प्रतिनिधि कवि–डॉ. विजयपाल सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–2011, पृष्ठ 6

2. हिंदी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचंद्र शुक्ल, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2005, पृष्ठ 384

3. हिंदी साहित्य कोश (भाग–1)–प्रधान संपादक, डॉ. धीरेंद्र वर्मा, प्रकाशक ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण–2011, पृ.–252

4. वही, पृष्ठ 276

5. हिंदी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 384

6. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास–डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1998, पृ.–78

7. हिंदी में छायावाद–मुकुटधर पांडेय, तिरूपति प्रकाशन, पृष्ठ 58

8. छायावाद युग–डॉ.शम्भुनाथ सिंह, प्रकाशक सरस्वती मंदिर, वाराणसी, संस्करण–1962, पृष्ठ 7

9. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास– संपादक, डॉ. नगेंद्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 54

10. छायावाद युग–डॉ.शम्भुनाथ सिंह, प्रकाशक सरस्वती मंदिर, वाराणसी, संस्करण– 1962, पृष्ठ 3

11. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिनचंद्र हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय– 1995, पृष्ठ 48

12. आधुनिक भारत का इतिहास– विपिनचंद्र, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, नई दिल्ली– 2010, पृष्ठ 228

13. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास– संपादक, डॉ. नगेंद्र, पृष्ठ 21

❑❑❑

भाषा और जेंडर

भावना मासीवाल

भाषा एक सामाजिक उपागम है इसकी निर्मिति में सामाजिक संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा सिर्फ वही नहीं है जो लिखी व बोली जाती है बल्कि वह भी है जो हमारी सोच, व्यवहार, रुचि और मानसिकता को बनाती है। भाषा व्यवहार से कहीं अधिक सामाजिक है क्योंकि भाषा का अधिगम ही अनौपचारिक रूप से आरंभ होता है। भाषा का दायरा बहुत बड़ा है इसे सिर्फ एक शब्द या फिर सैद्धांतिक व व्याकरणिक कोटि में बद्धकरके ही व्याख्यायित व विश्लेषित नहीं किया जा सकता है। भाषा की संरचना में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं का अहम योगदान होता है। इसलिए अब भाषा पर चिंतन सिर्फ कुछ संदर्भो को लेकर ही नहीं किया जा सकता है बल्कि उन सभी आयामों, संदर्भों पर बात करनी होगी जिनसे 'भाषा' का निर्माण होता है या फिर जिनसे भाषिक मानसिकता बनती है। भाषिक मानसिकता ही भाषा के निर्माण में अहम होती है। भाषा पर हिंदी में आज भी कुछ परंपरागत संदर्भों के साथ ही बात होती है जिनमें"भाषा बहता नीर है, भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है" आदि है। भाषा की निर्मिति में सामाजिक संरचना के साथ–साथ वर्ग, जेंडर और जाति की भी अहम भूमिका होती है। "गौरतलब है कि भाषा विशेष का वर्चस्व और किसी खास भाषा से वर्ग विशेष का लगाव कोई नई बात नहीं है। यह भी सही है कि हमेशा से ज़्यादातर भाषाएँ अपनी निर्मिति में कुछ पूर्वाग्रहों (लिंग, जाति, धर्म, क्षेत्र आदि) से ग्रस्त रही हैं। तमाम भाषाओं में ऐसे संकेत देखे जा सकते हैं। अपने भारत में कुछ भाषाओं के नाम (अपभ्रंश, पैशाची) ही वर्चस्व की सूचना देते हैं"[1]। आज भाषा का प्रश्न किसी एक विषय से संबंधित नहीं रह गया है बल्कि यह व्यक्ति के व्यक्तित्व का अवलोकन करने का माध्यम बनकर उभर रही है। ऐसे में यदि भाषा ही लैंगिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होगी तो कैसे वह व्यक्ति के व्यक्तित्व के सही विकास में सहायक हो सकेगी। इसी वजह से आज भाषा और जेंडर को समझना आवश्यक हो जाता है।

साहित्य का भाव पक्ष ही साहित्य को स्वीकारे जाने का मानक नहीं है। बल्कि उसका शैली पक्ष भी उसके भाव पक्ष के समान ही आवश्यक है। शैली पक्ष के माध्यम से भी लेखक और लेखकीय परिवेश को समझा जा सकता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि भाषा व्यक्ति के अपने सामाजिक परिवेश से उपजती है और वहीं से विस्तार पाती है। भाषा का वही पक्ष उसकी शैली का निर्माण करता है ऐसे में गणपतिचंद्र गुप्त के शब्दों में यह कहना सही है कि "कवि और साहित्यकार जिस भाषा, जिस रूप और जिस ढ़ंग से अपने भावों, विचारों या इतिवृत्ति को व्यक्त करता है, वही शैली है। शैली के अंतर्गत भाषा, शब्दचयन, अलंकारों का प्रयोग, छंदों का उपयोग, काव्य रूप आदि का समावेश किया जाता है। काव्य के प्रारंभिक तीन तत्व (भाव, कल्पना, बुद्धि) यदि उसके प्राण हैं तो शैली उसका शरीर है। जैसे बिना शरीर के प्राण नहीं टिक सकते, वेसै ही बिना भाषा आदि के साहित्य का निर्माण नहीं हो सकता"[2]। व्यक्ति से समाज, समाज से साहित्य के भीतर भी भाषा और व्यवहार का महत्वपूर्ण योगदान है। भाषा विज्ञान में सस्यूर इसे लांग (भाषा व्यवस्था) और परोल (वाक् अर्थात् भाषा

व्यवहार) के रूप में प्रयोग करते हैं। लांग भाषिक नियमों के अनुरूप व्यक्ति के मस्तिष्क में संचालित होती है इसलिए यह समरूपी होती है वहीं परोल विषमरूपी होती है। इसका भाषिक व्यवहार प्रत्येक व्यक्ति के संदर्भ में अलग होता है। यह समाज सापेक्ष होती है। सस्यूर के समान ही चॉम्स्की भी भाषा के दो आयामों की बात करते हैं भाषिक क्षमता और भाषिक व्यवहार। चॉम्स्की भी भाषिक क्षमता को समरूपी और भाषिक व्यवहार को विषमरूपी मानते हैं। कहा जा सकता है कि भाषा संप्रेषण का माध्यम है और संप्रेषण सामाजिक प्रक्रिया है। इस कारण भाषा, व्यवहार में विषमरूपी होती है। भाषा, समाज और उसके संस्थानिक उपादानों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती है। कहा जा सकता है कि "भाषा मूलतः और अंततः समाज में और समाज के लिए प्रयुक्त होती है।"[3] भाषा समाज सापेक्ष होती है और यही पहचान भी होती है। पहचान अर्थात् अस्मिता का प्रश्न व्यक्ति, वर्ग, समाज और राष्ट्र से जुड़ा है। जिसकी अस्मिता का बोध उसकी भाषा से होता है।

जेंडर का संबंध पहचान से है जो मनुष्य की शारीरिक, जैविक, मानसिक और व्यावहारिक विशेषताओं के आधार पर स्त्री और पुरुष के बीच के अंतर को स्पष्ट करता है। जेंडर का संबंध एक ओर पहचान से था तो दूसरी ओर सामाजिक विकास की प्रक्रिया के तहत स्त्री–पुरुष की भूमिका से। जेंडर क्या है? समाज में आज भी एक धुंधला प्रश्न है। जेंडर शब्द का संबंध प्रारंभ में भाषा में लिंग अर्थात् स्त्रीलिंग व पुल्लिंग से रहा है। अन्य भाषाओं में जेंडर विभाजन की इस प्रक्रिया के तीन रूप स्त्रीलिंग, पुल्लिंग और न्यूट्रल जेंडर का प्रयोग मिलता है तो हिंदी में स्त्रीलिंग व पुल्लिंग केवल दो रूपों का प्रयोग मिलता है वहीं वैदिक संस्कृत में देखते हैं तो एक तीसरा लिंग नपुंसकलिंग (उभयलिंगी) का प्रयोग भी भाषा में देखा जा सकता है। पश्चिम में तीसरे न्यूट्रल जेंडर विभाजन का आधार स्त्रीत्व व पुरुषत्व के समाज में निर्धारित गुणों से अलग स्वतंत्र पहचान का होना था तो वहीं संस्कृत में तीसरे लिंग से अभिप्राय स्त्रीत्व व पुरुषत्व के गुणों का साथ होना था। जो आज भी भाषाविज्ञान में देखा जा सकता है। स्त्रीत्व व पुरुषत्व शब्दों के प्रयोग के संदर्भ में अरस्तु ने कहा कि ग्रीक विचारक प्रोतागोरस ने ही भाषा में स्त्रीत्व, पुरुषत्व और न्यूट्रल शब्दों का प्रयोग संज्ञा के वर्गीकरण के संदर्भ में किया[4]। भाषा में जेंडर की यह विभाजन प्रक्रिया व्यवहार मूलक थी जैसा कि चार्ल्स हॉकेट ने कहा "शब्दों के व्यवहार के आधार पर संज्ञा का वर्गीकृत विभाजन जेंडर है"[5]। भाषा के संदर्भ में भले ही जेंडर का प्रयोग शब्दों के व्यवहारमूलक प्रयोग पर आधारित न था लेकिन सामाजिक संदर्भों को भी भाषा से अलग करके नहीं देखा जा सकता जैसा कि "बारबरा जॉनसन का मानना था कि जेंडर (स्त्री) का सवाल भाषा का सवाल है क्योंकि भाषा भौतिक रूपों में हस्तक्षेप करती है"[6]।

भाषा व्यक्तित्व के विकास का महत्वपूर्ण माध्यम है। यह केवल व्यक्तित्व की ही नहीं होती बल्कि उसकी अस्मिता की भी पोषक होती है। भाषा के लैंगिक संबंधों पर जब हम बात करते हैं तो जेंडर का सवाल मुख्य रूप से उभरकर सामने आता है। आखिर भाषा में जेंडर किस तरह से हस्तक्षेप करता है। इसे स्त्री और पुरुष लेखकों के लेखन और उनकी शैली से समझा जा सकता है। इसके साथ ही उनकी भाषा व शब्दों में उनकी सामाजिक व राजनीतिक छवि भी उभरकर सामने आती है। भाषा की संरचना अर्थात उसके संस्कृत व्याकरण में तीन लिंगों का प्रयोग किया जाता है। स्त्री–पुरुष और नपुंसकलिंग। मगर अंग्रेजी में केवल दो ही लिंगों का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक संदर्भों में भाषा पर ध्यान दिया जाए तो भाषा का व्याकरण और उस व्याकरण के अतंर्गत स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के आधार पर शब्दों, प्रत्ययों का विभाजन है। इसका उदाहरण स्त्री और पुरुष संबोधन के लिए

प्रयुक्त श्रीमान और श्रीमती शब्द का प्रयोग भाषा के अंतर्गत संकेत रूप में किया जाता है। इसी तरह संकेत भाषा के जरिए स्त्री के शादीशुदा होने की पहचान मौजूद है मगर पुरुष के शादीशुदा होने की पहचान का संकेत नहीं। क्योंकि समाजीकरण की प्रक्रिया में यह माना गया कि स्त्री की पहचान विवाह के उपरांत उसके पति पर निर्भर करती है। इसी तरह अंग्रेजी में मिस्टर और मिस्ट्रेस शब्द का प्रयोग होता है। परंतु इनके अर्थों को देखा जाए तो इनमें समाज महिला और पुरुष के मध्य एक अदृश्य भाषा की लैंगिक विभाजक रेखा मौजूद रही है। जिसे मिस्ट्रेस के पर्यायवाची शब्द स्वामिनी, गृह स्वामिनी, स्त्री, अध्यापिका, कुशल महिला, उपपत्नी आदि संदर्भों में प्रयोग किया जाता है। वहीं पुरुषों के संदर्भ मास्टर के पर्यायवाची शब्द मालिक, नेता, स्वामी, मास्टर, अग्रणी, शासक, अध्यापक, नियोजक, नियोक्ता, उस्ताद, खलीफा, प्रवीण, विद, दक्ष आदि सकारात्मक अर्थ में ग्रहण किए जाते हैं। इसमें भी महिलाओं से जुड़ा 'जनाना' शब्द अपमान सूचक के रूप में और गालियों के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है। 'स्त्री' शब्द यहाँ व्यक्ति विशेष के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है वहीं महिला का संदर्भ स्त्री जाति अर्थात् समूह से है।

भाषा और मनुष्य का गहरा संबंध रहा है। मनुष्य स्वतः ही जाने अनजाने ध्वनियों और पदार्थ के माध्यम से भाषा का संबंध बनाता है। यह संबंध परिवेश से निर्मित होता है। भाषा के संदर्भ में किशोरीदास वाजपेयी ने हिंदी शब्दानुशासन में लिखा है कि मनुष्य ने भाषा का निर्माण किया और भाषा ने मनुष्य का निर्माण किया"[7]। रामविलास शर्मा भाषा को मानसिक क्रिया मानते हैं। वह लिखते हैं कि "भाषा के पीछे सक्रिय भौतिक शक्ति को ये लोग समझ नहीं पाते। भाषा मानसिक क्रिया मात्र नहीं है। इसका भौतिक क्रियाओं से गहरा रिश्ता है। भाषा की ज़रूरत मानव जगत को होती है। भाषा रचना मानव व्यवहार के साधारण नियमों का अपवाद नहीं है, वह उन साधारण नियमों को पुष्ट करती है। साधारण नियम यह है कि जैसा मनुष्य का जीवन होता है वैसे ही उसके विचार होते हैं। वैसे ही मनुष्य बुद्धि से, सोचकर योजना के अनुसार भाषा नहीं रचता वरन् उसकी जीवनयापन की आवश्यकताओं के अनुसर वह स्वतः स्फूर्त ढ़ंग से निर्मित होती है"।

क्या हमें विचार के मानसिक आधार के साथ–साथ उसके भौतिक आधार को भी खोजने की आवश्यकता नहीं है। भाषा को जब भी जेंडर से जोड़कर व उसकी दृष्टि से देखा जाएगा तो यह भाषा के वैचारिक पक्ष के साथ–साथ उसके भौतिक पक्ष के अध्ययन व विश्लेषण के सवाल को भी उठाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में भाषा की अर्जन प्रक्रिया के तहत ही वह भाषा के सांकेतिक चिह्नों, प्रतीकों को व्यावहारिक धरातल पर सीखता है और प्रयोग में लाता है। भाषा तक उसकी पहुँच के संसाधनों का भी उसकी भाषा के बनने में महत्वपूर्ण योगदान होता है जैसा कि रोबिन लिफॉफ कहती हैं भाषा तब तक हमारा इस्तेमाल करती है जब तक हम भाषा का इस्तेमाल करते हैं। अर्थात यदि कोई स्त्री बोलना चाहती है या स्वयं को अभिव्यक्त करना चाहती है परंतु भाषा तक उसकी पहुँच नहीं हैउसे वह संसाधन उपलब्ध नहीं है, जिसमें वह स्वयं को अभिव्यक्त कर सके। ऐसे में वह भाषा का इस्तेमाल नहीं कर सकेगी। भाषा विचारों के प्रकटीकरण का माध्यम रही है और भौतिक संसाधनों के अभाव में भाषा के अर्जन में बाधा उत्पन्न होती है। इस कारण परिवेश और संसाधन भी भाषा के अर्जन और उसके निर्माण में सहायक होते हैं।

भाषा और जेंडर का सवाल साहित्य में स्त्री पाठ की बात करता है। यह स्त्री पाठ स्त्री का नजरिया या कहें की उसकी दृष्टि है। जो पाठ को अपने अनुभवों से खोलती है उसके पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक व शैक्षणिक कारणों की पड़ताल

करती है। वाक्य विन्यास, शब्दविन्यास एवं शब्दों का चयन, साहित्य की कौन सी परंपरा का ध्यान रखा गया जैसा कि जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं कि सामाजिक परिस्थितियों का जैसा प्रभाव भावों और विचारों पर पड़ता है, वैसा ही प्रभाव उनको व्यक्त करने वाली शैली, व्यंजना के ढ़ंग, शब्द चयन वाक्य विन्यास आदि पर भी पड़ता है। सामाजिक जीवन में परिवर्तन के साथ भाषा में भी परिवर्तन होता है"[8]। स्त्री भाषा पर विचार करते समय हमें रूपकों या लाक्षणिक प्रयोगों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। क्योंकि19वीं और 20वीं शताब्दी के स्त्री लेखन में स्त्री का कमरे, घर, जमीन या समुद्र से संबंध जोड़ा गया यह ऐसा संबंध है जो पाठक व समीक्षक को उनके लेखन से बाहर उनके परिवेश और उनकी पृष्ठभूमि से जोड़ता है।

स्त्री भाषा के बारे में वर्जीनिया वुल्फ ने सबसे पहले ध्यान खींचा था। वुल्फ ने स्त्री भाषा को सकारात्मक अर्थों में व्याख्यायित किया। वुल्फ की राय थी कि लेखन के दौरान स्त्री को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। प्रारंभ में यह एक तकनीकी समस्या नजर आती है, स्त्रियों के वाक्यों या स्त्री के असंतुलित वाक्यों को देखकर अमूमन लोग उपहास करते हैं किंतु हक़ीकत यह है कि वाक्यों का गठन तो मर्दों के लिए हुआ था। पुरुषों के ढ़ीले वाक्य थे। स्त्रियों के लिए वाक्य हमेशा समास मूलक थे। पुरुष की भाषा की तुलना में स्त्रियों की भाषा में वाक्यों का स्वरूप काफी उदार, सहज और स्वाभाविक नजर आता है। अनामिका लिखती हैं कि "स्त्री भाषा देवदार की पेटी से जैसे कि पुराने बर्तन, पुराने मुकदमे के कागज, अजब–गजब लोकोक्तियाँ, लोरियाँ और लोकगीत। भाषा की दीवार पर हाथों की मरियाली थपकन से सपनों और जातीय स्मृतियों का अतिवात लिखती है स्त्रियों की भाषा। स्त्रियाँ न हों तो भाषा की जातीय अनुगूँजें ही गायब हो जाएँ। अकारण नहीं है कि नानी–दादी, घर या मुहल्ले की वृद्धाओं की संगति में पलने वाले बच्चों की भाषा में एक अलग अनुगूँज होती है। भाषा के साथ मातृ का प्रयोग उसे एक अलग तरह की पहचान देता है"[9]।

1. स्त्री[10]–प्रकृति–यह स्वभाव वाचक शब्द है। यास्क ने अपने 'निरुक्त' में 'स्त्यै' धातु से इसकी व्युत्पत्ति की है, जिसका अर्थ लगाया गया है–लज्जा से सिकुड़ना। यास्कीय व्युत्पत्ति पर दुर्गाचार्य ने लिखा है– 'लज्जार्थस्य लज्जन्तेपि हि ताः'। इसका भावार्थ है कि लज्जा से अभिभूत औरत का एक पर्याय स्त्री है। यहाँ आपत्ति की बात यह है कि लजाना या शरमाना केवल स्त्रियों का ही जन्मजात गुण नहीं है। अगर पुरुषवर्चस्वी सभ्यता में खास तरह के सामाजीकरण के तहत लड़कियों पर लज्जा का भाव आरोपित न किया जाए, तो वे भी लड़कों की तरह (अपने वास्तविक हकों के लिए) बात करने में समर्थ हो जाती हैं। पाणिनि ने भी 'स्त्यै' धातु से ही 'स्त्री' की व्युत्पत्ति की है, पर इस धातु का अर्थ शब्द करना और इकट्ठा करना लगाया गया है– 'स्त्यै शब्द–संघातयोः' (धातुपाठ)। इसका आशय है कि औरत को 'स्त्री' जैसी संज्ञा पुरुष की अपेक्षा उसके गप्पी, बकवादी या लड़ाकिन होने की लोकश्रुति के कारण दिया गया पतंजलि ने पाणिनीय सूत्र का थोड़ा विस्तार करते हुए कहा है– 'स्तन–केशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः।' यानी, स्तन–केश वाली स्त्री होती है और रोम वाला होता है पुरुष। स्तन तक तो ठीक है, पर 'केश' को स्त्री का चिह्न मानना कहाँ तक सही है? क्योंकि स्त्री के ही बाल लंबे होना कोई प्राकृतिक गुण–धर्म नहीं है। इसके गहरे अपने सांस्कृतिक कारण हैं। पतंजलि द्वारा 'स्त्री' शब्द की सरलीकृत परिभाषा दी गई है। जो आज भी समाज में इसी रूप में ग्रहण की जाती है। स्त्री शब्द पर पतंजलि ने अन्य तरीके से भी विचार किया है–"स्त्यायति अस्यांगर्भ इति स्त्री"–यानी गर्भ की स्थिति अपने भीतर रखने के चलते वह स्त्री कहलाती

है। पतंजलि ने यह भी कहा है– "शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गंधानां गुणानां स्यानं स्त्री" शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गंध आदि गुणों का स्यान यानी समुच्चय स्त्री है। यह भी स्त्री की देहवादी व्याख्या है। पतंजलि के इस वचन का भी पुराना स्रोत है– ऋग्वेद (1–16–16) पर यास्क–कृत टीका–'स्त्रियः एवं एताःशब्द–स्पर्श–रूप–रस–गंधहारिण्यः' (निरुक्त)।

प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वाराहमिहिर ने अपने ग्रंथ में यहाँ तक बढ़कर घोषणा कर डाली कि ब्रह्मा ने स्त्री के सिवा ऐसा कोई रत्न नहीं बनाया, जो दिखाई देने, सुनाई देने, स्पृष्ट होने या स्मरण में भी आने पर सुखदायी हो– "श्रुतं दृष्टं स्पृष्ट' स्मृतमपि नृपां ह्लादजननं न रत्न स्त्रीभ्योंयत् क्वचिदपि कृतं लोकपतिना।"(वृहत्संहिता) ये सारी परिभाषाएँ स्त्री को केवल देह और उसे पुरुष हेतु मनोरंजन–सामग्री मानने की सोच की प्रतिध्वनियाँ हैं। स्त्री शब्द से ही विकसित हुआ है लोक–भाषाओं में आया 'त्रिया' या 'तिरिया' शब्द। "तुम्ह तिरिया मति हीन तुम्हारी"– 'पद्मावत'। यह संभवतः "स्त्रियश्चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम् देवो न जानाति कुतो मनुष्यः" आदि प्रयोगों में आए 'स्त्रिय' का विकास है।

2. नारी–देवत्व–यह गुणवाचक शब्द है। 'नारी' यौगिक शब्द (नर + ई) है, शेष रूढ़ हैं।

3. महिला–सामाजिक प्रस्थिति–यह अधिकार वाचक शब्द है। मह + इलच + आ = महिला अर्थात पति का सम्मान करने वाली महिला है।

इसी संदर्भ में विस्तार से वरिष्ठ पत्रकार ओम थानवी जी लिखते हैं कि 'महिला शब्द सीधे–सीधे अंग्रेजी के 'लेडी' शब्द का समानार्थी है। 'लेडी' यानी अभिजातस्त्री।

भाषा मनुष्य को बनाती है या मनुष्य भाषा का निर्माण करता है। यह प्रश्न आज भी यथावत अपनी जगह है। क्योंकि जब हम भाषा को पढ़ते और पढ़ाते हैं तो उस क्रम में बहुत से शब्द रूढ़ परंपरा का हिस्सा बनकर हमारे समक्ष आ जाते हैं जिनकी उत्पति और इतिहास पर उनके रूढ़ होने के कारण चर्चा नहीं होती है और वह भाषा में रूढ़ शब्दों के अंतर्गत यथावत स्वीकार कर लिए जाते हैं। लेकिन यह रूढ़ शब्द भी समाज से उत्पन्न और अपने समय समाज के अनुरूप अर्थ की प्रतीति कराते हैं। कहा जा सकता है कि शब्द अश्लील नहीं होते बल्कि शब्दों के प्रति हमारे सोचने और विचारने की क्षमता और उसके अनुरूप शब्द से अर्थ ग्रहण करने की क्षमता ही शब्द को शील और अश्लील शब्द के रूप में परिभाषित करती है। स्त्री और पुरुष के मध्य भाषा की व्यवस्था को उनके लोक व सामाजिक व्यवहार से देखा जा सकता है। किसी भी समाज में स्त्री को ही परिवार व समाज की कमज़ोर कड़ी माना जाता है और यही कड़ी गाली के रूप में समाज में प्रयुक्त होती है स्वयं स्त्रियाँ भी स्त्रियों को स्त्री विरोधी गाली देती देखी जाती हैं और स्वयं को पुरुष के बरक्स प्रबल भाषिक व्यवहार का हिस्सा बनाती हैं। जिससे कहा जा सकता है कि भाषा के बनने में परिवार व समाज की मनोभूमि महत्वपूर्ण होती है।

संदर्भ सूची

1. गुप्त गणपतिचंद्र, साहित्यिक निबंध, लोकभारती प्रकाशन, पंद्रहवाँ संस्करण–2015, इलाहाबाद

2. अग्रवाल मुकेश, भाषा लोक, स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2015, दिल्ली

3. अनामिका, कविता में औरत, साहित्य उपक्रम प्रकाशन, दूसरा संस्करण–2007, दिल्ली

4. अनामिका, स्त्री का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2012, दिल्ली

5. चतुर्वेदी जगदीश्वर,स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण–2011, नई दिल्ली

6. डॉ.सिंह, सुधा, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, संस्करण–2008, नई दिल्ली

7. http://en.wikipedia.org/wiki/Gender

8. http://en.wikipedia.org//wiki// Grammatical&gender

9. जनपथ (भाषा विशेषांक), (सं) अनंत कुमार सिंह, जनवरी–फरवरी 2011

10. जनसत्ता, शब्दार्थः स्त्री, नारी और महिला, रवींद्र कुमार पाठक, 5 फरवरी 2017

❑❑❑

उत्तर बंगाल में हिंदी साहित्य का अतीत और वर्तमान

मुन्ना लाल प्रसाद

पश्चिम बांग्ला में उत्तर बंगाल राज्य का एक ऐसा क्षेत्र है जो भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं अपितु भाषाई दृष्टिकोण से भी काफी समृद्ध है। प्राकृतिक सौंदर्य की छटा बिखेरता यह क्षेत्र जंगल की मोहकता, पहाड़ की शीतलता और नदियों के निरंतर कल–कल छल–प्रवाह से अपने आपको ऐसे सुसज्जित और विभूषित किए हुए है कि जो भी इस क्षेत्र में एक बार आता है वह इसके सौंदर्य के मोह–पाश से अपने को मुक्त नहीं कर पाता। जहाँ एक तरफ पहाड़ की वादियाँ उसे अपने अंक–पाश से मुक्त नहीं करती हैं तो वहीं दूसरी ओर इधर के वन एवं उसमें रहने वाले विविध जीव–जंतु उसे अपनी अपनी ओर आकर्षित करने लगते हैं। इस अकूत एवं अकूल आकर्षण बोध से वह किंचित मुक्त भी नहीं हो पाता है कि चारोंओर चाय बागानों की हरियाली एवं निरंतर नदियों का प्रपात उसे अपनी ओर आमंत्रित करने लगते हैं। इस क्षेत्र का आकर्षण इतना प्रबल है कि अक्सर इधर आनेवाले इधर के ही हो जाते हैं या इधर का होने का लोभ संवरण नहीं कर पाते हैं। अगर इस क्षेत्र का द्रुतगति से विकास हुआ है और अभी भी निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर है तो इस तरह की द्रुतगति के विकास के पीछे यह क्षेत्र अपने आप में यही राज समेटे हुए है। हुआ ऐसा कि विभिन्नकारणों से देश के हर कोने से लोग इधर आए और आने के पश्चात् अक्सर इधर के ही होकर रह गए। यहाँ आने के बाद वे इसी मिट्टी में रच–बस गए। यही कारण है कि इस क्षेत्र में भाषाई बहुलता एवं साहित्यिक और सांस्कृतिक विविधता का संगम दृष्टिगत होता है।

इस क्षेत्र में देश के विभिन्नराज्यों के लोग तो निवास करते ही हैं साथ ही इसके पड़ोस में नेपाल, भूटान और बांग्लादेश होने के कारण यहाँ से भी इस क्षेत्र में लोगों का हमेशा आवागमन लगा रहता है। ऐसे में देखा जाए तो भाषाई दृष्टि से यहाँ की भाषा का स्वरूप बड़ा ही अनूठा और उदार दिखाई देता है। इस क्षेत्र में एक तरफ जहाँ बांग्ला भाषा का प्रभुत्व दिखाई देता है वहीं दूसरी ओर नेपाली, साद्री, मुंडा, उरांव, संथाली, कामतापुरी, राजबंशी, भूटिया, राजस्थानी, भोजपुरी और हिंदी भाषा की बहुलता भी देखने को मिलती है। भाषाओं की इतनी बहुलता के बाद भी इस क्षेत्र में न तो किसी तरह का भाषाई विवाद दिखाई देता है और न ही किसी तरह के आपसी संवाद में संप्रेषणीयता की कठिनाई ही देखने को मिलती है। सबसे बड़ी बात यह है कि इस क्षेत्र में भाषाओं की इस बहुलता के बीच हिंदी निर्विवाद रूप से संपर्क भाषा बनकर सबके लिए सहज ही ग्राह्य हो गई है। इस क्षेत्र में रहनेवाले चाहे किसी भी भाषा–भाषी के क्यों न हों, कमोबेश वे हिंदी जानते हैं, समझते हैं और बोल भी लेते हैं। इस क्षेत्र में निवास करनेवाला जब एक भाषा–भाषी दूसरे भाषा–भाषी से संवाद करता है तो अक्सर हिंदी का ही प्रयोग करता है ताकि एक दूसरे को समझने में किसी तरह की कठिनाई उत्पन्नन हो सके। सबसे बड़ी बात तो यह है कि राजनीतिक कारणों से

हिंदी का विरोध करनेवाले के द्वारा भी बेहिचक हिंदी का ही प्रयोग किया जाता है, क्योंकि भाषाओं की विविधता के बीच संपर्क और समन्वय स्थापित करने का माध्यम यहाँ हिंदी ही है।

देखा जाए तो अहिंदी भाषी इस क्षेत्र में हिंदी के इस तरह से प्रयोग के पीछे कई कारण हैं। इसका ऐसा सरल स्वरूप है कि सर्वसाधारण को यह आसानी से समझ में आ जाती है और इसमें लचीलापन ऐसा है कि बोलनेवाले को किसी विशेष तरह की कठिनाई नहीं होती है। यही नहीं इसे बोलने और समझने के लिए किसी तरह के दुस्साध्य प्रयत्न करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है। अपने इन्हीं कारणों से तमाम अवरोधों के बाद भी इस क्षेत्र में इसकी उपयोगिता और लोकप्रियता निरंतर बढ़ती ही गई और अभी भी बढ़ती ही जा रही है।

देखा जाए तो मूलरूप से उत्तर बांग्ला के अंतर्गत दार्जिलिंग, कालींपोंग, जलपाईगुडी, अलीपुरद्वार, कूचबिहार, उत्तर दिनाजपुर, दक्षिण दिनाजपुर और मालदा जिला अवस्थित हैं। ये सभी जिले देश के सीमांत क्षेत्र में अवस्थित होने की वजह से सामरिक दृष्टि से यहाँ सेना की छावनियों का होना स्वाभाविक है। सेना की छावनियों के होने के कारण धीरे–धीरे इस क्षेत्र में व्यवसाय को फलने–फूलने का अवसर मिला एवं और व्यवसाय के लिए देश के कोने–कोने से लोगों का यहाँ आगमन होने लगा। विशेष रूप से इस क्षेत्र में बिहार, यूपी और राजस्थान से लोगों का अधिक आगमन हुआ। स्थिति यह थी कि पहले इधर केवल जंगल ही जंगल था, लेकिन जैसे–जैसे यहाँ लोगों का आगमन शुरू हुआ, क्रमशः धीरे–धीरे जंगल कटने लगे और बस्तियाँ बसने लगीं। वैसे लोगों का कहना है कि आरंभिक दौर में स्वास्थ्य की दृष्टि से इस क्षेत्र की जलवायु रहने योग्य नहीं थी। इधर का पानी स्वास्थ्य की दृष्टि से पीने योग्य नहीं होने के कारण इस क्षेत्र में रहना बहुत ही कठिन था। जो भी यहाँ कुछ दिन रहता था वह पानी की गड़बड़ी के कारण कुछ ही दिनों में तरह–तरह की बीमारियों का शिकार हो जाता था। पानी में लौह तत्व की अधिकता और बहुत ही तैलीय होने के कारण पेट से संबंधित बीमारियाँ अक्सर हो जाया करती थीं। इसलिए आरंभिक दौर में जो भी इस क्षेत्र में आते थे वे स्थायी रूप से यहाँ नहीं रह पाते थे। लेकिन, धीरे–धीरे रोजी–रोजगार की तलाश में लोग इधर आते गए और इधर ही बसते गए। सेना की छावनियों के कारण इस क्षेत्र में व्यापार फलने–फूलने लगा, काम–धंधे मिलने लगे और लोग इधर ही स्थायी रूप से बसने लगे।

यह क्षेत्र भौगोलिक एवं प्राकृतिक दृष्टि से चाय बागानों के लिए अनुकूल था अतः अंग्रेजों ने इधर अधिक से अधिक चाय बागानों की खेती को बढ़ावा दिया और उसमें काम करने के लिए बिहार और मध्यप्रदेश (वर्तमान में झारखंड और छत्तीसगढ़) से मजदूरों को यहाँ लाया गया। जिन मजदूरों को इसमें काम करने के लिए लाया गया वे आर्थिक और शैक्षणिक स्तर पर बहुत कमजोर थे। यहाँ आने के बाद वे इस मिट्टी में ऐसे रच–बस गए कि फिर लौटकर वापस नहीं गए। इन सबकी अपनी मातृभाषा और बोली के अलावा संपर्क की भाषा हिंदी थी। इनके आगमन के बाद इस क्षेत्र में व्यवसाय के लिए और भी अनुकूल माहौल तैयार हुआ। फलस्वरूप व्यावसायिक उद्देश्य से काफी संख्या में इधर

व्यावसायियों का भी आगमन होने लगा और यहाँ आकर वे इनके बीच व्यवसाय करने लगे। इनके बीच अपना व्यवसाय करने के लिए उन्हें हिंदी का ही सहारा लेना पड़ा। ऐसे में इस क्षेत्र में भाषाओं की बहुलता के बीच हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में विकास का अवसर मिला और इधर की संपर्क भाषा हिंदी बन गई।

चाय बागानों में काम करनेवाले मजदूरों की गरीबी और पिछड़ेपन के कारण इनके साथ ही इस क्षेत्र में धर्म प्रचार के लिए ईसाई मिशनरियों का भी आगमन हुआ। ईसाई मिशनरियों के इधर आगमन के बाद उनके द्वारा इनके बीच धर्म प्रचार के उद्देश्य से इस क्षेत्र में अधिक संख्या में हिंदी माध्यम विद्यालयों की स्थापना की गई। हिंदी भाषियों के बीच भी मारवाड़ी समाज एक ऐसा वर्ग था जो अपने धर्म, समाज, भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के प्रति संवेदनशील था। इनके द्वारा भी जगह–जगह हिंदी शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना की गई। उसके बाद इन हिंदी विद्यालयों में बच्चों को शिक्षा देने के लिए हिंदी भाषी क्षेत्रों से अधिक संख्या में शिक्षकों का आगमन होने लगा। इस तरह से इस क्षेत्र में हिंदी के विकास की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी। एक तो इधर अधिक से अधिक सेना की छावनियाँ थी ही एवं सैनिकों की भाषा हिंदी ही थी और दूसरे, चाय बागानों में काम करनेवाले टूटी–फूटी हिंदी ही बोलते थे। फिर इनके बीच संपर्क स्थापित करने के लिए हिंदी का ही सहारा लेना पड़ा। स्थिति ऐसी थी कि हिंदी कुछ के लिए जरूरी थी तो कुछ के लिए मजबूरी थी। इस जरूरत और मजबूरी में सबसे पहले इस क्षेत्र में हिंदी का अनगढ़ रूप ही सामने आया। लेकिन, शैक्षणिक संस्थानों के विकास और हिंदी भाषी क्षेत्रों से शिक्षकों के आगमन के साथ ही धीरे–धीरे इधर हिंदी का परिष्कृत स्वरूप भी सामने आने लगा।

यह सर्वविदित है कि पढ़ा–लिखा समाज अपनी भाषा, साहित्य, समाज और संस्कृति के प्रति अधिक जागरूक होता है और वह इसके विकास के लिए सतत सचेष्ट रहता है। उसके लिए केवल जीविका ही महत्वपूर्ण नहीं होती, बल्कि वह अपनी जीविका के साथ–साथ साहित्य और संस्कृति के विकास के लिए भी सतत प्रयत्नशील रहता है। इस क्षेत्र में भी जब पढ़े–लिखे हिंदी समाज का आगमन हुआ और शिक्षा का विकास होने लगा तो साहित्य के प्रति भी उनकी सजगता बढ़ने लगी। आरंभिक दौर में देखा जाए तो इस क्षेत्र में हिंदी भाषियों में साहित्यिक गतिविधियों का अभाव था। वैसे जहाँ–तहाँ कुछ लोग ऐसे जरूर थे जो व्यक्तिगत तौर पर विभिन्नअवसरों पर शौकिया कुछ लिख–पढ़ लिया करते थे, लेकिन इसका न तो कोई सामूहिक रूप था और न कोई साहित्यिक उद्देश्य था। विशेषकर विद्यालयों में सरस्वती वंदना के अवसरों पर आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सुनाने के लिए कुछ हास्य–व्यंग्य की रचनाएँ लिखी जाने लगी थी।

इसी दौरान 1958 में यहाँ हिंदी हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक के रूप में कैलाश नाथ ओझा का आगमन हुआ। कैलाश नाथ ओझा एक उद्भट विद्वान थे, जिन्हे कई भाषाओं की जानकारी थी। वे एक साहित्यिक व्यक्ति होने के साथ–साथ कर्मठ और संघर्षशील व्यक्ति थे, जिनका हिंदी के प्रति काफी अनुराग था। यहाँ आने के बाद इनका संपर्क शिवमंगल सिंह से हुआ जो यहाँ के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता एवं स्वतंत्रता सेनानी थे और

हिंदी भाषियों में काफी लोकप्रिय थे। ओझाजी के ज्ञान और व्यक्तित्व ने यहाँ के हिंदी के साथ–साथ कई भाषाओं के विद्वानों को प्रभावित किया। इसी क्रम में इनका बांग्लाभाषी विद्वान दुर्गाचरण चटर्जी एवं टी. के भट्टाचार्य से संपर्क हुआ जो यहाँ बांग्ला साहित्य में सक्रिय थे एवं अन्य भाषाओं के प्रति भी इनका काफी लगाव था। आपसी संवाद और साहित्यिक चर्चा से इनके बीच संबंध प्रगाढ़ हुए और एक दूसरे को जानने–पहचानने का अवसर मिला। इसके पूर्व यहाँ हिंदी भाषियों की अन्य भाषाओं में कोई साहित्यिक पहचान नहीं बन पाई थी। लेकिन, कैलाश नाथ ओझा की विद्वता के कारण यहाँ की अन्य भाषाओं में हिंदी को एक पहचान मिली।

सन् 1962 में रवींद्र शतवार्षिकी के अवसर पर कैलाश नाथ ओझा द्वारा रवींद्र नाथ की तीन पुस्तकों, 'तीन साथी', 'चार अध्याय' एवं 'राजर्षि' का हिंदी में अनुवाद किया गया, जिसका दिल्ली के प्रभात प्रकाशन से प्रकाशन हुआ। इन पुस्तकों के प्रकाशन के बाद बांग्लाभाषी साहित्यिक प्रेमियों के बीच हिंदी के साथ–साथ हिंदी साहित्यकारों को एक नई पहचान मिली और आपसी संवाद प्रगाढ़ हुए। धीरे–धीरे हिंदी प्रेमी और हिंदी में लेखन करनेवाले ओझा जी के संपर्क में आने लगे और आपसी विमर्श होने लगे। इससे पूर्व हिंदी भाषी कुछ ऐसे रचनाकार थे जो बांग्ला भाषा में ही लेखन कर रहे थे और बांग्ला से हिंदी में अनुवाद भी कर रहे थे जिसमें डॉ. गोपाल महेश्वरी और महावीर चाचान का लेखन काफी चर्चित था।

डॉ. गोपाल महेश्वरी बांग्ला में मौलिक लेखन तो कर ही रहे थे इसके साथ ही वे बांग्ला साहित्य का बड़े ही सक्रिय रूप से अनुवाद भी कर रहे थे। उनका साहित्य के प्रति गहरा लगाव था। वे स्वयं लेखन तो करते ही थे स्वयं के लेखन के साथ–साथ दूसरे को भी लेखन के लिए प्रोत्साहित भी करते रहते थे। एक तरह से साहित्य और समाज के प्रति वे समर्पित व्यक्ति थे। उस समय वे हिंदी और बांग्ला भाषियों के बीच एक ऐसी कड़ी थे जो दोनों को जोड़ने का काम कर रहे थे।

इसी दौरान महावीर चाचान भी बांग्ला भाषा में लिखने लगे थे एवं बांग्ला से हिंदी में अनुवाद करने लगे थे। उनकी रचनाएँ देश जैसी प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं।

कैलाश नाथ ओझा के आगमन के बाद यहाँ हिंदी में लिखने वालों की सक्रियता बढ़ने लगी। इस क्रम में यहाँ हिंदी के प्रचार–प्रसार और अन्य भाषा–भाषियों में हिंदी के प्रति अनुराग पैदा करने के उद्देश्य से राष्ट्रभारती नामक एक संस्था का गठन किया गया। इस संस्था का अध्यक्ष बनाया गया कैलाश नाथ ओझा को एवं सभापति बने शिवमंगल सिंह एवं वैद्यनाथ शास्त्री को इसका सचिव बनाया गया। राष्ट्रभारती के गठन के बाद इसके द्वारा प्रयाग से हिंदी में कई तरह की परीक्षाएँ आयोजित की जाने लगी। इसके माध्यम से काफी संख्या में अहिंदी भाषी हिंदी में परीक्षा देने लगे और इस तरह से अहिंदी भाषियों में हिंदी के प्रति अनुराग बढ़ने लगा।

इसी क्रम में लक्ष्मीनारायण शर्मा के प्रयास से 1958–59 के दौरान सिलीगुड़ी से हिंदी में 'समाधान–वार्ता' नाम से एक पत्रिका प्रकाशित होने लगी। इस पत्रिका ने यहाँ के हिंदी भाषियों को लिखने और प्रकाशित होने

का अवसर प्रदान किया। हालाँकि इस पत्रिका का प्रकाशन नियमित रूप से तो नहीं हो पाता था, लेकिन लक्ष्मीनारायण शर्मा जबतक जीवित रहे यह पत्रिका अनियतकालीन रूप से प्रकाशित होती रही और हिंदी भाषियों को लेखन के प्रति प्रेरित करती रही। इसी बीच में कामाख्या गोयल तथा बालकृष्ण धानुका ने मिलकर हिंदी में 'नवागत' नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया, लेकिन अल्पकाल में ही इसका प्रकाशन बंद हो गया। इसके बंद होने के बाद कुछ वर्षों के उपरांत श्री गोपाल महेश्वरी ने 1967 के आस–पास 'विनिमय' नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। यह पत्रिका कुछ ही अंकों तक 'विनिमय' नाम से प्रकाशित हुई। बाद में इसका नाम बदलकर 'अनाम' कर दिया गया। 'अनाम' का प्रकाशन भी साल भर के अंदर ही बंद हो गया। इसी दौरान 'पावस' नाम से एक और पत्रिका का प्रकाशन हुआ, जिसके संपादक थे सावरमल नेमानी और हिंदी सेवा संघ द्वारा यह प्रकाशित हो रही थी। कुछ समय तक प्रकाशित होने के बाद पावस का भी प्रकाशन बंद हो गया। इसके बाद सुदर्शन गुप्ता एवं रवींद्र कुमार ने मिलकर नया सबेरा नाम से एक पत्रिका का दो–तीन अंकों तक प्रकाशन किया। अपने सीमित दायरे में ही सही, लेकिन इल पत्रिकाओं ने उत्तर बांग्ला में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में एक अहम् भूमिका का निर्वहन किया।

उबं में हिंदीं साहित्य–3

हिंदी भाषियों की अधिक संख्या होने के बाद भी 1978 के पूर्व उत्तर बांग्ला से किसी भी हिंदी समाचार पत्र का प्रकाशन नहीं हो पाया था। यहाँ के हिंदी भाषियों को हिंदी में सामाचार–पत्रों के लिए कोलकाता से प्रकाशित होने वाले हिंदी समाचार–पत्रों पर ही आश्रित रहना पड़ता था। इस समस्या को देखते हुए राजेंद्र बैद ने 1978 में सिलीगुड़ी से 'सिलीगुड़ी समाचार' नाम से चार पृष्ठों का एक साप्ताहिक समाचार पत्र निकालना शुरू किया। धीरे–धीरे इसकी माँग बढ़ने लगी। बाद में इसका नाम बदलकर 'जनपथ समाचार' कर दिया गया और इसकी माँग को देखकर इसका प्रकाशन दैनिक होने लगा। नियमित प्रकाशित होने के कारण पूरे उत्तर बांग्ला के लिए जनपथ समाचार एक लोकप्रिय समाचार पत्र बन गया और इसने उत्तर बांग्ला में हिंदी साहित्य के विकास को एक नया अवसर प्रदान किया। इन समाचार पत्रों में अनेक ऐसे हिंदी भाषी लोगों ने उप संपादक के रूप में काम किया, जिन्होंने हिंदी साहित्य के लेखनके क्षेत्र में अपनी अहम भूमिका अदा की।इनमें डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह, डॉ. ओम प्रकाश पांडेय, कालिका प्रसाद सिंह एवं डॉ. मुकुंद बिहारी पांडेय का नाम उल्लेखनीय है।

इसी दौरान 1984 में डॉ. भीखी प्रसाद 'वीरेंद्र' ने सिलीगुड़ी से 'नया आकाश' नाम से एक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसके संपादक डॉ. भीखी प्रसाद 'वीरेंद्र' स्वयं थे। इनका अपना प्रिंटिंग प्रेस एवं स्वयं का साहित्यिक मिज़ाज होने के कारण सारी कठिनाइयों के बाद भी इन्होंने लगभग दस वर्षों तक 'नया आकाश' का प्रकाशन किया। इस पत्रिका ने सिलीगुड़ी के साथ पूरे उत्तर बांग्ला को राष्ट्रीय स्तर पर एक साहित्यिक पहचान दिलाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। 1984–85 के आसपास ही बंशीधर मित्तल ने अपने संपादन में 'दार्जिलिंग टाइम' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया जो साल–दो साल तक

ही प्रकाशित हो सकी। इसी दौरान डॉ. मुकुंद बिहारी पांडेय ने अपने संपादन में 'धुआं' नाम से हिंदी मासिक पत्रिका का संपादन शुरू किया। यह पत्रिका भी कुछ समय के बाद बंद हो गई। तत्पश्चात् 1986 से मुक्तधारा प्रेस एंड पब्लिकेशंस, सिलीगुड़ी से डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह ने साप्ताहिक 'पूर्वांचल' का प्रकाशन शुरू किया जिसके संपादक वे स्वयं थे। नियमित रूप से लगभग 10 वर्षों तक इसका प्रकाशन होता रहा। उसके बाद इसका नाम परिवर्तित कर 'उत्तर पूर्वांचल' कर दिया गया और डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह इसके प्रधान संपादक हो गए और संपादक बने डॉ. ओम प्रकाश पांडेय। 'उत्तर पूर्वांचल' का साप्ताहिक समाचार पत्र के रूप में 2008 तक प्रकाशन होता रहा। उसके बाद डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह ने अपने संपादन में 2009 से 'आपका तिस्ता हिमालय' के नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया जो अनवरत निकल रही है।

यहाँ से दैनिक समाचार पत्र 'जनपथ समाचार' का प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा था और इसका प्रचार–प्रसार भी बढ़ता जा रहा था। इसके प्रचार–प्रसार से प्रभावित होकर श्री मंगतूराम चौधरी ने 'पूर्वांचल भारत दर्पण' नाम से एक और दैनिक समाचार पत्र निकालना शुरू किया। इस तरह अब सिलीगुड़ी से नियमित रूप से दो दैनिक हिंदी समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे और इनके माध्यम से पूरे उत्तरबांग्ला में हिंदी के प्रचार–प्रसार का अवसर मिला। 'जनपथ समाचार' में संपादकीय विभाग में काम करे थे डॉ. मुकुंद बिहारी पांडेय एवं पूर्वांचल भारत दर्पण में संपादक–मंडल में काम कर रहे डॉ. मुकुंद बिहारी पांडेय ने अपने यहाँ डॉ. मुन्ना लाल प्रसाद को साहित्यिक परिशिष्ट का कार्यभार सौंपा। उसके बाद से इन दोनों पत्रों में लगातार अपने साहित्यिक परिशिष्ट निकलने लगे। इन परिशिष्टों में पूरे उत्तर बांग्ला के ऐसे रचनाकारों को प्रकाशित होने का अवसर मिलने लगा जो थोड़ा–बहुत लिखने का शौक रखते थे। इस तरह से इन दोनों समाचार पत्रों से नवोदित रचनकारों को एक साहित्यिक पहचान मिली जो थोड़ा–बहुत लिख तो रहे थे, लेकिन उनकी रचनाएँ कहीं से प्रकाशित नहीं हो रही थी। इनमें प्रकाशित होने वाले बहुत से ऐसे रचनाकार हुए जिन्होंने आगे चलकर सिर्फ बांग्ला में ही नहीं, वरन राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई, जिसमें रंजना श्रीवास्तव का नाम उल्लेखनीय है।

इसी दौरान कालिका प्रसाद सिंह ने 'भारती' नाम से एक साहित्यिक पत्रिका का संपादन शुरू किया, लेकिन इसके भी कुछेक अंक ही निकल सके। फिर 1991 में 'कालजयी' नाम से एक और साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्रिका के प्रधान संपादक थे श्री कैलाश नाथ ओझा और संपादक थे श्री देवेंद्र शुक्ल। 'कालजयी' का प्रकाशन भी चार अंकों के बाद बंद हो गया। इसके बाद रंजना श्रीवास्तव एवं डॉ. ओमप्रकाश पांडेय के संपादन में 'सृजनपथ' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। 'सृजनपथ' के दूसरे अंक के प्रकाशन के बाद पांडेय जी इस पत्रिका से अलग हो गए एवं रंजना श्रीवास्तव ने इसका 8 अंकों तक अनियमित रूप से प्रकाशन किया। इसके बाद जनवादी लेखक संघ, दार्जिलिंग जिला कमेटी की ओर से 2003 में 'जनप्रहरी' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। इसका दूसरा अंक 2005 में प्रकाशित हुआ। इस पत्रिका के दो ही अंक प्रकाशित हो पाए। दो अंकों के

बाद इसका कोई अंक प्रकाशित नहीं हो पाया। 2009 में डॉ. ओमप्रकाश पांडेय एवं डॉ. मुन्ना लाल प्रसाद के संपादन में 'नया परिदृश्य' का प्रकाशन हुआ। 2010 में इसके दूसरे अंक का संपादन डॉ. ओमप्रकाश पांडेय, डॉ. अरुण होता एवं डॉ. मुन्ना लाल प्रसाद ने किया। उसके बाद इसका कोई अगला अंक नहीं आ सका।

शोध आलेखों के प्रकाशन के लिए 2007 से उत्तर बंग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की ओर से 'संवाद' नाम की एक पत्रिका का प्रकाशन किया जाने लगा है।

इसके पूर्व 1998 में श्री कैलाश शर्मा के संपादन में एक सांध्य दैनिक समाचार पत्र 'हिल्स एंड डुआर्स इवनिंग' का प्रकाशन आरंभ हुआ जो एक वर्ष के दौरान ही बंद हो गया।

2016 में पूरनचंद शर्मा के संपादन में एक मासिक पत्रिका 'सर्वदर्शी' का प्रकाशन शुरू हुआ, जिसमें डॉ. मुन्ना लाल प्रसाद द्वारा नियमित रूप से स्तंभ लेखन किया जाने लगा, जो अभी जारी है। यह पत्रिका अपने समय पर नियमित रूप से अभी भी प्रकाशित हो रही है।

इस दौरान श्री अभिषेक अग्रवाल के संपादन में 2017 में 'सिलीगुड़ी टाइम्स' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया गया, लेकिन दो–तीन अंकों के बाद यह देखने को नहीं मिली।

उत्तर बांग्ला में हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विकास में यहाँ की संस्थाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अपनी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विकास के लिए इस क्षेत्र में रहने वाले हिंदी भाषियों ने अपने–अपने शहर में अनेक तरह की संस्थाओं का गठन किया, जिनका उद्देश्य था इस क्षेत्र में रहनेवाले हिंदी भाषियों को संगठित कर अपनी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के प्रति जागरूक करना और उसका विकास करना। उन्हें पता था कि अपनी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के अभाव में मनुष्य एक तरह से मानसिक रूप से अपंग हो जाता है, इसलिए उसकी रक्षा आवश्यक है। अगर उसकी रक्षा नहीं हुई तो समाज का शीघ्र ही पतन हो जाएगा और उनकी पहचान मिट जाएगी। उन्हें यह भी पता था कि अपनी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के लिए सिर्फ व्यक्तिगत प्रयास ही काफी नहीं है, बल्कि इसके लिए सामूहिक प्रयास का होना भी आवश्यक है। कुछ इसी तरह के चिंतन के साथ इस क्षेत्र में रहने वाले हिंदी भाषियों ने जहाँ–तहाँ विभिन नामों से संस्थाओं का गठन किया और अपने–अपने स्तर से किसी न किसी रूप से भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास में लग गए। यह बताते चलें कि हिंदी भाषियों का यहाँ प्रयोग व्यापक अर्थों में किया गया है। हिंदी भाषियों का अर्थ केवल हिंदी भाषी प्रदेशों से आए लोगों से नहीं है बल्कि उन तमाम लोगों से है जो किसी न किसी रूप में हिंदी से प्रेम करते हैं एवं उसके विकास में किसी न किसी रूप में उनका योगदान रहा है। भले ही वे किसी भी प्रदेश और भाषा–भाषी क्षेत्र के क्यों न हो।

प्राप्त तथ्यों के आधार पर उत्तर बांग्ला में हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विकास के लिए सबसे पहले दार्जिलिंग में सन् 1931 में हिमाचल हिंदी भवन की स्थापना की गई। इसकी स्थापना में मुख्य रूप से श्री पंडित लाल सहाय, लक्ष्मीकांत शर्मा, ब्रह्मदेव उपाध्याय, द्वारिका प्रसाद गुप्ता, श्री रामजी सिंह एवं जेठमल भोजराज की भूमिका रही। इन्होंने मिलकर हिमाचल हिंदी भवन नाम से

ही एक संस्था बनाकर इस भवन का निर्माण किया। भवन के निर्माण के बाद संस्था द्वारा इसमें एक पुस्कालय की भी स्थापना की गई और इसके माध्यम से हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास के लिए लगातार तरह–तरह के कार्यक्रम होने लगे। इस कड़ी में क्षेत्रीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर के साहित्यकारों को यहाँ आमंत्रित किया जाने लगा। यहाँ तक कि हिंदी साहित्य के शीर्षस्थ मनीषी राहुल सांकृत्यायन जैसी हस्ती भी दार्जिलिंग में बहुत वर्षों तक रहे हैं और यहाँ रहकर उन्होंने साहित्य का सृजन भी किया है। हालाँकि इन सबके बावजूद यहाँ से हिंदी साहित्य का लेखन नगण्य रहा। कुछ लोगों द्वारा छिटपुट जरूर कुछ लिखा गया, लेकिन ऐसा कुछ लेखन सामने नहीं आया, जो उल्लेखनीय हो। हाँ, परवर्ती काल में यहाँ से ओम नारायण गुप्ता ने अन्य भाषाओं से कुछ अनुवाद का काम जरूर किया है। यहाँ से इन्होंने एक रंगकर्मी के रूप में अपनी विशेष पहचान बनाई है। उत्तर बांग्ला के अन्य जिलों में भी हिंदी के विकास के लिए कुछ संगठन अवश्य बने, लेकिन हिंदी लेखन के क्षेत्र में इनका कोई ऐसा उल्लेखनीय योगदान देखने को नहीं मिला।

उत्तर बांग्ला में सिलीगुड़ी ही एक ऐसा शहर है जिसका हर क्षेत्र में द्रुत गति से विकास हुआ है। व्यापार हो या साहित्य–संस्कृति, हर क्षेत्र में इसने विकास के कीर्तिमान स्थापित किए हैं। अपने विकास के कारण ही पश्चिम बांग्ला में कोलकाता के बाद यह एक दूसरा महतवपूर्ण शहर बन गया। जिस तरह से पूर्वोत्तर के लिए यह शहर व्यापार का प्रमुख केंद्र बना है उसी तरह उत्तर बांग्ला साहित्य के लिए साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में यह एक प्रमुख केंद्र बन गया है। साहित्य एवं सांस्कृतिकदृष्टि से पूरे पश्चिम बांग्ला में कोलकाता, बर्द्धमान और आसनसोल के बाद सिलीगुड़ी एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया है।

सिलागुडी में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण संस्थाएँ बनीं जिनका यहाँ के साहित्य और संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।यहाँ पहले से ही अनेक तरह की संस्थाओं का गठन हुआ था जो अपने–अपने ढ़ंग से काम कर रही थीं।

उसके पश्चात् 1976 में यहाँ संस्कृति के विकास के लिए संस्कृति परिषद का गठन हुआ। संस्कृति परिषद के गठन में गोपाल महेश्वरी एवं कामाख्या गोयल की प्रमुख भूमिका थी। इसके गठन के बाद इस क्षेत्र के साहित्य प्रेमियों को एक जगह एकत्र होकर सामूहिक रूप से साहित्यिक कार्यक्रम प्रस्तुत करने का अवसर मिला। इसके माध्यम से यहाँ लगातार साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित होने लगे और एक अच्छा साहित्यिक माहौल तैयार होने लगा। इस तरह से धीर–धीरे लोगों के अंदर साहित्यिक अनुराग पैदा होने लगा और रचनाधर्मियों के अंदर लेखन के प्रति सक्रियता आने लगी। अक्सर परिषद द्वारा मासिक गोष्ठियाँ आयोजित होती थीं जिसमें इस क्षेत्र के रचनाकार भाग लेते थे। इसके अलावा साल में एक बार वृहद स्तर पर कार्यक्रम आयोजित किए जाते थे जिसमें बाहर के रचनाकारों को आमंत्रित किया जाता था। परिषद में शामिल होने वाले प्रायः ऐसे रचनाकार थे जो हिंदी और बांग्ला दोनों ही भाषाओं में लिखते थे। जबतक गोपाल

महेश्वरी रहे, परिषद में काफी सक्रियता रही, लेकिन उनके निधन के बाद परिषद प्रायः निष्क्रिय हो गई।

1985 में यहाँ सिलीगुड़ी युवा जागृति संघ का गठन किया गया और इसी क्रम में लगभग 1987 में युवा जागृति संघ के पुस्तकालय की स्थापना की गई। संघ के माध्यम से युवाओं में खेल–कूद के विकास के लिए यहाँ तरह–तरह की क्रीड़ा प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाने लगी। इसके साथ ही साहित्यिक कार्यक्रम भी आयोजित किए जाने लगे। विशेषकर इसके द्वारा हिंदी दिवस के अवसर पर कवि सम्मेलन का आयोजन होने लगा। यह क्रम अभी भी अनवरत जारी है।

90 के दशक में आने के साथ ही उत्तर बांग्ला में हिंदी साहित्य और संस्कृति में एक विशेष उत्थान दिखाई देता है। अब यहाँ अनेक साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं का गठन होने लगा और साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में काफी सक्रियता आने लगी।

1993 में यहाँ जनवादी लेखक संघ का गठन किया गया। डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह को इसका अध्यक्ष एवं दिवाकर तिवारी को सचिव बनाया गया। संगठन के माध्यम से साहित्यिक कार्यक्रम होने लगे। इसके गठन के बाद यहाँ की साहित्यिक गतिविधियों में काफी सक्रियता आई। आरंभिक समय में संगठन की गतिविधियों में थोड़ी सक्रियता कम थी, लेकिन दिलीप सिंह के अध्यक्ष एवं डॉ. ओमप्रकाश पांडेय के सचिव बनने के बाद संगठन में अधिक सक्रियता आई। इसके माध्यम से लगातार साहित्यिक कार्यक्रम होने लगे। कवि सम्मेलन, विविध विषयों पर सेमिनार एवं प्रेमचंद जयंती पर छात्रों के बीच प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाने लगा। इन कार्यक्रमों से छात्र एवं शिक्षकों में साहित्य के प्रति जागरूकता बढ़ने लगी।

सन् 1993 के दौरान ही कुछ छात्र नौजवानों को लेकर डॉ. मुन्ना लाल प्रसाद के नेतृत्व में चेतना जन नाट्य मंच का गठन किया गया। इस मंच के माध्यम से शहर के विभिन्नचौक–चौराहों पर हिंदी में नुक्कड़ नाटक किए जाने लगे। अबतक हिंदी नाटकों का यहाँ अभाव था। चेतना जन नाट्य मंच द्वारा यहाँ लगातार इस तरह से नुक्कड़ नाटकों का मंचन होने लगा कि इसने सबका ध्यान इधर आकृष्ट किया। इस तरह से यहाँ साहित्य और संस्कृति के विकास को एक और व्यापकता मिली। इसके माध्यम से सेमिनारों का भी आयोजन होने लगा।

1998 में करण सिंह जैन के नेतृत्व में रंगमंच की स्थापना हुई। रंगमंच के माध्यम से विभिन्नसमयों पर बाहर के हास्य–व्यंग्य के कवियों को आमंत्रित कर कवि सम्मेलन कराए जाने लगे।

इसी क्रम में देवेंद्र नाथ शुक्ल द्वारा यहाँ प्रगतिशील लेखक संघ का भी गठन किया गया। हालाँकि इसे एक औपचारिकता मात्र ही कहा जा सकता है, क्योंकि इसके गठन के बाद भी इसमें कोई सक्रियता नहीं रही। शुक्ल जी कालजयी मंच को लेकर ही सक्रिय रहे और उनके द्वारा कलजयी मंच के माध्यम से ही कार्यक्रमों का आयोजन जारी रहा।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह द्वारा उत्तर बंग हिंदी ग्रंथागार नाम से एक संस्था का गठन किया गया। इस संस्था के माध्यम से साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन होने लगा।

सन् 2020 के आगमन के साथ पूरे विश्व के समक्ष एक बहुत बड़ा संकट उत्पन्न हो गया। कोरोना की महामारी ने पूरे विश्व को अपनी चपेट में ले लिया। विश्व के समक्ष कोरोना एक ऐसी चुनौती बनकर आया, जिसका सामना करने के लिए पहले से कोई तैयार नहीं था। पूरे देश में एहतियातन 22 मार्च से लॉकडाउन की घोषणा कर दी गई। इसने सामाजिक दूरियों के साथ मानव–मानव के बीच की दूरियों को बढ़ा दिया। सब घरों में सिमट कर रह गए। सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक, धार्मिक गतिविधियों के साथ तमाम गतिविधियाँ बंद हो गई। चारोंओर एक तरह के भय का माहौल बन गया। किसी से मिलना–जुलना बंद हो गया। सामूहिक रूप से कहीं भी एक जगह एकत्र होना संभव नहीं था। तमाम तरह की साहित्यिक गतिविधियाँ बंद हो गईं। केवल व्यक्तिगत लेखन कुछ हद तक जारी रहा। ऐसी अवस्था में उत्तर बांग्ला के सारे साहित्यिक संगठन शिथिल पड़ गए। लेकिन, कहा जाता है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है एवं जब एक रास्ता बंद हो जाता है तो कोई दूसरा रास्ता निकल ही आता है। उत्तर बांग्ला के साहित्यिक जगत ने भी अपनी साहित्यिक शिथिलता भंग करने के लिए नए रास्ते निकाल ही लिए। यहाँ के साहित्यकारों द्वारा साहित्यिक गतिविधियाँ जारी रखने के लिए कुछ नए संगठन निर्मित किए गए और नई तकनीक का प्रयोग करते हुए ऑनलाइन गोष्ठियाँ शुरू की गईं। वाट्सएप, गूगल मीट, जूम के माध्यम से घर बैठे ही कार्यक्रम होने लगे। डॉ. मुन्ना लाल प्रसाद के नेतृत्व में अंतरराष्ट्रीय साहित्य संगम, अर्चना शर्मा एवं बबीता अग्रवाल के नेतृतव में महिला काव्य मंच, वरिष्ट नागरिक काव्य मंच बने और लगातार काव्य गोष्ठियाँ आयोजित होने लगी। इस दौरान अंतरराष्ट्रीय साहित्य संगम की ख्याति बढ़ी और उत्तर बांग्ला से लेकर देश–विदेश के साहित्यकार इससे जुड़ने लगे। यह एक ऐसा संगम बना जिसमें विभिन्नपीढ़ियों, विभिन्नविचारों के साथ–साथ महिला पुरुष, नए–पुराने, हर तरह के रचनाकारों का मेल हुआ और ऐसे संकट में भी सबके अंदर लेखन के प्रति उत्साह पैदा होने लगा।

हिंदी साहित्य में 1961 के पूर्व उत्तर बांग्ला में भले ही शौकिया कोई यदा–कदा कुछ लिख रहा हो, लेकिन किसी की कोई प्रकाशित कृति नहीं दिखाई देती है। उनकी रचनाएँ कई पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। उन्होंने कालीदास के 'मेघदूत' का भोजपुरी में 'बदरऊ' नाम से अनुवाद किया जिसका प्रकाशन 1983 में हुआ।

उत्तर बांग्ला में सर्वप्रथम डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह एक उपन्यासकार के रूप में उभरकर सामने आते हैं। 1981 में उनके द्वारा लिखित 'जीवन यात्रा' उपन्यास का प्रकाशन हुआ। उसके बाद उनका दूसरा उपन्यास 'दो बूंद गंगाजल' का प्रकाशन हुआ। उन्होंने बांग्ला के प्रसिद्ध कवि नीरेंद्र नाथ चक्रवर्ती का प्रसिद्ध काव्य संग्रह 'उलंगो राजा' अर्थात नंगा राजा का हिंदी में अनुवाद भी किया। उसके बाद क्रमशः उनके तीन काव्य संग्रहों'कल जो पैदा होगा', 'प्रयास' एवं 'अग्निपथ' का प्रकाशन हुआ। अभी भी उनकी लेखनी अनवरत चल रही है। इधर उनका उपन्यास मुंतजिर की आत्मकथा 'छाया दी' एवं

निबंध संग्रह 'वक्त का आईना', 'गोर्खा अस्मिता की निर्णायक लड़ाई' तथाए 'टेल ऑफ टी' का प्रकाशन हुआ है।

80 के दशक में ही डॉ. मुकुंद बिहारी पांडेय पत्रकारिता के साथ–साथ साहित्य सृजन में भी काफी सक्रिय थे। बाल कविताओं के लिए वे काफी चर्चित थे। राष्ट्रीय स्तर की अनेक पत्रिकाओं में इनकी बाल कविताएँ बराबर प्रकाशित हो रहीं थीं एवं इनकी बाल कविताओं का संग्रह भी इसी दौरान प्रकाशित हुआ है।

इसी दौरान श्री कालिका प्रसाद सिंह भी साहित्यिक गतिविधियों के साथ काव्य लेखन में काफी सक्रिय थे। उनका काव्य–संग्रह भी 'मैं उन्हीं में पहचाना जाऊँगा' इसी दौरान प्रकाशित हुआ है।

80 के दशक में ही तारावती अग्रवाल की भी लेखन में सक्रिय भागीदारी दिखाई देती है। उनके भी कतिपय संग्रह इसी दौरान प्रकाशित हुए हैं, लेकिन धीरे–धीरे उनकी सक्रियता कम हो गई।

1992–1993 के आसपास श्री मृत्युंजय देव का खंड–काव्य 'राम कथा के विवादास्पद प्रसंग' तथा काव्य संग्रह 'रसफुहार, ललकार, फटकार तथा नसबंदी संवाद' का प्रकाशन हुआ है।

प्रभाकर मिश्र की भी साहित्यिक क्षेत्र में काफी सक्रियता रही। इन्होंने गीता का हिंदी में पद्यानुवाद किया एवं 90 के दशक में'युद्ध से मोक्ष तक' के नाम से इनकी रचना पुस्तकाकार प्रकाशित हुई।

महावीर चाचान बांग्ला में तो पहले से ही लिख रहे थे एवं बांग्ला से हिंदी में अनुवाद भी कर रहे थे और साथ ही साथ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ प्रकाशित भी हो रही थीं, लेकिन इनका हिंदी में पहला व्यंग्य संग्रह 'मार्क थ्री की गरीबी' 1993 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद 'जलपाईगुड़ी और मारवाड़ी समाज' (इतिहास), 'गधे को कानून की डिग्री' (व्यंग्य–संग्रह) 2018 में प्रकाशित हुआ। फिर 'मार्क थ्री की गरीबी' (व्यंग्य–संग्रह) का दूसरा संस्करण भी 2018 में प्रकाशित होकर आया है। इसके पूर्व 'तुमी केनो बोलिछिले आमि सुंदर' (हिंदी से बांग्लानुवाद) एवं 'त्रिश्रोता महापीठ सतीपीठ' का 'त्रिश्रोता परिक्रमा' नाम से हिंदी में अनूदित दो पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

इसके अलावा इन्होंने जलपाईगुड़ी से प्रकाशित 'पथिक' नामक साप्ताहिक पत्रिका का संपादन भी किया है। साथ ही अभी भी लंबे समय से स्थानीय हिंदी दैनिक समाचार पत्र 'जनपथ समाचार' में नियमित रूप से स्तंभ लिखने का काम कर रहे हैं।

सन् 1994 में देवेंद्र नाथ शुक्ल का पहला काव्य संग्रह 'अपना प्रतिबिंब' का प्रकाशन हुआ। उसके बाद उनके काव्य संग्रह क्रमशः 'अंधेरी कोठरी का ज्योतिर्मय' (1999), 'सूरज को डूबने नहीं देना' एवं 'राम की खोज में' (2005), 'कहाँ है उत्तर योगी' (2020) आदि काव्य संकलनों का प्रकाशन हुआ। इसके अलावा ऋतव्रत की 'अमृता', डॉ. भीखी प्रसाद 'वीरेंद्र' की 'माटी की आवाज', तारकेश्वर मिश्र की 'धरती करे पुकार', कृष्ण प्रसाई की 'धूप की बारिश' काव्य संग्रहों एवं देवकीनंदन अग्रवाल का 'रास्ता आगे भी है' आदि कहानी संग्रह का संपादन भी इन्होंने किया। इधर किसी एक रचनाकार पर केंद्रित होकर निकलने वाली पत्रिका 'उत्तर आकाश' के कई अंकों का संपादन भी इन्होंने किया है। उनके कई समीक्षात्मक आलेखों का भी

प्रकाशन हो चुका है। अबतक उनकी तीन कहानियाँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं उनका लेखन अभी भी निरंतर जारी है।

डॉ. भीखी प्रसाद 'वीरेंद्र' तो लेखन में पहले से सक्रिय थे, लेकिन उनका पहला काव्य संग्रह 'धरती के करीब' एवं प्रतिनिधि काव्य संग्रह 'माटी की आवाज' का प्रकाशन सन् 1983 में दिखाई देता है। उसके बाद इनका 1991 में 'आज का आदमी', 1996 में 'मैं उनके साथ नहीं हूँ', 2000 में 'सूत्रधार कोई और है', 2003 में 'नकल सूर्य', 2004 में 'पंछी बन उड़ जाऊँगा', 2013 में 'सुगंध और 'रोशनी की तलाश' आदि काव्य संग्रहों का प्रकाशन भी दृष्टिगत होता है। इतना ही नहीं इन काव्य संग्रहों के अलावा इनका लघुकथा संकलन 'यत्र–तत्र–सर्वत्र', यात्रा–वृत्तांत 'रास्ता ही होता है तीर्थ', कहानी संग्रह 'बादल छँट गए' (2003), 'डायरी के कुछ पृष्ठ', 'एक तुम्हारे चले जाने से' (2013), 'रामकथा तुलसीदास एवं भानुभक्त' (2016), उपन्यास 'सिंगुर से नंदीग्राम' (2006) का प्रकाशन हुआ है। इन्होंने 'नया आकाश' पत्रिका का बारह वर्षों तक संपादन भी किया।

यहाँ डॉ. ओमप्रकाश पांडेय एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जो साहित्य की लगभग हर विधामें लगातार लिखते रहे हैं एवं राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित भी होते रहे हैं। इस क्षेत्र की साहित्यिक गतिविधियों में इनकी काफी सक्रियता रहती है। अनेक पत्र–पत्रिकाओं के संपादन एवं संयोजन में इनकी भूमिका रही है। राष्ट्रीय स्तर की साहित्यिक गोष्ठियों में इनकी हमेशा भागीदारी रहती है। इस क्षेत्र को राष्ट्रीय स्तर पर साहित्यिक पहचान स्थापित कराने में इनकी राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमों में भागीदारी का भी योगदान रहा है।

डॉ मुन्ना लाल प्रसाद नाटककार के साथ–साथ एक सफल रंगकर्मी भी हैं। इनके दो नाटक– 'जागो फिर एक बार' (1981), 'ज्वाला क्रांति की' (1984) में प्रकाशित हुए हैं। 2004 में इनका कहानी संग्रह 'आदमी कभी नहीं मरता' एवं 2016 में 'कर्फ्यू' का प्रकाशन हुआ। इसके अलावा इनकी अनेक कहानियाँ, कविताएँ एवं आलेख राष्ट्रीय स्तर की पत्र–पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। साथ ही यहाँ की साहित्यिक गतिविधियों में इनकी काफी सक्रियता रही है।

90 के दशक के दौरान रंजना श्रीवास्तव का पहला काव्य–संग्रह 'चाहत धूप के एक टुकडे की' का प्रकाशन हुआ। उसके बाद धीरे–धीरे वे लेखन में काफी सक्रिय होती गईं और समय के अंतराल में उनकी अनेक रचनाएँ पुस्तकाकार रूप में आने लगीं। उनके प्रकाशित काव्य–संग्रहों में 'चाहत धूप के एक टुकड़े की', 'सक्षम थीं लालटेनें', 'तनिक ठहरो समुद्र', 'जीवन के बाद', आदि उल्लेखनीय हैं। उसके बाद उनका ग़ज़ल संग्रह–'आईना–ए–रूह', 'एक लड़की मोहब्बत में जलती रही', 'कबीर की अलमस्त फकीरी में', 'निबंध–संग्रह–'फैसले अब हमारे हैं', कहानी–संग्रह– 'लमहों के दस्तरखान', उपन्यास– 'नायरा खान' आदि का प्रकाशन होता है। इसके अलावा इन्होंने आठ अंकों तक 'सृजन पथ' पत्रिका का संपादन भी किया है एवं राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ बराबर छपती रही हैं।

श्याम सुंदर शर्मा कविता और व्यंग्य पहले से ही लिख रहे थे लेकिन सन् 2000 के

बाद इनके काव्य–संग्रह एवं व्यंग्य–संग्रह प्रकाशित होने लगे एवं यहाँ की साहित्यिक गतिविधियों में ये लगातार सक्रिय रहे।

पुतुल मिश्र का पहला काव्य–संग्रह 'ईंधन' 1996 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद विभिन्नपत्र–पत्रिकाओं में उनकी कविताएँ तो प्रकाशित होती रहीं, लेकिन बहुत दिनों तक दूसरा कोई काव्य–संग्रह नहीं आया। फिर लंबे अंतराल के बाद 2015 में उनका दूसरा काव्य–संग्रह 'सबसे बड़ा सवाल' प्रकाशित हुआ एवं उनका तीसरा काव्य–संग्रह 'रंग जीवन के'2016 में प्रकाशित हुआ।

2004 में तारकेश्वर मिश्र ने भी भोजपुरी काव्य–संग्रह 'धरती करे पुकार' के प्रकाशन के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

इसी दौरान श्री देवकी नंदन अग्रवाल का पहला काव्य–संग्रह तिस्ता का प्रकाशन हुआ है। उसके बाद उनका कहानी संग्रह 'रास्ता आगे भी है' एवं कविता और दोहों का संकलन 'साध्य–संवेदन' का प्रकाशन हुआ है।

डॉ. सुनील कुमार द्विवेदी की पहली पुस्तक जो ज्ञानरंजन पर केंद्रित कर लिखी गई है, 'मध्यवर्गीय समाज और ज्ञानरंजन' के नाम से 2010 में प्रकाशित हुई है। उसके बाद उनकी दूसरी पुस्तक 'साहित्य का समकालीन संदर्भ' 2013 में प्रकाशित हुई है। इसके अलावा उन्होंने 2011 में 'अनिवार्य हिंदी' एवं 2012 में 'लोकतंत्र और मीडिया' का संपादन भी किया है एवं इनके आलेख लगातार पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

इधर डॉ. मनीषा झा के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिसमें 'प्रकृति, पर्यावरण' और 'समकालीन कविता' (शोध), 'कविता का संदर्भ' (आलोचना), 'समय, संस्कृति और समकालीन कविता' (शोध), 'साहित्य की संवेदना' (आलोचना), 'सोने का दरवाजा' (बांग्ला उपन्यास 'सोनार दुआर' का हिंदी अनुवाद), 'कंचनजंघा समय' (काव्य–संग्रह) आदि शामिल हैं। इसके साथ ही विभिन्नपत्र–पत्रिकाओं में कविता एवं आलेख बराबर प्रकाशित होते रहे हैं।

डॉ. वंदना गुप्ता का एकके बाद एक लगातार चार काव्य–संग्रह 'अस्मिता की तलाश' –2017, 'मयूरपंख ख्वाहिशों के' –2019, 'फिर लौटेंगी स्त्रियाँ' –2020, 'विरह के वितान' –2020 प्रकाशित हुए हैं।

2018 में ओम प्रकाश अग्रवाल ने भी अपने यात्रा–वृतांत 'खुली किताब' एवं श्री अनिल अग्रवाल ने अपने काव्य–संग्रह 'अनकही' से यहाँ के हिंदी साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। 2019 में जलपाईगुड़ी से एक मात्र कवि अग्रवाल का पहला काव्य–संग्रह 'नई सोच' दिखाई देता है।

यहाँ की साहित्यिक गतिविधियों में अपनी रचनागत सक्रियता के साथ विजय बहादुर सिंह माया शंकर पांडेय, मनोरंजन पांडेय, भास्कर पांडेय, आलोक प्रवीण, डॉ. श्याम सुंदर अग्रवाल एवं अर्चना शर्मा की भी हमेशा भागीदारी रही है। नेमतुल्लाह नूरी एवं इरफान–ए–आजम ने भी अपनी गज़लों एवं शेरो–शायरी से यहाँ के साहित्य को समृद्ध किया है।

सन् 2010 तक आते–आते उत्तर बंगाल के हिंदी साहित्य में एक विशेष प्रकार की समृद्धि दृष्टिगत होती है। इस समृद्धि के पीछे अबतक के रचनाकरों का अथक प्रयास और साहित्यिक सक्रियता तो रही ही है इसके साथ ही और भी अनेक ऐसे कारण हैं जिन्हें दरकिनार नहीं किया जा सकता। इस दौरान एक तरफ जहाँ इस क्षेत्र में विभिन्न

महाविद्यालयों में हिंदी में स्नातक प्रतिष्ठा तक अध्ययन–अध्यापन होने लगा। वहीं दूसरी ओर, इधर कई विश्वविद्यालयों में हिंदी में स्नातकोत्तर तक पढ़ाई होने लगी। परिणाम स्वरूप हिंदी अध्ययन और अध्यापन करानेवालों की संख्या में वृद्धि हुई। हिंदी अध्ययन–अध्यापन के दौरान आकादमिक तौर पर विभिन्न विषयों को लेकर तरह–तरह के सेमिनारों का आयोजन होने लगा और राष्ट्रीय स्तर के विद्वानों का इधर लगातार आगमन होने लगा। इसके अलावा इस क्षेत्र के विभिन्न शहरों, विशेषकर सिलीगुड़ी में भी संस्थागत स्तर पर सेमिनारों का आयोजन होने लगा। इस तरह के साहित्यिक आयोजनों से साहित्य के प्रति विशेष तौर पर अनुराग तो बढ़ा ही साथ ही साहित्य के विकास को एक नई ऊर्जा मिली। अकादमिक स्तर पर निकलने वाले विद्यार्थी यहाँ की साहित्यिक गतिविधियों से जुड़ने लगे। इसी दौरान यहाँ से अनेक राष्ट्रीय स्तर के समाचार–पत्र भी प्रकाशित होने लगे, जिन्होंने किसी न किसी रूप में यहाँ की साहित्यिक गतिविधियों की समृद्धि में अपना योगदान दिया है।

समय के साथ सिलीगुड़ी में क्रमशः हिंदी की साहित्यिक गतिविधियों के विकास के साथ–साथ साहित्यिक लेखन में भी उत्तरोत्तर विकास हुआ है और लगातार विकास हो रहा है। बहुत सारे पुराने एवं नए रचनकारों ने अपने लेखन से यहाँ के हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है और अभी भी कर रहे हैं। नए–नए रचनाकारों की रचनात्मक क्षमता और रचनात्मक लगाव यहाँ के उज्ज्वल साहित्यिक भविष्य को दर्शाता है। यहाँ के रचनाकारों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नई और पुरानी पीढ़ी का कोई भेद–भाव नहीं है। यहाँ तक कि वैचारिक मतभेद होने के बाद भी साहित्यिक गतिविधियों में सबका मेल दिखाई देता है। सब मिलकर एक दूसरे का सहयोग करते हैं।

यहाँ के नवोदित रचनकारों में मोहन महतो, रीता दास, मनीषा गुप्ता, ज्योति भट्ट, कनक लता झा, रूबी प्रसाद, किरण अग्रवाल, ऋतु गर्ग, निशा ठाकुर, पूजा प्रसाद, वंदना गुप्ता आदि कुछ ऐसे नाम हैं जिनकी रचनाएँ भले ही अबतक संग्रह के रूप में नहीं आ पाई हैं, लेकिन ये लगातार रचनारत हैं और बढ़िया लिख रहे हैं। इनकी सक्रियता सुखद अहसास की अनुभूति कराती है।

उत्तर बांग्ला के साहित्य संवर्द्धन में व्यक्तिगत स्तर पर विशेष रूप से योगदान देनेवाले कुछ ऐसे व्यक्तित्व हैं जिनके नामों को भुलाया नहीं जा सकता है। इन नामों में श्री कैलाश नाथ ओझा, श्री महावीर चाचान, डॉ. प्रसाद 'वीरेंद्र', श्री देवेंद्र नाथ शुक्ल, डॉ. आमेप्रकाश पांडेय, डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह एवं डॉ. मुन्ना लाल प्रसाद आदि के नाम शामिल हैं। ये ऐसे व्यक्तित्व हैं जिन्होंने इस क्षेत्र की साहित्यिक गतिविधियों को समृद्ध करने में हर स्तर से अपना योगदान दिया है और अभी भी दे रहे हैं। लेखन के स्तर पर तो इनका योगदान है ही साथ ही, इधर के साहित्यकारों को साहित्यिक गतिविधियों से जोड़ने, उन्हें उत्प्रेरित करने, सक्रिय करने एवं सक्रिय रूप से साहित्यिक कार्यक्रमों को संचालित करने में इनकी विशेष भूमिका रहती है।

❑❑❑

वर्तमान शिक्षक शिक्षा में सृजनात्मकता, समायोजन एवं प्रबंधन शैली का महत्व

सुनीता चौधरी एवं विशी शर्मा

वर्तमान समय में प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान, तकनीकी एवं सूचना क्रांति के विकास के साथ–साथ सामाजिक मान्यताओं, तौर–तरीकों एवं मूल्यों में भारी परिवर्तन हुआ है। जिसके चलते मानव के सम्मुख सामाजिक विषमताएँ और अधिक मुँह बाए खड़ी हैं। मानव अपने को अनेक पर्यावरणीय तथा मनोसामाजिक समस्याओं से घिरा हुआ पाता है। ऐसे में शिक्षक, शिक्षा और शिक्षार्थी–जगत भी अछूता नहीं है। प्राचीन काल में शिक्षा धर्म को आधार मानकर दी जाती थी क्योंकि उस काल में भारतीय सभ्यता एवं विश्व की अनेक सभ्यताएँ धार्मिक प्रवृत्ति से संपृक्त थीं। उस समय मानव का संपूर्ण जीवन सांस्कृतिक चेतना एवं धार्मिक सहिष्णुता से संचालित होता था। समाज के सभी पक्ष यथा आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक विचारधाराओं से सिंचित थे। जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति था। उस समय शिक्षक की भूमिका ईश्वर के रूप में थी। "शिक्षक मोक्ष का दाता था तथा शिक्षा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग थी।"

देश एवं समाज की प्रगति का सीधा संबंध शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता से है। इसलिए कोठारी कमीशन (1964–66) में कहा गया है कि राष्ट्र के किसी व्यक्ति का स्तर उस राष्ट्र के शिक्षक के स्तर से ऊँचा नहीं उठ सकता। भारत में शिक्षक शिक्षा ने काफी प्रगति की है किंतु गुणवत्ता की कीमत पर शिक्षक शिक्षा का अनियोजित विकास एवं अनियंत्रित प्रसार आज एक बड़ी चुनौती है। भावी शिक्षकों को कुशल, योग्य एवं सफल शिक्षक बनाने के लिए शिक्षक शिक्षा की व्यवस्था की गई है। इसका सीधा संबंध विद्यालय शिक्षा से है क्योंकि अध्यापक शिक्षा से विद्यालयी शिक्षा में सुधार लाया जाता है।

यादव सतीश कुमार 2009 "अध्यापक शिक्षा व विद्यालयी शिक्षा एक दूसरे के पूरक हैं।" अध्यापक शिक्षा से ही विद्यालय शिक्षा में सुधार लाया जा सकता है। क्योंकि अध्यापक शिक्षा द्वारा अध्यापकों को तैयार किया जाता है। उनको इस दौरान आवश्यक ज्ञान एवं कौशल दिया जाता है।"

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने भी अध्यापक शिक्षा पर अपने विचार प्रकट किए उसने कहा कि "हम यह भली–भाँति समझ गए हैं कि विचार युक्त शैक्षिक पुननिर्माण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान शिक्षक का है और उसमें व्यक्तिगत गुण, उसकी शैक्षणिक योग्यता, पेशेवर प्रशिक्षण और विद्यालय एवं समाज के उसके द्वारा प्राप्त स्थान सभी महत्वपूर्ण हैं।"

आयोग एवं समितियों तथा राष्ट्रीय नीतियों के द्वारा प्रस्तुत सुझावों की उपादेयता से इनकार नहीं किया जा सकता किंतु प्रश्न यह है कि क्या उन्हें आज भी क्रियान्वित किया जा सकता है? क्या आज हमारे प्रशिक्षण संस्थान यह कहने की स्थिति

में हैं कि वह सच्चे भारतीय जनमत का प्रतिनिधित्व करने वाले शिक्षकों का निर्माण कर रहे हैं। ऐसे शिक्षकों को जो देश को, उसकी समस्याओं को शिक्षा के माध्यम से सुधार कर नवीन मोड़ दे सकें और आगे आने वाली पीढ़ी को सही दिशा निर्देश दे सकने की स्थिति में हैं।

चट्टोपाध्याय समिति (1983–85) ने टिप्पणी की है कि "हमारे अधिकांश शिक्षण महाविद्यालयों और प्रशिक्षण संस्थानों में साधन अत्यंत अपर्याप्त हैं।" अगर शिक्षक शिक्षा को नए शिक्षक की भूमिका और दायित्व के संदर्भ में प्रासंगिक बनाना है तो माध्यमिक स्तर के शिक्षक के प्रशिक्षण की अवधि बारहवीं की पढ़ाई पूरी करने के बाद कम से कम पाँच साल होनी चाहिए। इसकी आवश्यकता पर पुनः जोर देते हुए समिति ने कथन दिया है कि "इससे सामान्य शिक्षा और पेशेवर शिक्षा को एक साथ लेना आसान हो सकता है।" समिति ने सिफारिश की है कि "शुरुआत चार साल के एकीकृत कार्यक्रम से की जा सकती है।"

शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जरूरतों के अनुसार शिक्षकों को निरंतर प्रशिक्षित करने का कार्य करते रहे हैं। जिसमें शिक्षा को मात्र सूचना के हस्तांतरण की प्रक्रिया में देखा जा सकता है, और सीखने का अर्थ पाठ्य पुस्तकों में रटकर जैसे के तैसे बोलना और लिख लेना लगाया जाता है। सेवा पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति लापरवाही वाला दृष्टिकोण राज्य द्वारा दी जाने वाली प्रारंभिक शिक्षा का अंतरंग हिस्सा बन चुके हैं। इससे शिक्षक की पेशेवर के रूप में पहचान हल्की हुई है और इसने सरकारी विद्यालय व्यवस्था और समुदायों के उस विश्वास का भी क्षरण किया है, जिसमें शिक्षक को बदलाव लाने वाली मजबूत कड़ी के रूप में देखा जाता था। वर्तमान शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रमों का खाका और दस्तूर कुछ पूर्ण निर्धारित मान्यताओं पर आधारित है। जो शिक्षकों के विचार तथा पेशेवर एवं व्यक्तिगत विकास को बाधित करता है।

पारंपरिक शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकों को इसके लिए प्रशिक्षित करते हैं कि वह निम्न माध्यमों से वर्तमान व्यवस्था का आवश्यकताओं के अनुकूल हो सके : (क) मानकीकृत ढाँचे के अंतर्गत अध्यायों की सावधानीपूर्वक योजना। (ख) एक निश्चित संख्या में अध्यायों को कक्षा कक्ष में पढ़ाना और उनमें निरीक्षण की प्रथा। (ग) स्कूल की सभाओं और अन्य दैनंदिन गतिविधियों को पूरा करने की प्रथा। (घ) आवश्यक संख्या में प्रोजेक्ट और अभ्यास पूरा करने की परिपाटी। "शिक्षक–प्रशिक्षण के दौरान पाठ योजना को पढ़ाया जाना एक औपचारिक दिनचर्या होती है जो धीरे–धीरे युवा प्रशिक्षुओं को इस पेशे की ओर ले जाती है। इसकी खूबी यह है कि न तो यह ज्ञान और पाठ्यचर्या संबंधी पूर्व निर्धारित मान्यताओं को आघात पहुँचाती है और न ही इस पेशे में आए नए सदस्यों को इन अवधारणाओं और इन पर आधारित व्यवहारों के परिणाम से अवगत कराती है।

मानव प्रकृति से ही जिज्ञासु रहा है और किसी भी देश के विकास में शिक्षक एक महत्वपूर्ण धुरी है। उसने शनैः–शनैः प्रयत्न तथा अनुसंधान के आधार पर दैनिक जीवन में कार्यों को निर्विघ्न संपन्न करने हेतु कुछ आवश्यक कौशल विकसित किए हैं, जिससे वह करने योग्य कार्यों को अल्प समय में पूर्ण दक्षता व श्रेष्ठता से पूरा कर लेता है।

अध्यापकों के भी अपने व्यवसाय से संबंधित अनेक कौशल एवं दक्षताएँ होती हैं जिनका अभ्यास शिक्षण प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षणार्थियों से करवाया जाता है। यदि इन कौशलों को प्रशिक्षणार्थी क्रमिक रूप से सीखें तथा अभ्यास में ले तो उनका शिक्षण संबंधी, प्रबंधन संबंधी कुशलता में वृद्धि होनी स्वाभाविक होगी।

मानव में ऐसी ही एक प्रकृति प्रदत्त शक्ति सृजनात्मकता है। इस क्षमता के आधार पर मनुष्य प्रकृति को रहस्यों के हल करने, अतल की गहराइयों को मापने, अपनी अनुभूतियों को कलात्मक अभिव्यक्ति देने और अपनी समस्याओं को विविध माध्यमों से सुलझानें में समर्थ हुआ है। राष्ट्रीय विकास को तीव्र बनाने में शिक्षा एक सशक्त माध्यम है। जिसके लिए अध्यापकरूपी मानवीय संसाधन का कार्य कुशल होना अत्यंत आवश्यक है। शिक्षण एक कला है। अध्यापक को इसमें दक्षता प्राप्ति के लिए अपने कक्षागत कार्य निष्पादन में सक्षम एवं निपुण होना जरूरी है ताकि वह अपनी व्यावसायिक उन्नति के लिए नीतिगत आधारों पर सिद्धांतों के साथ–साथ पढ़ाने की विधियों एवं युक्तियों का प्रयोग कर सकें। आधुनिक शिक्षा में अध्यापक के समक्ष एक बड़ी चुनौती है कि वर्तमान में तेजी से बदलते परिवेश के अनुरूप शिक्षण अधिगम प्रदान करना। ताकि उनके नवाचारिक प्रयासों से कक्षा–शिक्षण में रोचकता बनी रहे। अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही कुछ नया करने के लिए उत्सुक रहते हैं। ऐसे में छात्राध्यापकों को अपने प्रशिक्षण के दौरान सुनियोजित अवलोकन करके सृजनात्मकता के समुचित अभ्यास द्वारा विद्यार्थियों के प्रति अधिगम मनोवृत्तियों, योग्यताओं, रुचियों तथा कुशलता विकास के अवसर प्राप्त होते हैं। छात्राध्यापकों के स्व–अधिगम एवं स्वतंत्र–चिंतन की क्षमता का विकास करने के लिए यशपाल समिति (1992) ने शिक्षा की बदलती जरूरतों के अनुसार शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रगति अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। भावी अध्यापकों के शिक्षण संस्था के उन्नयन के लिए उनको अवलोकन आधारित अध्ययन के प्रत्येक घटक के प्रति जागरूक करना है। न्यायालय द्वारा गठित जस्टिस वर्मा आयोग (2012) ने अपनी रिपोर्ट में वैधानिक रूप से प्रमाणित किया है कि 'अध्यापक प्रशिक्षण' में ज्ञान के कुछ अंशों का इस्तेमाल पारस्परिक रूप से किया जाता है, जिसका कक्षागत व व्यावहारिक परिस्थितियों से कोई संबंध नहीं होता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन सी ई आर टी) द्वारा कराए गए एक अध्ययन में पाया गया कि "शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण डिजाइनिंग में शिक्षकों के फीडबैक को कोई महत्व नहीं दिया जाता था साथ ही स्थानीय मुद्दों में कोई खास बदलाव नहीं किया जाता।"

शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत प्रशिक्षणार्थी भविष्य के अध्यापक हैं। विद्यार्थियों की नींव का कार्य करने की जिम्मेदारी इन्हीं के कंधों पर है। सृजनात्मक व्यक्ति हमेशा देश एवं समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। मनोवैज्ञानिकों ने माना है कि सृजनात्मक व्यक्ति नवीन समस्याओं के प्रति जागरूक होते हैं वह परंपरागत समस्याओं के नए हल निकालने में लगा रहता है।

आज के सामाजिक वातावरण में एक स्वस्थ विकसित व्यक्तित्व के लिए विद्यार्थियों

का निरंतर परिवर्तनशील वातावरण के साथ स्वयं को समायोजित करना अतिआवश्यक है। समायोजन द्वारा ही व्यक्ति अपने रिश्तों का आदर करना सिखता है।

उसमें सहनशीलता व कर्तव्य–परायणता की भावना का विकास होता है। समायोजन ही वह शक्ति है जो व्यक्ति को समाज में रहने के योग्य बनाती है तथा अपने जीवन में आने वाली कठिनाइयों का सामना करना सिखाती है। समायोजन की इस योग्यता का विकास एक प्रशिक्षणार्थी के अपने सहयोगियों, सहपाठियों के साथ एवं कार्यक्षेत्र में सफलतापूर्वक अपने दायित्व का निर्वहन करने के लिए आवश्यक होता है।

यद्पि समायोजन करने की क्षमता का विकास बाल्यावस्था से ही प्रारंभ हो जाता है किंतु समायोजन की सर्वाधिक आवश्यकता युवावस्था में होती है। युवावस्था ही वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति को एक साथ अनेक दायित्वों का निर्वहन करना होता है। उसे भाई–बहन, माता–पिता, पति–पत्नी आदि समाज के सदस्य, देश के नागरिक व एक कर्मठ विद्यार्थी या कर्मचारी के रूप में अपने कार्यभारों को सफलतापूर्वक निभाना होता है। अतः ऐसी स्थिति में समायोजन क्षमता की कमी युवाओं को सहज ही पथभ्रष्ट कर सकती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म निरीक्षण यह दिखाता है कि युवाओं में सामंजस्य की क्षमता का निरंतर ह्रास होता जा रहा है। लेविन ने कहा है– "व्यक्ति के चारों तरफ के वातावरण और उसके द्वारा समझी गई सामाजिक परिस्थितियाँ समाज में उसके समायोजन को निर्धारित करती हैं।"

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों को अधिकांशतः अपने चिर–परिचित वातावरण एवं घर परिवार से दूर रहकर अध्ययन के लिए नए वातावरण में जाना पड़ता है तथा उनका कार्यक्षेत्र भी सामान्य शिक्षा से भिन्न होता है। अतः ऐसी स्थिति में उन प्रशिक्षणार्थियों को नवीन परिस्थितियों एवं नए दायित्वों को समझना व उनके साथ तालमेल बिठाना होता है। किंतु वर्तमान में यह देखने में आता है कि नए वातावरण में समायोजित होने व अपने दायित्वों तथा नए संपर्कों तथा पारिवारिक रिश्तों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने में युवा असमर्थ होते जा रहें हैं तथा सुसमायोजित होने के स्थान पर कुसमायोजित होने की संभावनाएँ बढ़ती जा रही हैं।

समायोजन का गुण एक महत्वपूर्ण व्यक्तिकारक से संबंधित होता है, जिसे आत्म–संप्रत्यय कहते हैं। आत्म–संप्रत्यय तथा समायोजन परस्पर अंतः निर्भर हैं। आर.के. सारस्वत्त के अनुसार– "एक स्वस्थ समायोजित बालक मजबूत आत्म–संप्रत्यय युक्त होगा, जबकि मजबूत आत्म संप्रत्यय युक्त बाल अच्छी तरह समायोजन कर लेगा।" आत्म–संप्रत्यय एक व्यक्ति की अपने प्रति बनाई गई धारणा है। आत्म–संप्रत्यय को व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण आधार माना गया है।

ब्रेकनरिज, एमेरिच एवं हॉक के अनुसार– "जिस प्रकार पृथ्वी के गुरूत्व का केंद्र उसका कोड है। उसी प्रकार जिस जगत में मनुष्य रहता है, वहाँ उसके व्यक्तित्व का गुरूत्व केंद्र उसका आत्म–संप्रत्यय है।" एक व्यक्ति के व्यवहार की गुणवत्ता जिस प्रकार वह अपने वातावरण में परिस्थितियों व मनुष्यों

से समायोजित होता है, के द्वारा प्रदर्शित होती है तथा बृहद सीमा तक आत्म–संप्रत्यय द्वारा निर्धारित की जाती है।

किसी व्यक्ति के जीवन में उसकी सफलता केवल उसकी स्तरीय शैक्षिक उपलब्धियों से ही निर्धारित नहीं होती है, यह निर्धारित होती है उसके 'स्व' की पहचान तथा उसकी समायोजित होने की योग्यता से। प्रत्येक व्यक्ति में आत्म–संप्रत्यय का विकास होता

है। किशोरों में आत्म–संप्रत्यय व्यवहार को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारक है। यह एक व्यक्ति को कठिनाइयों की श्रृंखला में डाल सकता है और उसे सहजतापूर्वक उनके समाधान में सहायता भी कर सकता है।

सृजनात्मकता एवं समायोजन की भाँति एक शिक्षक प्रशिक्षण प्रशिक्षणार्थी की प्रबंधन शैली का भी शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि ये ही प्रशिक्षणार्थी आगे चलकर शिक्षक, संस्था–प्रधान बनते हैं। एक संगठन की उन्नति अथवा पतन पूर्णतया उसके नेता एवं उसके द्वारा प्रयोग में ली जाने वाली प्रबंधन शैलियों पर निर्भर करता है। सामान्यतः किन्हीं दो प्रबंधकों की कार्यशैली समान नहीं होती। अगर किसी प्रबंधक को सफल माना जाता है तो वह उसकी प्रबंधन शैली की सफलता के कारण ही संभव होता है।

प्रबंधन का सही एवं सरल शब्दों में अर्थ एक संगठन में व्यक्तियों से व्यवस्थित एवं नियोजित कार्य कराना है। दूसरे शब्दों में संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के उन प्रयासों से हैं, जिन्हें निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नियोजित, निर्देशित एवं समन्वित किया जाता है। भारतीय दर्शन में प्राचीनकाल से इस संप्रत्यय का प्रयोग स्वज्ञान के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

वेदांत में प्रबंधन को स्वयं की सत्यता या वास्तविक के बोध रूप में परिभाषित किया है।

प्रबंधन की परिभाषा देते हुए डेवर ने कहा है कि "प्रबंधन के अंतर्गत उद्देश्यों का प्रतिपादन करना, कर्मचारियों की व्यवस्था करना, उनके उद्देश्य प्राप्त करने का नियोजन करना, संगठन स्थापित करना, कर्मचारियों को निर्देशन देना, समन्वित करना, उनके कार्यों का मूल्यांकन करना, नियंत्रण करना, उन्हें प्रोत्साहन देना और सभी क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना है।"

प्रबंधन की प्रभावशीलता एवं कार्य–क्षमता सामाजिक प्रणाली पर आधारित होती है। वर्तमान सामाजिक प्रणाली में जहाँ हम हर क्षेत्र में वैश्वीकरण की प्रवृत्ति की ओर बढ़ रहे हैं, वहाँ शिक्षा भी इससे अछूती नहीं रही है। ऐसी स्थिति में हमें चाहिए कि शिक्षण संस्थाओं के सुचारू एवं सरल प्रबंधन के विषय में गहराई से सोचा जाए। वर्तमान समय की माँग के अनुरूप शिक्षा के विभिन्न स्तरों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए संस्था आधारित शैक्षिक प्रबंधन की आवश्यकता है, इस हेतु भावी अध्यापकों को भी प्रबंधन शैली में कुशल होना होगा।

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशनल रिसर्च के आधार पर "शैक्षिक प्रबंधन वह प्रक्रिया है जिसमें कार्यरत लोगों के प्रयासों को इस प्रकार संगठित एवं समन्वित किया जाता है कि जिससे मानवीय गुणों का प्रभावशाली ढंग से विकास हो सके।"

किसी भी शिक्षण संस्था का मूल एवं प्रथम लक्ष्य प्रभावशाली अध्यापन कार्य ही है। अतः प्रबंधन शैली की कुशलता प्रभावशाली अध्यापक में निहित होती है। संस्था का प्रधान यदि कुशल है तो अन्य गतिविधियों के साथ अध्यापन कार्य भी निश्चित रूप से संतोषजनक होगा। यह गुण एक अध्यापक में प्रशिक्षण के समय अधिक विकसित होने की संभावना रहती है। एक अध्यापक में सृजनात्मकता, समायोजन एवं प्रबंधन शैली के गुणों का समावेश होना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Apfstatic.S..Gp-South-1amazonouns.com>–पुरुषोत्तम धीमान– अध्यापक शिक्षा सुझाव नहीं, सुधार आवश्यक– मई–सितंबर 2015–प्रवाह, पृष्ठ 24

2. द्यर, टी.एन. "शिक्षा में जवाब देहिता" द इंडियन जर्नल ऑफ टीचर एजुकेशन, एन सी इ आर टी, नई दिल्ली, पृष्ठ 35

3. लेविन.के. – 'ए डायनेमिक थ्योरी ऑफ पर्सनाल्टी' न्यूयार्क, मैकग्रा हिल (1935), पृष्ठ 113

4. Ncert.nic.in>.pdf7h-Focus-group> Shikshak Shiksha

5. रंजना शर्मा– संस्था प्रधान एवं उनकी प्रबधन शैलियाँ– इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट वॉल्यूम 1, इश्यू 3, मार्च 2013

6. सारस्वत, आर.के.– "सेल्फ कॉन्सेप्ट डायमेंसन्स एंड डेटरमिनैंट्स" कॉमनवेल्थ– पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली (1989), पृष्ठ 8

7. www.drishtiias.com.hindi daily News editorials: 94 प्रशिक्षित एवं कुशल शिक्षकों की कमी से प्रभावित हो रही शिक्षा की गुणवत्ता

8. यादव सतीश कुमार (2009), अध्यापकए शिक्षा–समस्याएँ एवं चुनौतियाँ, भारतीय आधुनिक शिक्षा, नई दिल्ली 30 (2), पृष्ठ 79–85

❑❑❑

चिंतामणि : समालोचना का बीजक

कृष्ण बिहारी पाठक

साहित्य अपने किसी भी रूप में अंततः भावों की अभिव्यंजना के रूप में ही परिभाषित होता है।भावों की यह अभिव्यक्ति जितनी शुद्ध, पारदर्शी, और सुसंप्रेष्य होगी, रचना उतनी ही उत्कृष्ट होगी और रचनाकार उतना ही अधिक समर्थ।

साहित्य और साहित्यकार के मूल्य निर्धारण में भाव अभिनिवेश की सामर्थ्य, गुणवत्ता और निर्बाध संप्रेषण एक महत्वपूर्ण मापदंड है, इसलिए किसी भी समीक्षक या समालोचक की दृष्टि पहले–पहल इसी पक्ष पर जाती है, किंतु समालोचना की शुद्धता इस बात पर निर्भर है कि भावों की प्रकृति, प्रसार और परिभाषीकरण के संदर्भ में समालोचक का विवेक कैसा और कितना है।

किसी भाव विशेष के संदर्भ में उसका संप्रत्यय कितना स्पष्ट है। उस भाव को वह कैसे परिभाषित करता है। उस भाव विशेष के प्रसार और प्रभाव का कितना उसे ज्ञान है। एक ही भाव से उठने वाली सकारात्मक, नकारात्मक आयामों पर उसकी संतुलित दृष्टि जाती है अथवा नहीं। एक ही भाव में अंतर्निहित सत्व, तम और रजोगुण की उपस्थिति और विभेदीकरण की सूझ आलोचक में है अथवा नहीं।

इन सब प्रश्नों के उत्तर में सफलतापूर्वक सक्षम आलोचकों के हरावल दस्ते में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को हम सबसे मजबूत पैरों पर खड़ा पाते हैं। किसी भाव विशेष को परिभाषित करने में, दो निकटतम भावों में तर्कपूर्ण विभेद करने में, भाव की शक्ति और सामर्थ्य की परास निर्धारित करने में, एक भाव से अन्य भावों पर पड़ने वाले प्रभाव के अंकन में, आचार्य रामचंद्र शुक्ल विलक्षण प्रज्ञा के साथ वर्तमान हैं।

शुक्ल जी का भाव सम्मत विवेक सैद्धांतिकी के रूप में चिंतामणि में संगृहीत मनोविकार संबंधी निबंधों में मिलता है। भारतीय रस–दृष्टि में पाश्चात्य मनोविज्ञान के सिद्धांतों को पचाते हुए शुक्ल जी ने आलोचना की एक मौलिक सैद्धांतिकी विकसित की, जिसे हम चिंतामणि के मनोविकार संबंधी निबंधों में रूपायित पाते हैं।

चिंतामणि को शुक्ल जी की समीक्षा पद्धति के आधार ग्रंथ के रूप में देखना चाहिए शुक्ल जी द्वारा प्रणीत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में वर्णित कृति–कृती समीक्षाएँ, सूर तुलसी जायसी के कृतित्व पर केंद्रित आलोचनाएँ यदि उनकी आलोचना का व्यवहार पक्ष है तो चिंतामणि उसका सिद्धांत पक्ष है। लक्षण–उदाहरण के तुक पर चिंतामणि को आलोचना के शुक्ल स्कूल का लक्षण ग्रंथ भी कहा जा सकता है। रामचंद्र शुक्ल के आलोचना साहित्य की समृद्धि के मूल में चिंतामणि में अंतर्निहित चिंतन धन का अक्षय कोष है जो हिंदी के समीक्षा साहित्य को अविरत संपन्न कर रहा है। इस दृष्टि से चिंतामणि को समालोचना का बीजक भी कहा जा सकता है।

हम ऊपर कह आए हैं कि चिंतामणि में अंतर्निहित भाव विमर्श की आधारभूमि भारतीय रस सिद्धांत एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान से

लेकर शुक्ल जी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा और मौलिक चिंतन से विविध भावों, मनोविकारों को भारतीय संदर्भों में परिभाषित किया। साहित्य और साहित्यकारों का मूल्यांकन करते समय वे इन परिभाषाओं को केंद्र में रखकर चलते हैं।

यहाँ यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि शुक्ल जी द्वारा प्रस्तुत व्यावहारिक एवं सैद्धांतिकसमीक्षाग्रंथोंकीपारस्परिक संबद्धता के माध्यम से शुक्ल जी की चिंतन प्रक्रिया को लक्ष्य करते हुए उसे भविष्य की समीक्षा पद्धति के आधार स्रोत के रूप में रेखांकित करने का उद्देश्य इस लेख का प्रधान उद्देश्य है। चिंतामणि की चिंतन प्रणाली को शुक्ल जी की व्यावहारिक समीक्षाओं में एकात्मक अभिन्नता के साथ रेखांकित करते समय शुक्ल जी की उस विचार पद्धति को समझने का प्रयास यहाँ है जो आद्यंत भाव विश्लेषण के सम्यक विवेक से निर्मित होती है।

शुक्ल जी ने अपनी व्यावहारिक समीक्षाओं में किसी भाव को जैसे वैभव के साथ साक्षात् किया है उसकी समानांतर पुष्टि और परिभाषीकरण वे चिंतामणि में करते देखे गए हैं।

यद्यपि शुक्ल जी ने सभी भावों की विशद व्याख्या की है तथापि रति और शोक के भाव को उनके चिंतन में केंद्रवर्ती स्थान मिला है। इन दो भावों के प्रति शुक्ल जी के विशेष आग्रह को समझने के लिए उनकी कविता की शर्त को समझना होगा।

कविता क्या है? शुक्ल जी के मत में ऐसा कोई भी शब्द विधान जिसे पाकर व्यक्ति का हृदय मुक्तावस्था में पहुँच जाता है, कविता है। यहाँ कविता शब्द की परास को व्यापक मानते हुए इसे साहित्य भी कहा जा सकता है और इस प्रकार साहित्य वही है जो व्यक्ति के हृदय को मुक्त हृदय बनाते हुए उसे निजी स्वार्थ के संकुचित क्षेत्र से मुक्त करते हुए विश्व हृदय बनाता है। साहित्य वही है जो मनुष्य को शेष सृष्टि के साथ रागात्मक संबंधों में प्रवृत्त करता है।

हृदय में स्थित सभी भाव प्राणवत्ता पाकर मानव को मुक्तावस्था की प्रतीति कराने में सक्षम हैं किंतु मानव का हृदय रति तथा शोक की अवस्था में ही सर्वाधिक मुक्त होकर चराचर जगत तथा शेष सृष्टि के साथ अभिन्न एकात्मकता का निर्वहन करता है। जायसी कृत पद्मावत में नागमती के विरह वर्णन को हिंदी साहित्य की अद्वितीय वस्तु बताते हुए, नागमती के हृदय की उस दशा को पुण्य दशा बताते हैं जिसमें नागमती का हृदय मुक्तावस्था में पहुँचकर पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव को सगा समझने लगता है। नागमती ने वियोग की अवस्था में शेष सृष्टि से रागात्मक संबंध स्थापित कर लिया है, उसे पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव अपने सगे जान पड़ते हैं जिन्हें वह अपना दुखड़ा सुनाकर जी हल्का करती है।

हृदय की वह अवस्था जिसमें प्राणी संकुचित स्वार्थ मंडलों से ऊपर उठकर संपूर्ण सृष्टि में अपने अस्तित्व को एकाकार करता है, उसे ही शुक्ल जी ने हृदय की मुक्तावस्था, कविता और साहित्य का प्रधान लक्ष्य, रसोत्पत्ति का मूल कहा है। हृदय की इस उदार दशा को लक्ष्य करके वे लिखते हैं—"हृदय की इस उदार और व्यापक दशा का कवियों ने केवल प्रेम दशा के भीतर ही वर्णन किया है, यह बात ध्यान देने योग्य है।... प्रेम दशा के भीतर ही मनुष्य का हृदय उस संबंध का आभास पाता है जो पशु, पक्षी, द्रुम, लता आदि के साथ अनादिकाल से चला आ रहा है।"[1] कहने की आवश्यकता नहीं कि शुक्ल जी की साहित्यिक कसौटी में रति भाव सर्वोपरि है। चिंतामणि में वे रति भाव के उत्कर्ष, अपकर्ष को अन्य भावों के साथ परिभाषित करते हैं।

शृंगार रस के स्थायी भाव रति से किस प्रकार वीर रस का स्थायी भाव उत्साह मैत्री

का निर्वहन करता है और रचना के उत्कर्ष में सकारात्मक भूमिका निर्वहन करता है इसे समझने के लिए साहित्येतिहास के वीरगाथा काल और चिंतामणि के निबंधों को एक ही चश्मे से देखना होगा।

एक ओर वे आदिकालीन रासो साहित्य के मूल्यांकन में वे रति और उत्साह के मित्रभाव को प्रमुख मानदंड बनाते हैं, तो दूसरी ओर लोभ और प्रीति शीर्षक निबंध में प्रेम की चर्चा में वे इसी भाव मैत्री को परिभाषित करते हैं। पूरब से पश्चिम तक युद्ध तथा प्रेम को वीरगाथा का अनिवार्य प्रसंग बताते हुए वे लिखते हैं–"किसी राजा की कन्या के रूप का संवाद पाकर दलबल के साथ चढ़ाई करना और प्रतिपक्षियों को पराजित कर उस कन्या को हरकर लाना वीरों के गौरव और अभिमान का काम माना जाता था। इस प्रकार इन काव्यों में श्रृंगार का भी थोड़ा मिश्रण रहता था।"[2]

इसी प्रकरण में वे आगे लिखते हैं कि राजनीतिक कारणों से होने वाले युद्धों में भी युद्ध के प्रेरक के रूप में रति भाव की कल्पना साहित्य में बराबर की गई है। रति और उत्साह की मैत्री से निष्पन्न रसोत्कर्ष ही संभवतः इस कवि प्रथा के मूल में रहा होगा। लोभ और प्रीति निबंध में शुक्ल जी ने लिखा है–"वीरता के पुराने जमाने में युवक योद्धा यह समझकर कि गढ़ी की ऊँची अट्टालिका के गवाक्षों से हमारी प्रेयसी झाँकती होगी, किस सौंदर्य भावनापूर्ण उमंग के साथ रणक्षेत्र में उतरता था।"[3]

युद्ध या किसी साहसिक कार्य के प्रेरक के रूप में रति भाव किस तरह काम करता है, यह वीरगाथा के संपूर्ण रासो काव्य में चरितार्थ होकर सामने आता है। तुलसी के मानस में हनुमान के साहसिक कार्यों और उत्साह भाव के प्रेरक के रूप में भी रतिभाव का ही एक अन्य रूप विद्यमान है जिसे भगवद्विषयक रति कहा जाता है।मथुरागमन के पश्चात्कृष्ण के प्रति गोपियों के एकपक्षीय प्रेम में भी रति की ही प्रेरणा है। यहाँ तक कि देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम में अंतर्निहित भूमि के लोभ को भी शुक्ल जी ने रति से ही जोड़कर दिखाया है। लोभ और प्रेम दोनों को एक ही रति भाव के दो भिन्न स्तर बताते हुए वे लिखते हैं–"विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ वह सात्विक रूप प्राप्त करता है, जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं।जहाँ लोभ सामान्य या जाति के प्रति होता है वहाँ वह लोभ ही रहता है, जहाँ पर किसी जाति के एक ही विशेष व्यक्ति के प्रति होता है वहाँ रुचि या प्रीति का पद प्राप्त करता है। लोभ सामान्योन्मुख होता है और प्रेम विशेषोन्मुख।"[4]

इस उद्धरण में महत्व की बात यह है कि रति का ही एक भेद होते हुए भी लोभ भावना के उस उच्च स्तर तक नहीं पहुँच पाता है जहाँ प्रेम प्रतिष्ठित है। शुक्ल जी ने लोभ और प्रेम के बीच के इस सूक्ष्म अंतर को चिह्नित किया है और अपनी समीक्षा का अवयव बनाया है। पद्मावत में तोते के मुँह से पद्मावती का रूप वर्णन सुन राजा रत्नसेन में जो पूर्व राग उत्पन्न होता है शुक्ल जी उसे प्रेम के विशुद्ध उजास के साथ नहीं पाते, इसे वे रूप लोभ मात्र कहते हैं, परिपुष्ट प्रेम नहीं, पूर्ण रति नहीं। और जब यह भाव शुद्ध प्रेम नहीं है तो ऐसे में जायसी द्वारा रत्नसेन का इस रूप में वर्णन करना की उसका शरीर सूखकर काँटा हो गया है, पद्मावती को याद कर वह बार–बार मूर्च्छित हो जाता है, उन्मादित होकर पूर्ण वियोगी बन जाता है, पूरी तरह से अस्वाभाविक जान पड़ता है। रत्नसेन के इस प्रसंग में उपस्थित यह अस्वाभाविकता कहीं न कहीं कृति को कमजोर करती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कृति के समर्थ और कमजोर स्थलों की पहचान समीक्षा के

लिए कितने काम की बात हुआ करती है। यदि रूप वर्णन सुनते रत्नसेन में जायसी ऐसे उन्माद के स्थान पर केवल 'अभिलाषा' नामक संचारी का निरूपण करते तो बात स्वाभाविक भी लगती और काव्य की उपकारक भी।

चिंतामणि में जो बात शुक्ल जी ने लोभ और प्रेम की तुलना में कही है वही बात प्रकारांतर से वे जायसी की समीक्षा करते हुए कहते हैं–"दूसरे के द्वारा किसी पुरुष या स्त्री के रूप गुण आदि को सुनकर चट उसकी प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करने वाला भाव लोभ मात्र कहला सकता है, परिपुष्ट प्रेम नहीं। लोभ और प्रेम के लक्ष्य में सामान्य और विशेष का ही अंतर समझा जाता है। बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम दूसरे की आँखें नहीं देखता, अपनी आँखों से देखता है।"[5]

प्रेम और लोभ के बीच इसी भेद को आधार बनाकर शुक्ल जी ने जायसी द्वारा रत्नसेन के प्रयत्नों को तप कहे जाने पर आपत्ति की है और ऐसे वर्णन को नकल कहा है।

लोभ और प्रेम के बीच एक और महत्वपूर्ण अंतर शुक्ल जी ने रेखांकित किया है, वह यह है कि प्रेम जिन दो पक्षों के बीच पल्लवित होता है वे दोनों हृदय रखने वाले सजीव प्राणी होते हैं जबकि लोभ प्रायः वस्तु का होता है जिसमें हृदय केवल एक ओर दिखाई पड़ता है, दूसरी ओर नहीं। रत्नसेन के पूर्वराग प्रकरण में यद्यपि दोनों ओर सजीव प्राणी हैं किंतु यहाँ एकपक्षीय होने से वह भाव लोभ से ऊपर नहीं उठ सका है फिर पद्मावती को रत्नसेन के प्रेम का कुछ संज्ञान भी नहीं है।

एकपक्षीय प्रेम की बात सुनकर गोपियों के कृष्ण के प्रति प्रेम को लेकर यहाँ एक आपत्ति की जा सकती है। रत्नसेन और गोपबालाओं दोनों का प्रेम एकपक्षीय है फिर शुक्ल जी ने क्यों रत्नसेन के प्रेम को लोभ से ऊपर नहीं देखा जबकि गोपियों के प्रेम की वे मुक्तकंठ प्रशंसा करते हैं, आदर करते हैं।

इस प्रशंसा और आदर के मूल में दो कारण शुक्ल जी ने गिनाएँ हैं।प्रथम तो यह कि गोपियों का यह प्रेम कृष्ण के चिर साहचर्य जनित और परिचय पर आधारित है और संयोग के उपरांत वियोग का प्रेम है, जबकि रत्नसेन के प्रसंग में केवल रूप गुण श्रवण का ही आधार है, वह भी तात्कालिक। दूसरे यह कि रत्नसेन केवल अपनी ही तुष्टि के विधान होने न होने की स्थितियों के बीच है जबकि गोपियों का प्रेम निखरकर, निर्मल और शुद्ध होकर प्रेम की अविचल, उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित है जहाँ वे कृष्ण से कुछ नहीं चाहतीं, हाँ, ईश्वर से चाहती हैं कि हमारा प्रिय बना रहे– 'न्हात खसे जनि बार।' चिंतामणि में वे लिखते हैं–

"प्रेमी तो प्रेम कर चुका, उसका कोई प्रभाव प्रिय पर पड़े उसके प्रेम में कोई कसर नहीं। तुष्टि का विधान न होने से प्रेम के स्वरूप की पूर्णता में कोई त्रुटि नहीं आ सकती। जहाँ आत्म तुष्टि की भावना विरत हो जाती है वहाँ प्रेम का अत्यंत निखरा हुआ निर्मल और विशुद्ध रूप दिखाई पड़ता है। ऐसे प्रेमी के लिए प्रिय की तुष्टि या सुख से अलग अपनी कोई तुष्टि या सुख रह ही नहीं जाता। प्रिय का सुख–संतोष ही उसका सुख–संतोष हो जाता है।"[6]

गुलेरी की कालजयी कृति 'उसने कहा था' में लहना सिंह के उदात्त प्रेम को शुक्ल जी ने इसी चश्मे से देखा है। एक बच्चे पर अधिकार जताती दो महिलाएँ, काजी द्वारा बच्चे को काटकर बाँटने का फैसला और फैसले पर असली माता द्वारा बच्चे की प्राण रक्षा के उद्देश्य से बच्चे का त्याग भी इसी श्रेणी का उदाहरण है।

हम ऊपर कह आए हैं कि लोभ में दोनों ओर हृदय पक्ष रखने वाले सजीव प्राणी नहीं होते इसीलिए वह प्रेम की सी उच्चता पर प्रतिष्ठित नहीं होता। इस दृष्टि से जन्मभूमि या स्वदेश के प्रति प्रेम वास्तव में प्रेम न होकर स्थान या भूमि का लोभ ही कहना चाहिए किंतु क्या वास्तव में राष्ट्रप्रेम को लोभ ऐसे कमतर भाव की भूमि पर शुक्ल जी दिखाना चाहते थे? उत्तर है, नहीं। इस प्रकरण में शुक्ल जी ने जोर देकर चिर साहचर्य, सामीप्य और सतत परिचय को आगे किया है और कहा है कि लोभ यदि चिर साहचर्य, सामीप्य और परिचय से जुड़कर सामने आता है तो वह प्रेम की उसी उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित हो जाता है। स्थान का लोभ देश प्रेम में कैसे बदलता है इसे स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं–"जिनमें यह देश प्रेम नहीं है उनमें वह किसी प्रकार हो भी सकता है? हाँ, हो सकता है– परिचय से, सानिध्य से, जिस प्रकार लोभ से सानिध्य की इच्छा उत्पन्न होती है, उसी प्रकार सानिध्य से भी लोभ या प्रेम की प्रतिष्ठा होती है। जिनके सानिध्य का हमें अभ्यास पड़ जाता है, उनके प्रति लोभ या राग हो जाता है।"[7]

देश की भूमि, संस्कृति, जन, प्रकृति और परंपराओं से सच्चा प्रेम तभी संभव है जब इनके प्रति चिर परिचय, सतत सानिध्य और सामीप्य की भावना बलवती बनी रहे। व्यक्तिअपने स्व अथवा आत्म को विस्तारित करता हुआ उसे देशव्यापी या विश्वव्यापी बनाने की ओर अग्रसर रहे।

जिस प्रकार वीर रस का स्थायी भाव उत्साह रति से मैत्री संवाद निभाते हुए रस के उत्कर्ष में सहायता करता है उसी प्रकार करुण रस तथा उसका स्थायी भाव शोक भी रति से मैत्रीपूर्ण भाव संवाद बनाता है। प्रेमी द्वारा प्रिय के हृदय में अपने लिए प्रेम उत्पन्न करने का निश्चित और त्वरित मार्ग है अपनी हीनता, तुच्छता, दुख या पीड़ा दिखाना अथवा पीड़ा की सूचना पहुँचाना। प्रिय के हृदय में प्रेमी के लिए आज दया उमड़ी तो संभव है कल प्रेम भी प्रस्फुटित हो जाए इसलिए वह अपनी वेदना अविरत प्रिय तक पहुँचाना चाहता है। वियोग श्रृंगार में इसका विधान कवियों ने बराबर किया है। रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है–"दया उत्पन्न करके वह प्रिय के अंतस में प्रेम की भूमिका बाँधना चाहता है। प्रिय के मुख से निकले हुए सहानुभूतिक शब्द–सा प्रिय संसार में कोई शब्द नहीं हो सकता। 'बेचारा बहुत अच्छा था' प्रिय के मुँह से इस प्रकार के कुछ शब्दों की संभावना पर ही आशिक लोग अपने मर जाने की कल्पना बड़े आनंद से किया करते हैं। यदि प्रेमी को यह निश्चित हो जाए कि मर जाने पर प्रिय की आँखों में आई हुई आँसू की बूँद वह देख सकेगा तो वह अपना शरीर छोड़ने के लिए तैयार हो सकता है।"[8]

रीतिकालीन कवि ठाकुर ने अपनी कविता में प्रेमी का तुष्टि विधान इस रूप में दिखाया है कि प्रेमी को यदि प्रिय मिल भी न सके तो वह केवल इतना चाहता है कि प्रिय को इसकी सूचना भर मिल जाए कि प्रेमी उससे मिलने के लिए कितना अधीर है–

आवत हैं नित मेरे लिए इतनी तो विशेष कै जानति ह्वै हैं।

समालोचना में जिन बातों पर केंद्रण किया जाता है उनमें से सर्वप्रमुख बात यही निकलती है कि रचनाकार की किसी भाव विशेष के स्वरूप, चरित्र और व्यक्तित्व के संदर्भ में समझ कितनी विकसित है। उस भाव पर अन्य भावों से पड़ने वाले अनुकूल–प्रतिकूल प्रभावों पर उसकी दृष्टि जाती है अथवा नहीं। चिंतामणि के निबंधों में न केवल भावों के स्वरूप का विशद विश्लेषण है अपितु अन्य भावों के अनुकूल–प्रतिकूल रसायन का भी सम्यक् विवेचन है। सम्यक् विवेचन का यह

विवेक जिस कृति और कृती में जितना सर्वांगपूर्ण होगा वे उतने ही श्रेयस्कर और कालजयी सिद्ध होंगे।

चिंतामणि के पहले ही निबंध भाव या मनोविकार में शुक्ल जी ने रस सिद्धांत की अंतर्वेशी प्रवृत्ति की पड़ताल की है। रस के चार अवयवों में अनुभाव और अनुभाव में भी वाचिक अनुभावों को शुक्ल जी ने रेखांकित किया है, यह बात ध्यान देने योग्य है। साहित्य में वाचिक अभिव्यक्ति प्रधान रहती है इसलिए साहित्य का मूल्यांकन भी इसी आधार पर किया जाना स्वाभाविक है। दूसरे यह कि कायिक अनुभावों द्वारा भावों की व्यंजना उतनी सटीक और पूर्ण नहीं हो पाती जितनी की वाचिक द्वारा।

"शरीर–मात्र धर्म के प्रकाश से बहुत थोड़े भावों की निर्दिष्ट और पूर्ण व्यंजना हो सकती है। उदाहरण के लिए कम्प को लीजिए कम्प शीत की संवेदना से भी हो सकता है, भय से भी, क्रोध से भी और प्रेम के वेग से भी। सभ्य जातियों के बीच इन(कायिक) प्रयत्नों का स्थान बहुत कुछ शब्दों ने लिया है। मुँह से निकले हुए वचन ही अधिकतर भावों की व्यंजना किया करते हैं। इसी से साहित्य मीमांसकों ने अनुभाव के अंतर्गत आश्रय की उक्तियों को विशेष स्थान दिया है।"[9]

क्रियाओं के स्थान पर उक्तियों की विशेष स्थानीयता को शुक्ल जी समीक्षा का महत्वपूर्ण मानक बनाकर चलते हैं। क्रियाओं की मर्यादा तय है उसका उल्लंघनपूर्ण वर्णन साहित्य में यदि कर भी दिया जाए तो वह मजाक की हद में पहुँचकर रचना को हानि पहुँचा सकता है, किंतु वाणी या कथन का प्रसार असीम है। क्रोध के वर्णन में इतना मात्र कह देना कि मैं तेरी चटनी बना दूँगा, क्रोध के संपूर्ण उत्कर्ष को परिभाषित कर देता है। अपने कथन की पुष्टि में आचार्य शुक्ल ने लिखा है–"वीर रस की जैसी अच्छी और परिष्कृत अनुभूति उत्साहपूर्ण उक्तियों द्वारा होती है वैसी तत्परता के साथ हथियार चलाने और रणक्षेत्र में उछलने–कूदने के वर्णन में नहीं। उक्तियों में जितनी नवीनता और एकरूपता आ सकती है या भावों का जितना अधिक वेग व्यंजित हो सकता है उतना (क्रिया) व्यापारों द्वारा नहीं।"[10]

किसी रस की उत्कर्षपूर्ण सिद्धि हेतु या भाव विशेष की वेगवान अभिव्यंजना हेतु उक्तियों का अभिनिवेश किसी रचना और रचनाकार की सृजन प्रक्रिया में किस रूप में वर्तमान है, इसे आधार मानकर शुक्ल जी रचनाओं की नब्ज टटोलते हैं और उनके पुष्ट शरीर, स्वास्थ्य अथवा निर्बलता को रेखांकित करते हैं।

सूर के काव्य की समालोचना करते समय शुक्ल जी का ध्यान सबसे ज्यादा उक्तियों पर ही गया है।शुक्ल जी के सूर श्रृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र की संपूर्ण संभावनाओं पर पहुँच चुके हैं, इतने कि आगे होने वाले कवियों को केवल जूठन ही शेष रहती है। शुक्ल जी का सर्वाधिक ध्यान भ्रमरगीत में गोपियों की उक्तियों की ओर ही गया है। उन्होंने लिखा है–"प्रेमदशा के भीतर की न जाने कितनी मनोवृत्तियों की व्यंजना गोपियों के वचनों द्वारा होती हैं। सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्धपूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है, जिसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य और कहीं नहीं मिलता।"[11]

भ्रमरगीत में गोपियों की उक्तियाँ ऐंद्रिक सुख के स्थान पर अपने हृदय की पवित्रता, निश्छलता, अनन्यता और उदारता का परिचय देती हैं।तुलसी के मानस की चित्रकूट सभा को आध्यात्मिक घटना बताते हुए उस सभा में

उपस्थित सामाजिकों की उक्तियों को शुक्ल जी ने बड़े महत्व के साथ रेखांकित किया है–"भारतीय शिष्टता और सभ्यता का चित्र यदि देखना हो तो इस राज समाज में देखिए कैसी परिष्कृत भाषा में, कैसी प्रवचन पटुता के साथ, प्रस्ताव उपस्थित होते हैं, किस गंभीरता और शिष्टता के साथ बात का उत्तर दिया जाता है।"[12]

उत्साह निबंध में शुक्ल जी ने साहस, धीरता और उत्साह के बीच के महीन अंतर को लक्षित किया है। रचनाओं के मूल्य निर्धारण में यह अंतर इस रूप में काम करता है कि यदि कोई रचनाकार अपनी रचना अथवा पात्रों में वीर रस का पूर्ण परिपाक दिखाना चाहता है तो उसे साहस और धीरता से ऊपर उठकर उत्साह के स्तर पर पहुँचना होगा। इन तीनों के बीच का अंतर शुक्ल जी ने स्पष्ट किया है–"केवल कष्ट या पीड़ा सहन करने के साहस में ही उत्साह का स्वरूप स्फुरित नहीं होता। उसके साथ आनंदपूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कंठा का योग चाहिए बिना बेहोश हुए भारी फोड़ा चिराने को तैयार होना साहस कहा जाएगा, पर उत्साह नहीं और कठिन से कठिन प्रहार सहकर भी जगह से न हटना धीरता कही जाएगी। आनंदपूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कंठा में ही उत्साह का दर्शन होता है, केवल कष्ट सहने के निश्चेष्ट साहस में नहीं।"[13]

तुलसी के मानस में वर्णित कालनेमि, कुंभकर्ण और मारीच के प्रसंग में साहस और धीरता तो वर्तमान है, ये तीनों पात्र प्राणांत होने तक प्रयत्नशील रहते हैं, किंतु इनके प्रयत्न में आनंद या उत्कंठा का स्पर्श तुलसी ने नहीं दिखाया है। वीर रस से ये कुछ नीचे रह जाते हैं। वीर रस का स्पर्श हनुमान के समुद्र लंघन प्रसंग में, रावण दरबार में पहुँचे हनुमान, अगंद के प्रसंग में, या कहें राम के पक्ष में लड़ने वाले ऋक्ष, वानरों तक में पाया जाता है।

श्रद्धा और भक्ति निबंध में श्रद्धा के, प्रतिभा संबंधिनी, शील संबंधिनी और साधन–संपत्ति संबंधिनी तीन भेद बताते हुए साधन संपन्नता के अनुपयोग, सदुपयोग और दुरुपयोग पर शुक्ल जी का ध्यान गया है। विभिन्न कला अनुशासनों के परिप्रेक्ष्य में वे इस चर्चा को बढ़ाते हैं और साहित्य में इस साधन संपन्नता के औचित्यपूर्ण अभिनिवेश को आलोचना का प्रतिमान बनाते हैं। साहित्य में साधन संपन्नता से आशय, अभ्यास संपन्नता, शब्द, भाव, व्याकरण और काव्यशास्त्र संबंधी संपन्नता से ही है। रचनाकार अपनी साहित्यिक साधन संपन्नता के औचित्यपूर्ण प्रयोग के प्रति कितना जागरूक है, यह बात ही उसके मूल्यांकन में उपयोगी है। साहित्यिक संपन्नता के विवेकहीन अभिनिवेश को लक्ष्य करके शुक्ल जी ने लिखा है–"इस साधन संपन्नता पर ही इधर बहुत दिनों से अधिक ध्यान दिया जाने लगा था और मानव हृदय पर इन मनोहारिणी कलाओं के प्रभाव का बहुत कम विचार होने लगा था। काव्य पर शब्दालंकार आदि का इतना बोझ लादा गया उसका सारा रूप ही छिप गया। यदि ये कलाएँ मूर्तिमान रूप धारण करके सामने आतीं तो दिखाई पड़ता कि किसी को जलोदर हुआ है, किसी को फीलपाँव। इनकी दशा सोने और रत्नों से जड़ी गुठली धारदार तलवार की–सी हो गई।"[14]

कहने का अर्थ है कि अपनी साहित्यिक साधन संपन्नता के प्रदर्शन के लिए रचनाकारों ने कलाओं के अभ्यासगम्य और श्रमसाध्य अंगों के अभिनिवेश को अपना प्रधान साध्य बना लिया, और साहित्य में सहृदयता से संबंध रखने वाले अंगों को उपेक्षित करने लगे। साध्य की पूर्णता के स्थान पर वे साधनों की

संपन्नता और उसके प्रदर्शन पर केंद्रित होने लगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि जिनमें यह प्रवृत्ति बढ़ते क्रम में है, उनका साहित्यिक मूल्यांकन घटते क्रम में होगा। अलंकार तभी तक अलंकार है जब तक वह सहजता से काव्य को अलंकृत करे, अपने धर्म को छोड़कर वह खुद ही काव्य बनने का प्रयास करेगा तो साहित्य की हानि ही करेगा।

गोस्वामी तुलसीदास की समालोचना में शुक्ल जी ने अतिशयोक्ति के पीछे भागते रचनाकारों को लक्ष्य किया है। अभिज्ञान शाकुंतलम में शकुंतला का पीछा करते भ्रमर की एक उक्ति कालिदास ने लिखी है। इसी उक्ति को पकड़कर भिखारीदास ने अतिशय करते हुए नायिका के पीछे अतिशय के फेर में पड़कर भ्रमर के साथ– साथ शुक, मयूर और मृग को भी लगा दिया, कविता पर इस साधन संपन्नता का अच्छा बुरा कैसा प्रभाव होगा, इसकी चिंता में वे नहीं पड़े–"हमारे लाला भिखारीदास ने इस उक्ति को पकड़ा और उसके ऊपर भारी–भरकम ढाँचा खड़ा कर दिया।.. ऐसे संकट में पड़ी हुई नायिका शायद ही कहीं दिखाई पड़े। भ्रमरबाधा तक तो कोई चिंता की बात नहीं, पर उनके ऊपर यह शुकबाधा, मयूरबाधा और मृगबाधा देख तो हाथ पर हाथ रखकर बैठे ही रहना पड़ेगा।"[15]

इसी निबंध में शुक्ल जी ने भक्ति का तात्विक विश्लेषण मानव मनोविज्ञान की भूमि पर किया है।वे केवल इतना ही नहीं कहते कि भक्त कवि परंपरा में गोस्वामी तुलसीदास श्रेष्ठ हैं, वे यह भी सिद्ध करते हैं कि तुलसीदास ही श्रेष्ठ क्यों हैं। भक्त की श्रेष्ठता जिन बातों से निर्धारित होती है उनमें से पहली बात है दूसरे के महत्व के साथ अपने लघुत्व की स्वीकृति। तुलसी की विनय पत्रिका इसी स्वीकृति के साक्षात्कार की कृति है।शुक्ल जी ने तो यहाँ तक कहा है कि सारी विनय पत्रिका का विषय राम की बड़ाई और तुलसी की छोटाई है।

दीनता की सच्चाई भक्ति का अनिवार्य अंग है। तुलसी की भक्ति में चातक–मेघ न्याय भी इसी महत्व स्वीकृति का विस्तार है। चातक का प्रेम मेघ के महत्व की आनंदमयी स्वीकृति से उपजा प्रेम है, इसीलिए वह भक्ति के दरजे का प्रेम है।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि भक्त महत्व को स्वीकार करके ही नहीं बैठ जाता, जैसा श्रद्धालु करता है। भक्त महत्व की ओर अग्रसर होता है, अर्थात् अनुकूल वृत्तियों का प्रसार करता है, प्रतिकूल का संकोच। चातक, मेघ के महत्व की ओर अग्रसर होता है, उसका मेघ जीवों के सुख के लिए आत्मत्याग कर सुख मनाता है तो चातक भी बारहों मास मेघों से याचना करता है, अपने लिए नहीं, जगत के लिए तुलसी के राम कोल, भील, किरात, वानर, भल्लूक, छोटे, बड़े, को साथ लेकर चलते हैं तो तुलसी भी समन्वय के अपार धैर्य के साथ भारत के लोकनायक सिद्ध होते हैं।अनुकरण की प्रवृत्ति भक्ति में अंतर्निहित है, श्रद्धा में नहीं। जीवन और जगत में आदर्शों की स्थापना के लिए श्रद्धालुओं के स्थान पर भक्तों की आवश्यकता बराबर बनी रहेगी। शुक्ल जी की यह उद्धरणी यहाँ उल्लेखनीय है–"गुरु गोविंद सिंह को यदि केवल दंडवत् करने वाले और गद्दी पर भेंट चढ़ाने वाले श्रद्धालु ही मिलते, दिन–रात साथ रहने वाले, अपने सारे जीवन को अर्पित करने वाले भक्त न मिलते तो वे अन्याय दमन में कभी समर्थ न होते।"[16]

करुणा शीर्षक निबंध में शुक्ल जी ने सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के प्रसार के लिए करुणा को आवश्यक माना है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जब साहित्य

समाज का दर्पण है तो साहित्य में करुणा का प्रसार कितना महत्वपूर्ण है। जिन रचनाकारों की सृजन प्रक्रिया में करुणा ऐसे सात्विक भाव के प्रसार को अवकाश नहीं मिलता उनकी सामाजिकता और साहित्यिकता दोनों में कसर समझनी चाहिए।

करुणा की प्रतिक्रिया कृतज्ञता या प्रीति के रूप में सामने आती है। कथा साहित्य में अबला नायिका की दुष्ट से रक्षा करने वाले नायक और नायिका के प्रेम की जो रूढ़ि चलन में आई, उसके मूल में करुणा का ही भाव समझना चाहिए।

लज्जा और ग्लानि निबंध में जिस रीति के साथ लज्जा, ग्लानि, संकोच आदि का विश्लेषण किया गया है वह भरत, कैकेयी और राम के चरित्र के प्रति एक नई दृष्टि प्रदान करता है।

परस्पर निकटवर्ती संवेगों तथा उनके अंतर को शुक्ल जी ने घृणा तथा ईर्ष्या निबंध में चिह्नित किया है। संवेगों के बीच के अंतर के उचित विवेक से ही रचनाकार नायक तथा प्रतिनायक की छवि गढ़ सकता है। घृणा निबंध में शुष्कता–रसिकता, दृढ़ता–हठ, धीरता –आलस्य, सहनशीलता–भीरूता, उदारता–फिजूलखर्ची, किफायत–कंजूसी ऐसे संवेगों को एक साथ रखकर यह रेखांकित किया है कि प्रत्येक मनुष्य और परिस्थिति के अनुसार इन संवेगों की सीमाएँ विस्तरित, संकुचित होती रहती हैं। रचनाकार का दायित्व इस रूप में सामने आता है कि उसके नायक को वह इस रूप में सामने लाए कि नायक की धीरता, आलस्य न कहला सके, उसकी किफायत, कंजूसी न कहला सके।

ईर्ष्या, स्पर्धा में भेद करते हुए वे लिखते हैं कि स्पर्धा में अपनी कमी या त्रुटि पर दुःख होता है, दूसरे की संपन्नता पर नहीं। स्पर्धा बिना किसी का नुकसान किए, व्यक्ति की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है।

भय नामक मनोविकार को शुक्ल जी ने दो रूपों में व्यक्ति के शील, सामर्थ्य से जोड़कर दिखाया है। पहले में चेतना की उदात्त भूमि है कि हमसे किसी को भय न हो। भारतीय परंपरा में ऐसे ही नायक को धीरोदात्त कहा गया है जो शक्ति संपन्न होते हुए भी विनयशील हो। दूसरा रूप व्यक्ति के सामर्थ्य से जुड़ा है, पुरुषार्थ से जुड़ा है कि कोई दूसरा उसे भयभीत करने का साहस नहीं कर सके। शील और सामर्थ्य दोनों विशेषकों से संपन्न नायक ही नायकत्व को सही अर्थ देते हैं।

क्रोध की उत्पत्ति दुःख से होती है। यह दुःख दो रूपों में सामने आता है, अपना तथा दूसरे का दुःख। शुक्ल जी ने क्रोध के दूसरे रूप को बुराई से रहित तथा श्रेयस्कर बताया है जो दूसरे के दुःख से उत्पन्न होता है। वे लिखते हैं–"क्रोधोत्तेजक दुःख जितना ही अपने संपर्क से दूर होगा, उतना ही लोक में क्रोध का स्वरूप सुंदर और मनोहर दिखाई देगा।.. जहाँ उक्त भावना निर्विशेष रहेगी वहीं सच्ची परदुःखकातरता मानी जाएगी, वहीं क्रोध के स्वरूप को पूर्ण सौंदर्य प्राप्त होगा– ऐसा सौंदर्य जो काव्य क्षेत्र के बीच भी जगमगाता है।...क्रौंच के वध पर वाल्मीकि मुनि के करुण क्रोध का सौंदर्य एक महाकाव्य का सौंदर्य हुआ।...राम के क्रोध के भीतर संपूर्ण लोक के दुःख का क्षोभ समाया हुआ है।.. राम का कालाग्नि सदृश क्रोध.. सात्विक तेज है; तामस ताप नहीं।"[17]

वाल्मीकि का निषाद के प्रति, राम का खर, दूषण, रावणादि के प्रति और कृष्ण का कंस के प्रति जो क्रोध है वो निजी दुःख या पीड़ा से कहीं अधिक प्राणीमात्र की पीड़ा को

देखकर उपजा क्रोध है, इसीलिए वह सुंदर है। क्रोध के इस सौंदर्य का उद्घाटन और प्रसारण करना साहित्य का काम है। जो साहित्य प्रायः नकारात्मक समझे जाने वाली मनोवृत्तियों के भी ऐसे शुभ्रतम पक्षों को उभारकर सामान्य जन की वृत्तियों का परिष्करण कर सके वही सच्चा साहित्य है।

'कविता क्या है' निबंध को शुक्ल जी का 'मंत्र निबंध' कहा जा सकता है। जैसे छोटे से मंत्र में बड़ी–बड़ी सिद्धियाँ अंतर्निहित रहती हैं, वैसे ही यह अकेला निबंध शुक्ल जी की संपूर्ण समालोचना पद्धति को अपने में समेटे है। इस विशद निबंध में स्थान–स्थान पर उनकी समालोचना पद्धति के सूत्र बिखरे पड़े हैं।कविता का नाम लेकर लिखे गए ये सूत्र साहित्य की सभी विधाओं पर लागू होते हैं।

इस निबंध में कविता की भाषा पर शुक्ल जी ने बड़ी सूक्ष्मता से विचार रखें हैं।शुक्ल जी के शब्दों में कविता की भाषा की एक बड़ी विशेषता है जाति संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप व्यवहार सूचक शब्दों का प्रयोग। ये विशेष रूप सूचक शब्द ही बिम्ब ग्रहण करवाते हैं। भावों के मूर्तिकरण और प्रत्यक्षीकरण में ये ही काम आते हैं।

अत्याचार एक जाति संकेतवाची शब्द है जिसमें मारना, पीटना, डाँटना, लूटना जैसे कई व्यापार हो सकते हैं। रचनाकार के द्वारा यदि अत्याचार शब्द काम में लिया जाता है तो इससे मर्मस्पर्शी प्रभाव नहीं बनता। उत्तम रचनाकार अत्याचार के अंतर्गत गिने जाने वाले व्यापारों में से ऐसे व्यापार को सामने रखते हैं जो सार्वजनिक अनुभव में आता रहता हो, जिसमें मर्म पर प्रभाव डालने की शक्ति हो।

शुक्ल जी ने पत्नी पर अत्याचार करने वाले व्यक्ति को समझाने के लिए 'तुमने उससे विवाह किया है' के स्थान पर 'तुमने उसका हाथ पकड़ा है' का प्रयोग दर्शाया है, और लिखा है–"विवाह शब्द के अंतर्गत न जाने कितने विधि–विधान हैं जो सबके सब एकबारगी मन में आ भी नहीं सकते और उतने व्यंजक या मर्मस्पर्शी भी नहीं होते। अतः कहने वाला उनमें से सबसे अधिक व्यंजक और स्वाभाविक व्यापार 'हाथ पकड़ना' है, जिससे सहारा देने का चित्र सामने आता है, उसे भावना में लाता है।"[18]

शुक्ल जी ने साहित्य की रचना प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण अंतर्वती पड़ताल यहाँ उपस्थित की है। रचना को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए जितनी सजगता अर्थ विचार, और वर्ण विचार के लिए बरती जाती है उतनी ही मर्मस्पशी प्रभाव उत्पन्न करने के लिए जाति सूचक की बजाय रूप व्यवहार सूचक क्रिया व्यापारों पर बरतनी चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास की समीक्षा करते हुए शुक्ल जी ने यही बात दोहरायी है–"कवि लोग अर्थ और वर्ण विन्यास के विचार से जिस प्रकार शब्द शोधन करते हैं, उसी प्रकार अधिक मर्मस्पशी और प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित करने के लिए व्यापारशोधन भी करते हैं। बहुत से व्यापारों में जो व्यापार अधिक प्राकृतिक होने के कारण सामान्यतः हृदय को अधिक स्पर्श करने वाला होता है, भावुक कवि की दृष्टि उसी पर जाती है।"[19]

तुलसीदास ने अपना भक्त सुलभ दैन्य दिखाने के लिए इसीलिएद्वार–द्वार पेट खलाने के दृश्य, डाँट खाने के दृश्य आदि सामने रखें हैं।

मर्मस्पशी प्रभाव उत्पन्न करने में रचनाकार का यह व्यापारशोधन किस तरह काम करता है इसे शुक्लधर्मी समीक्षा से बाहर चलकर देखते हैं। क्या यह सिद्धांत सार्वत्रिक है?

प्रेमचंद ने 'गोदान' में होरी के दैन्य, ग्लानि, क्षोभ, कातरता, अपमान, अपराध–बोध

और विवशता की त्रासदी की व्यंजना के लिए व्यापारशोधन करते हुए बड़ा मार्मिक चित्र दिखाया है। परिस्थिति में जकड़ा हुआ होरी अपनी पुत्री का विवाह पैसे लेकर कर तो देता है परंतु इस घटना की व्याप्ति उसके हृदय पर क्या असर दिखाती है–"होरी ने रुपए लिए, तो उसका हाथ काँप रहा था। उसका सिर ऊपर न उठ सका। मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है।"[20]

नगर के द्वार पर किसी को खड़ा करके थूकते जाने का बिंब ऐसा बिंब है जो अपमान की शत–प्रतिशत संभावना सामने लाता है। प्रत्येक नागरिक उस द्वार से गुजरता है इसका अर्थ है कि होरी बड़े–छोटे, अच्छे–बुरे प्रत्येक आदमी के सामने स्वयं को अपमानित महसूस कर रहा है। तुलसी के द्वार–द्वार पेट खलाने में भी यही बिंब है। कहने का अर्थ है रचनाकार में ऐसे भावपूर्ण बिंब के प्रत्यक्षीकरण का विवेक रचना को सफल बनाता है।

रचना की सफलता के सिद्धांत और रचनाओं के मूल्यांकन की पद्धति दोनों बातें चिंतामणि में शुक्ल जी ने संयोजित की हैं। चिंतामणि के दस मनोविकार संबंधी निबंधों में अंतर्निहित समीक्षा के सूत्र भविष्य की समीक्षा को भी रास्ता दिखाते हैं, यह बात सुखद आशा जगाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र,1935 ई., जायसी ग्रंथावली, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 53, 54

2.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1942 ई., हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 31,32

3. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1950 ई., (लोभ और प्रीति) चिंतामणि, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 89

4. पूर्वोक्त, पृष्ठ 69

5. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र,1935 ई., जायसी ग्रंथावली, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 41, 42

6.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1950 ई., (लोभ और प्रीति) चिंतामणि, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 94

7. पूर्वोक्त, पृष्ठ 77

8. पूर्वोक्त, पृष्ठ 92,93

9. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1950 ई., (भाव या मनोविकार) चिंतामणि, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 3

10. पूर्वोक्त

11. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण–1942 ई. पृष्ठ 172

12. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, गोस्वामी तुलसीदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, 1935 ई.,पृष्ठ 91,92

13. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1950 ई., (उत्साह) चिंतामणि, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 6,7

14.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1950 ई., (श्रद्धा और भक्ति) चिंतामणि, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 23–25

15.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, गोस्वामी तुलसीदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, 1935 ई.,पृष्ठ 116

16.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1950 ई., (श्रद्धा और भक्ति) चिंतामणि, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 34

17.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1950 ई., (क्रोध) चिंतामणि, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 136,137

18.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1950 ई., (क्रोध) चिंतामणि, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग

19. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1935 ई,गोस्वामी तुलसीदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 121

20. प्रेमचंद, 2010 ई., गोदान, नई सदी बुक हाउस, दिल्ली, पृष्ठ 288

❑❑❑

कवि 'निशंक' की रचनाधर्मिता–'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का'

निशा शर्मा

पत्थर, पहाड़ और पानी कभी जीवनदायी बनते हैं तो कभी आपदाओं को लेकर आते हैं। उत्तराखंड राज्य में प्राकृतिक आपदाएँ अपना कहर बरपाने के लिए समय का इंतजार नहीं करती। यहाँ के लोगों की जीवन शैली का आम हिस्सा हो चुकी ये परेशानियाँ उनको पहाड़ जैसा ही मजबूत बना देने का दमखम भी रखती हैं, मजबूती के साथ वे अपने को प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार रखते हैं। पानी की तरह सरल और तरल हृदय में यहाँ का जनमानस मानवता और प्रेम के गीतों का सृजन करता है। पत्थर–पहाड़ की अडिगता को धारण करने वाले यहाँ के कवि डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' देश के लिए अनजाने तो कदापि नहीं हैं। उत्तराखंड राज्य के मुख्यमंत्री पद को तीन बार सुशोभित करने वाले 'निशंक' केंद्र सरकार के कैबिनेट शिक्षामंत्री रहते हुए 'नई शिक्षा नीति 2020' लेकर आए जिसमें नवाचार को अपनाते हुए इस कोविड महामारी के परिवर्तन के दौर में शिक्षा को भारतीय परिवेश में ढालने की कुछ विशेष नीतियों का स्वागत समूचे देश ने किया।

कोविड 19 की चपेट में आकर लंबे समय तक अस्वस्थता के बावजूद उनके अंतर्मन के साहस का परिणाम था कि इसी बीच वे अपने मनोभावों को उकेरते हुए 'मृगतृष्णाः दर्पण अंतर्मन का' जैसा काव्य संग्रह लोकार्पित कर सके।

कवि 'निशंक' की रचनाओं में विविधता है, जनमानस की चेतना का स्वर है, राष्ट्र के प्रति समर्पित भावनाएँ हैं, लोगों की पीड़ा है, मन का द्वंद्व है तो प्रकृति का राग भी है। समयानुकूल त्वरित रचनाएँ देने में वे सदैव तत्पर रहते हैं।

'निशंक' की रचनाओं में बदलाव की इच्छाशक्ति है। उनके गीतों के हर शब्द में जीवन है। उनके गीत निराशा में भी आशा का संचार कर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं।[1]

बात सही भी है कि उनके गीतों के हर शब्द में जीवन है, होना भी चाहिए क्योंकि जीवन गतिशीलता, चेतनता की निशानी है और स्थिर हो जाना जड़ हो जाना है। जब प्रकृति–जड़ नहीं है तो कवि के शब्द जड़ कैसे हो सकते हैं? फिर उत्तराखंड राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले रचनाकार को विरासत में प्रकृति ने सुंदर अनमोल उपहार भेंट किए हैं या यों कहें कि प्रकृति स्वयं ही कवि हृदय में सर्वशक्तिमान रूप में सुरम्य वास करती है। ऊँचे–ऊँचे पर्वत शृंखलाओं के बीच भव्य ललाट वाला हिमालय, अलकनंदा और मंदाकिनी का संगम, बाबा बद्रीनाथ का वरद हस्त तो बाबा केदार धाम का दमकता दरबार, यमुनोत्री, गंगोत्री की शीतल गोद तो गंगा जी की पावन धारा सभी कलुषों को दूर कर देने को उद्धत। कुमाँयु–गढ़वाल की अपनी लोक संस्कृति, धर्म इत्यादि सबकुछ वरणीय,

अतुलनीय, गृहणीय! आखिर कवि हृदय को भला विरक्तता मिलती भी तो कैसे? हिमालय पुत्र 'निशंक' की कविताओं का स्वर इसी आयाम को सजाता, संवारता, सुमेलित करता हुआ गुँजायमान होता है।

असीम और
सुखद् अनुभूतियाँ ही
आनंद को पैदा करती है
और तभी अतुलनीय ऐश्वर्य
धरा पर झरने की तरह
झर–झर झरती हैं।[2]

कवि 'निशंक' असीम और सुखद अनुभूतियों की बात करते हैं, आनंद की बात करते हैं यह अनुभूति, आनंद बिना प्रकृति में रमें नहीं मिल सकता, किसी विराटता का अनुभव किए बिना आनंद का रसपान नहीं हो सकता, कामायनी की अंतिम पंक्तियाँ भी इसी का गुणगान करती हैं–

समरस थे जड़ या चेतन
सुंदर साकार बना था
चेतनताएक विलसती
आनंद अखंड घना था।[3]

पर्वतीय रचनाकारों की जिजीविषा शक्ति हिमालय सदृश्य है। ऊँचे मनोबल, असीम उत्कंठाएँ, संघर्षशील जीवन पद्धति, पलायन का दंश, आपदाओं से भरा संहारक दृश्य, यह सब रचनाकार को यथार्थ की तरफ देखने को बाध्य करती है आखिर वह विमुख भी कैसे हो सकता है, अपनी माटी से कवि 'निशंक' की कविताओं में वहाँ का प्रेम, घर कर चुका है। कवि उसी में रचे–बसे पले–बढ़े हैं।

"हिमालय सभी भारतीयों के मन में बसा ऐसा अभूतपूर्व पर्वत है जिसमें उनकी आशाएँ और विश्वास जुड़े हैं। महाकवि कालिदास से लेकर कवि रमेश पोखरियाल 'निशंक' तक निरंतर उसी हिमालय का गुणगान करते आ रहे हैं और महसूस करते हैं कि भारत के हृदय में बसा हिमालय निरंतर सृजन के लिए प्रेरणा का अविस्मरणीय आधार है।"[4]

प्रेम का स्वरूप बहुलता सृजनात्मक ही होता है। 'वसुधैव कुटुम्बकं' की भावना का पल्लवन भी इसी मानवीय प्रेम के कारण फलीभूत है। कवि 'निशंक' का सद्यः प्रकाशित काव्य संग्रह 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का' जिसमें लगभग 180 कविताएँ विविध भावभंगिमा को धारण किए बाह्य कलेवर में सदैव की भाँति छोटी किंतु भाव अभिव्यंजना में अपनी गहनता और गंभीरता को धारण किए अपने पाठकों से संवाद स्थापित करने में पूर्णतः सक्षम हैं। कवि ने जिसे जिया, भोगा और जिस भी सत्य से उनका सामना हुआ उसी का दर्पण हम पाठकों के सन्मुख है। अत्यंत व्यापक फलक पर उनकी रचनाधर्मिता कविता के रूप में मन की बात कहने को उद्धत है। जीवन बिना शुद्ध आचरण के नैतिकहीन हो जाता है। नैतिकता, व्यक्ति सापेक्ष तो होती ही है वह बड़े पैमाने पर समाज सापेक्ष और राष्ट्र सापेक्ष भी होती है। नैतिक निर्णय जीवन की धुरी होती है। सत्संगत की बात करते हुए कवि 'निशक' लिखते हैं–

अच्छे लोगों का साथ
संकल्प और सिद्धि देता है
औरसन्मार्गों की ओर ले जाना
सिखाता है
बुरे लोगों का साथ तो
इहलोक और परलोक तक
केवल नरक दिखाता है।[5]

भारतीय संस्कृति के पुरोधा रचनाकारों की वाणी की पैरवी करती 'निशंक' की

पंक्तियों का संदेश ग्रहण करने योग्य है। सत्संग की महिमा का गुणगान भक्तिकालीन कवि तुलसीदास, रहीमदास, कबीरदास, मलूकदास आदि के काव्य की शोभा रही है।

बस कुसंग चाहत कुशल, यह रहीम जिय सोच,
महिमा घटी समुद्र की, रावण बसयो परोस।।[6]

कबीरदास जी कहते हैं कि–

कबीर तन पाँखी भया, जहाँ मन तहाँ उड़ि जाय।
जो जैसी संगति करे, सो तैसे फल खाइ।।[7]

इस संग्रह की कविताओं में 'अनंत है यात्रा', 'तेरे चरणों में अर्पित', 'तुम स्वयं ही', 'आषा की मुस्कान', 'लक्ष्य की प्राप्ति', 'संकल्प', 'जीने की स्वतंत्रता', 'अंतःचेतना', 'अंतिम लक्ष्य', 'रिश्तों का अनुबंध', 'अंतिम साधना', 'पीर–पराई' इत्यादि शीर्षक अपने नाम और काम दोनों की साथर्कता को दृष्टव्य कर रहे हैं। कवि 'निशंक' की रचनाधर्मिता में धर्म और नैतिकता अपने नैतिक निर्णय के विविध प्रतिमानों के साथ प्रतीयमान हैं, एच्छिक कर्म, व्यक्तित्व का विधान, प्रज्ञा की बात, सुख– दुःख, कर्म, धर्म और भक्ति का समन्वित रूप अपनी संपूर्णता में मानवीयता का पोषक है। ये कविताएँ व्यक्तिनिष्ठ न होकर समाष्टिगत हैं। प्राणीमात्र की चिंता और मनन है। कवि की यही संकल्पना उन्हें विश्वव्यापी कवि के रूप में प्रतिष्ठित करने में महत है।

विषय की सत्यता को एक दृष्टा और सृष्टा ही अपनी सात्विक वाणी में व्यक्त कर सकता है। जीवन के उतार–चढ़ाव का जो भुक्तभोगी रहा हो वही संघर्ष–साधना में सुपथ का सच्चा साधक है। संकल्प कविता में कवि 'निशंक' के इस दर्शन को बखूबी परखा जा सकता है।

आनंद के समुद्र में लीन
शरीर और संसार का भान
तेरी सारी कुवृत्तियों को
खत्म कर देगा
सदाशयता से तू
सारे जग को अपना बना ले।[8]

'सदाशयता' शब्द अपने आप में जिस अर्थ की प्रतीति करा रहा है उसमें मानवीय मूल्यों की पराकाष्ठा, संवेदना की गहराई और कवि व पाठक की साधारणीकरण अनुभूतियों की परिणति को मूर्त कर देती है। सत्य को जानने वाला अर्थात् परमात्मा सत्य को जानने वाली आत्मा दोनों का समागम अद्वैत है।

समाज के सर्वोदय में पुरुषार्थी व्यक्तित्व सतत कर्मशील रहते हुए अपने कर्तव्य को प्राथमिकता देता है। वह कर्तव्य निचले स्तर पर रहने वाले मानव प्रेम से लेकर अखिल भूखंड के समस्त अणुओं के प्रति है। क्या स्वयं, क्या परिवार, क्या समाज, क्या राष्ट्र। उसके लिए तो पूरा ब्रह्मांड ही ब्रह्मास्मि है। कर्म–कर्तव्य, सद्भाव, संस्कार, संस्कृति का क्रिया व्यापार, आदि–अनंत की खोज में निरत कवि मन अनंत शांति की कामना करता है।

वह सुख रूपी पुरुषार्थ के लिए
शांति की खोज कर रहा है
यह यात्रा उसकी अदृश्य और अंत है।[9]

जीवन के शाश्वत लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समय के साथ कदमताल करना ही होता है, नियति को कोसने के बजाय अपने हस्तकर्म पर विश्वास करना होगा। आपा–धापी भरी जिंदगी में कुंठा, निराशा, घुटन, संत्रास का आना स्वाभाविक है किंतु शुभ संकल्पों द्वारा

मन को कलुषहीन करते हुए उत्साह और उमंग की लहर को तरंगित करते रहना लक्ष्य की तरफ कदम बढ़ाना होता है, सकारात्मक सोच से विषम परिस्थितियों को मात दी जा सकती है। दृढ़ संकल्पित मन अपने लक्ष्य को एकलव्य और अर्जुन की भाँति साधता है। कवि 'निशंक' के शब्द जीवन संदेश दे रहे हैं, मानव को सन्मार्ग दिखाने को तत्पर कवि की उपदेशात्मक पंक्तियों में जीवन का सार तत्व है।

संभव हो तो खोजलोस्वयं को
पीर पराई की गहन सिसकियों में
दूसरों के पाँवों के रिसते हुए छालों में....
संभव हो तो ढूँढ़ लोजीवन के पूरे सत्य
आधे और अधूरेलोगों की व्यथा–कथाओं में।[10]

अपनी शारीरिक और बौद्धिक क्षमता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने की ओर उन्मुख होता है। उसकी कार्यक्षमता पर संभव–असंभव का प्रश्न भी खड़ा होता है। दक्षता का प्रमाण कार्य की सफलता पर निर्भर होता है। नियतिवाद–अनियतवाद, देववाद–भाग्यवाद मनुष्य मन में उपजने वाला स्वातंत्र्य बुलबुलों का विकल्प है जिसमें ज्ञान और उद्देश्य का महत्व बना रहता है। पश्चिमी विचारधारा के विद्वान 'सिजविक' सुख को वांछनीय अनुभूति मानते हैं "सुख वह भावना है जिसे बुद्धिशील प्राणी अनुभव करने पर कम से कम निहित रूप से वंदनीय समझते हैं और अन्य भावनाओं की तुलना में वरीय मानते हैं"।[11]

कवि रमेश पोखरियाल 'निशंक' की अनेक रचनाएँ इसी वंदनीय अनुभूति का दिग्दर्शन कराती हैं इसी सुख की खोज कराती हैं, जीवन की सार्थकता इसी अनुभूति में है जिसे निरापद रूप से स्वीकार करना मानव की श्रेष्ठ प्राप्ति है 'जीवन' कवितामें इसी का स्वरूप दृष्टव्य है–

सुख और शांति की खोजका नाम ही जीवन है
किसी न किसी कर्म मेंजुड़ा हुआ हर एक मन है
सदइच्छा सुख का अनुगमन करती है।[12]

कवि 'निशंक' जी का काव्य संग्रह 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का' आद्यांत अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि जीवन का कोई भी क्षेत्र, पुरुषार्थ से लेकर अध्यात्म तक, दृष्टि से लेकर दर्शन तक प्रत्येक पहलू को कहीं संदेशात्मक तो कहीं उपदेशात्मक, कहीं व्यावहारिक तो कहीं मनसा वाचा, कर्मणा की त्रिवेणी की रसमयता, प्रकृति के उपादानों में समरसता लाने का सफल प्रयास कवि की लेखनी द्वारा हुआ है। आशा की गठरी तो निराशा का बोझ, सत्य का सत्कार तो असत्य को रौंदने का साहस, कर्तव्य की उन्मुखता तो अधिकारों की माँग, उदासी और उदासीनता की अवहेलना तो उम्मीदों के उजाले का स्वागत, नए रूप में संसार को निहारने की लालसा लिए ये कविताएँ भावों के सौंदर्य से निहित उच्च आदर्श की प्रतिष्ठा की संवाहिका हैं। भारतीय जीवन शैली और आत्मिक परिवेश में पले–बढ़े मानव की सभ्यता और संस्कृति का उद्घोष हैं। युवा मन को झकझोरती, कर्तव्यपथ पर अडिगता का आह्वान करती ये कविताएँ उड़ान भरने में सक्षम हैं और समर्थ हैं। हमारे बड़े बुजुर्गों को सुख–शांति देने में जो समय की धार पर आगे बढ़ चुके हैं उन्हें

संतोष देती ये कविताएँ इहलौकिक और पारलौकिक दोनों का आनंद देती हैं। "असीम और सुखद अनुभूतियाँ ही आनंद को पैदा करती है।"[13]

आस्था और विश्वास से उत्पन्न होने वाला यह आनंद सार्वभौमिक सत्ता के अस्तित्व का आभास देता है। कवि को भरोसा है कि वह अकेला नहीं है। जीवन में मधुर बयार लाने वाले परमेश्वर पर कवि की श्रद्धा है। अपने आपको ईश्वर के समीप्य पाकर उसमें उम्मीद की किरण का प्रस्फुटन होना स्वाभाविक भी है–

जरूर कोई तो बात है
यदि कोई नहीं
पर भगवान तो साथ है।[14]

इन पंक्तियों में कवि का विश्वास अपने आराध्य पर अडिग है इसलिए वह विषम परिस्थितियों में भी विचलित नहीं हो सकते। भगवान का साथ होना कवि को आत्म–विश्वासी बनाता है।

यह काव्य–संग्रह वास्तव में एक दर्पण ही है जिसमें सबकुछ वैसा ही दिखता है वह जैसा है। जो घटित हो रहा है वह सत्य का अक्श साफ नज़र आता है। शुभआकांक्षाओं को लिए हुए रचनाकार परत दर परत पड़े, हुए विसंगतियों के रूप को अंतर्मन के दर्पण पर दिखाने में सक्षम–सफल हैं। मानव मन को हीनता की खाई में ढकेलने वाले, द्वेष भावना पैदा करने वाले, निंदा–लालच, अत्याचर, दुराचार के गर्त में फँसे मानव को उबारने में कवि 'निशंक' की रचनाएँ श्रेष्ठ हैं। जीवन–जगत की पूर्णता प्रकृति और मानव की सहचरी ये रचनाएँ कवि 'निशंक' के मानसिक संवेगों की प्रतिपुष्टि हैं।

भाषा की सहजता और सरलता ऐसी है कि समझने के लिए बुद्धि को कसरत करने की आवश्यकता नहीं। पर भावों की गहनता और गंभीरता को आत्मसात् करने के लिए बुद्धि से परे कदापि नहीं जाया जा सकता। चिंतन–मनन और अनुगमन की कविताएँ कवि को रचना संसार में अग्रणी पंक्ति में खड़ा करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', ए वतन तेरे लिए, विनसर पब्लिशिंग कंपनी, देहरादून, आवरण पृष्ठ (पीछे)
2. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का', अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 67
3. जयशंकर प्रसाद, कामायनी (अंतिम पंक्तियाँ)
4. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ए वतन तेरे लिए, विनसर पब्लिशिंग कंपनी, देहरादून आवरण, पृष्ठ (पीछे)
5. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का', अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 201
6. देशराज सिंह भाटी, रहीम ग्रंथावली, नमन प्रकाशन साहित्यागार, पृष्ठ 138
7. श्याम सुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, प्रकाशन साहित्यागार, पृष्ठ 112
8. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का', अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 47
9. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का', अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 27

10. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का', अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 206

11. डॉ. वेद प्रकाश वर्मा, नीति शास्त्र के मूल सिद्धांत, एलाइड पब्लिसर्स लिमिटेड, पृष्ठ 85

12. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का', अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 61

13. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का', अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 67

14. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का', अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 13

❑❑❑

हिंदी का वैश्विक शिक्षण : कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न

मीरा सरीन

हिंदी भाषा की अंतरराष्ट्रीय भूमिका और विश्व में हिंदी भाषा के महत्व, प्रचार–प्रसार पर हिंदी–जगत में बराबर चर्चा होती रही है। विश्व के लगभग 160 से अधिक देशों के राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में आज हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन हो रहा है। विदेशों के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा के केंद्र बन गए हैं। इतना ही नहीं वैश्विक स्तर पर भी हिंदी भाषा प्रयोग की आवश्यकता, व्यवस्था, प्रचार–प्रसार में बहुत तेजी से परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। बदलती आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने भाषा, कला ज्ञान और संस्कृति के विभिन्न पक्षों को पूरी तरह से प्रभावित किया है। एक उदाहरण द्वारा इसे देखा सकते हैं। एन.एस.एल.आई. (नेशनल सिक्योरिटी लैंग्वेज इनिशिएटिव)के अधीन कुछ भाषाओं को अमरीका की सुरक्षा और समृद्धि की दृष्टि से क्रिटिकल माना गया है। हिंदी भी इन्हीं क्रिटिकल भाषाओं की सूची में शामिल है क्योंकि यह अमरीका की वर्तमान और भावी आर्थिक समृद्धि के लिए एक महत्वूपर्ण भाषा समझी जा रही है। इतना ही नहीं, वहाँ रहने वाले अप्रवासी समुदाय भी अपनी हैरिटेज की पहचान बनाए रखने के लिए हिंदी भाषा सीख रहे हैं। आज हिंदी सीखने के कारण पारिवारिक या भारतीय पहचान तक सीमित नहीं रहे अपितु कई कैरियर और पेशों के साथ जुड़ गए हैं, अर्थात् हिंदी जानने के आर्थिक लाभ भी उभरकर आ रहे हैं।[1]

आज हिंदी भाषा के प्रयोग का फलक पूरी तरह से अक्षेत्रीय हो चुका है। कक्षाओं में भले ही यह पढ़ाया जाए कि हिंदी अमुख–अमुख प्रदेश/क्षेत्र की भाषा है, परंतु इसके प्रयोग का क्षेत्र अब वैश्विक स्तर पर प्रचारित–प्रसारित हो चुका है। हिंदी भाषा का एक आयाम क्षेत्रीय है तो दूसरा अखिल भारतीय, तीसरा उन रचनाकारों द्वारा निर्मित जहाँ हिंदी–भाषी–जन उपनिवेश काल में भारत से जबरन ले जाकर बसा दिए गए थे (विशेष अध्ययन के लिए पढ़िए, प्रवासी जगत पत्रिका खंड–1, अंक–1–2, 2018, कें.हिं.सं., आगरा)। चौथा आयाम उस पीढ़ी द्वारा निर्मित है जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यूरोप तथा अन्य महाद्वीपों में अपनी इच्छा से जा बसे। इन सबसे हटकर हिंदी का एक और वैश्विक आयाम विकसित हो चुका है और शायद वह सबसे महत्वपूर्ण भी है। वह है केंद्रीय हिंदी संस्थान का अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग, जहाँ प्रतिवर्ष लगभग पच्चीस से तीस देशों के छात्र हिंदी भाषा, साहित्य और भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने हेतु आते हैं। विशिष्टता इस बात की है कि एक ही कक्षा में लगभग 15–16 देशों के छात्रों का एक साथ हिंदी का शिक्षण प्राप्त करना (भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं कलाओं–नृत्य, संगीत, वादन, योग, ज्योतिष विद्या आदि)। आइए देखें यहाँ (केंद्रीय हिंदी संस्थान में) कौन–सी हिंदी का एक अलग रूप विकसित हो रहा है जिसे उक्त हिंदी के विभिन्न रूपों से हम

बिल्कुल भिन्न पाते हैं अर्थात् (1) कक्षा शिक्षण पद्धति, (2) छात्रों का स्तर निर्धारण परीक्षण (3) पाठ्यक्रम।

आज आवश्यकता है वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा के सर्वेक्षण की जिसके अंतर्गत प्रत्येक देश के विश्वविद्यालयों/दूतावासों/मंदिरों एवं अन्य संस्थाओं से हिंदी भाषा शिक्षण की स्थिति एवं स्तर की जानकारी हासिल की जाए।

हिंदी शिक्षण और संस्थान की परियोजना

हिंदी के इस बढ़ते हुए महत्व को दृष्टि में रखते हुए संस्थान प्रारंभ से ही विदेशियों के लिए हिंदी शिक्षण पाठ्यक्रम चलाने के लिए कटिबद्ध रहा है। सन् 70 के दशक में जब संस्थान में कोई व्यवस्थित पाठ्यक्रम नहीं था, उस समय भी विदेशी विद्वान अपनी ओर से संस्थान के दिल्ली केंद्र पर आते रहे हैं।[2] संस्थान के लिए यह गर्व का विषय है कि सन् 71–72 के दशक में जब भारत सरकार की प्रसार योजना के अंतर्गत छात्रवृत्ति पर आने वाले प्रतिभागी हिंदी भाषा अध्ययन के लिए आगरा आते थे और स्वावित्त पोषित छात्र दिल्ली केंद्र में हिंदी का शिक्षण प्राप्त करते थे। पिछले लगभग सैंतालीस वर्षों में विश्व के लगभग अस्सी देशों से अब तक लगभग 5000 छात्र, संस्थान से हिंदी भाषा का अध्ययन कर अपने–अपने देशों में कार्यरत हैं। इतना ही नहीं, संस्थान से हिंदी का शिक्षण प्राप्त करने वाले हिंदी के इन छात्रों ने अपने–अपने देशों में हिंदी के प्रसार में योगदान भी दिया है। विश्व स्तर पर भी हिंदी शिक्षण से जुड़े विभिन्न कार्यक्रमों में संस्थान का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग–एक परिचय

इस प्रकार संस्थान अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रचार–प्रसार, अध्ययन–अध्यापन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता चला आ रहा है। इसी की एक कड़ी के रूप में केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा का अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग है। जहाँ प्रतिवर्ष विश्व के कोने–कोने से छात्र–छात्राएँ हिंदी भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिए आते हैं। इन छात्रों के लिए विभाग चार अनुस्तरित पाठ्यक्रम चलाता है जो इस प्रकार हैं–

1. हिंदी भाषा दक्षता प्रमाण–पत्र (कक्षा–100)
2. हिंदी भाषा दक्षता डिप्लोमा (कक्षा–200)
3. हिंदी भाषा दक्षता उच्च डिप्लोमा (कक्षा–300)
4. हिंदी स्नातकोत्तर डिप्लोमा (कक्षा–400)

उपर्युक्त पाठ्यक्रम के अंतर्गत निम्नलिखित आयाम हैं जिसके आधार पर सत्रीय पाठ्यक्रम चलता है।

मौखिक–स्तर निर्धारण परीक्षण

लिखित–कक्षा शिक्षण

परीक्षा–आंतरिक एवं वार्षिक

प्रस्तुत प्रपत्र विदेशी छात्रों की कक्षा शिक्षण संबंधी विशेष संदर्भ 'मौखिक अभिव्यक्ति', पाठ्यक्रम 100, प्रश्न पत्र–प्रथम, कुछ मूलभूत वैश्विक स्तर पर उच्चारण संबंधी समस्याओं एवं उनके समाधान से जुड़ा है। प्रपत्र में छात्रों के स्तर निर्धारण परीक्षण (मौखिक एवं लिखित) से लेकर उच्चारण

शिक्षण संबंधी अनेक समस्याओं एवं कुछ सीमा तक उनका समाधान इस आलेख का प्रमुख उद्देश्य है।

भाषा शिक्षण प्रक्रिया कुछ प्रश्न?

विदेश में हिंदी/विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का शिक्षण प्राप्त करने वाले छात्रों की स्थिति को जानने के लिए सर्वप्रथम निम्नलिखित स्तरों पर उसकी जाँच करनी होगी–

1. उस देश (विदेश) में हिंदी भाषा का व्यावहारिक प्रयोग।

2. मंदिरों, मदरसों एवं घरों में हिंदी की पढ़ाई (अध्यापन) की व्यवस्था।

3. दूतावास और हिंदी शिक्षण।

4. सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थानों में भाषा अध्ययन–अध्यापन की स्थिति।

5. साहित्य सृजन का स्तर।

6. युवा पीढ़ी में हिंदी का प्रयोग।

7. राजनीतिक स्तर पर पारस्परिक (दो देशों के बीच) सौहार्द्र की स्थिति।

8. प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रयोग आदि।

कक्षा शिक्षण पूर्व की रूपरेखा

कक्षा शिक्षण पूर्व इन छात्रों का स्तर निर्धारण परीक्षण लिया जाता है जिसके अंतर्गत छात्रों की मौखिक और लिखित परीक्षा (परिशिष्ट–1 परीक्षण प्रारूप) ली जाती है। परीक्षा से प्राप्त परिणाम के आधार पर छात्र की योग्यता के स्तर के अनुकूल कक्षा आवंटित की जाती है।

विश्व के लगभग 165 से अधिक संस्थानों/वि.वि. में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन–अध्यापन हो रहा है। इन संस्थानों/वि.वि. में हिंदी शिक्षण कार्यक्रमों के विभिन्न आयामों में काफी असमानता है। ज्यादातर देशों में हिंदी विश्वविद्यालय स्तर से प्रारंभ होती है। अधिकांश छात्र एक समय में दो–तीन विदेशी भाषाएँ सीखते हैं। छात्रों को इतना समय नहीं मिलता कि वे अपने–अपने देशों में हिंदी भाषा का सामान्य ज्ञान सहजता से प्राप्त कर सकें।

एक अन्य कारण है– कुछ देश ऐसे भी हैं (म्यांमार, अफगानिस्तान, चाड, जार्जिया आदि) जहाँ मंदिर, मदरसा, दूतावास एवं वैयक्तिक प्रयास से छात्र हिंदी सीख रहे हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सभी देशों में हिंदी की स्थिति, अध्ययन–अध्यापन व्यवस्था, पाठ्य सामग्री, शिक्षण अवधि, पाठ्यक्रम स्तर, अध्यापक (भारतीय मूल के, विदेशी अध्यापकीय स्तर) छात्र उद्देश्य, शिक्षण माध्यम विधि (अनुवाद, प्रत्यक्ष, अंग्रेजी) आदि में भिन्नता है। इन समग्र विविधताओं के मध्य उठने वाली अनेक शिक्षण समस्याओं का सामना (एक ही कक्षा में 23 देशों के छात्र हैं) अध्यापकों/छात्रों को करना पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि इतनी विविधताओं के मध्य छात्र हिंदी सीखता है जो एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। शिक्षण की यह विविधता एवं विशिष्टता केंद्रीय हिंदी संस्थान में ही देखने को मिलेगी।

उपर्युक्त शिक्षण संबंधी समग्र विविधताओं की विस्तृत जानकारी छात्रों की मौखिक एवं लिखित परीक्षा (कक्षा शिक्षण पूर्व की जाती है) से प्राप्त की जाती है। स्तर निर्धारण परीक्षण के अवसर पर अध्यापक द्वारा पूछे गए प्रश्नों और उनसे प्राप्त उत्तर कक्षा शिक्षण की बहुत–सी समस्याओं का हल कर देते हैं। मौखिक एवं लिखित परीक्षा नमूना परिशिष्ट भाग–1 में प्रस्तुत है। मौखिक परीक्षा से प्राप्त सूचनाओं को कक्षाध्यापन में, कुछ सीमा तक पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर कक्षा शिक्षण को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है।

हिंदी कनाडा के स्कूलों में नियमित पाठ्यक्रम में नहीं पढ़ाई जाती है। 'हिंदी पाठ्यक्रम में हैरिटेज क्लास' जहाँ–

1. हिंदी नियमित पाठ्यक्रम में नहीं है। हिंदी 'हैरिटेज क्लास' के तौर पर पढ़ाई जाती है।

2. प्रारंभिक शिक्षा के रूप में हिंदी 'हैरिटेज क्लास' के रूप में पढ़ाई जाती है।

3. कक्षाएँ शनिवार को स्कूल के बाद सप्ताह में एक दिन होती हैं।

4. ये कक्षाएँ खुली कक्षाएँ हैं जो एक ही स्तर पर चलती हैं।

5. छात्र अपने पुराने स्तर से आगे नहीं बढ़ पाते (विभिन्न देशों में)।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि विदेशों में हिंदी शिक्षण की स्थिति में अत्यधिक भिन्नता है। इन देशों से आने वाला छात्र मुश्किल से वर्णमाला से परिचित होता है। अर्थात् इतनी स्तरगत वैविध्यता के मध्य छात्र एक बैनर के नीचे हिंदी का शिक्षण प्राप्त करता है।

छात्रों के संदर्भ में एक दूसरे पहलू पर भी विचार करना आवश्यक होगा अर्थात् हिंदी कौन छात्र पढ़ते हैं, क्यों पढ़ते हैं? उन देशों में हिंदी का भविष्य क्या है? इन सभी बिंदुओं के मद्देनजर कक्षा शिक्षण योजना तैयार करनी होगी।

कक्षा शिक्षण कुछ महत्वपूर्ण पहलू

वर्ष 2018–2019 में तेईस देशों के छात्रों ने संस्थान में प्रवेश लिया है। इनके अपने–अपने देश में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, प्रयोजनपरक एवं प्रशासनिक गतिविधियों की दृष्टि से निश्चित ही वैविध्यता होगी। यह परीक्षण सही अर्थों में उनके भाषाई कौशल एवं भाषा दक्षता परीक्षण का जायजा लेगा। निष्कर्ष निकलकर आता है, साथ ही अनेक प्रश्न भी उठते हैं– छात्र हिंदी क्यों सीखना चाहता है– (यह एक प्रश्न ही समग्र शिक्षण पद्धति का आधार बिंदु है, जिस पर कक्षा शिक्षण की समग्र भूमिका बनाई जा सकती है)

1. व्यापार एवं विशिष्ट प्रयोजन हेतु?

2. भारतीय संस्कृति

3. बोलचाल की भाषा

4. भारतीय साहित्य और अनुसंधान

5. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विषय विशेष/भाषा की जानकारी आदि।

6. भारत भ्रमण

7. अन्य

कक्षा शिक्षण के संदर्भ में जो प्रमुख मुद्दे भारत में विदेशी छात्रों को हिंदी शिक्षण के लिए उलझाए हुए हैं, उनमें प्रमुख हैं–

1. एक ही कक्षा (प्रारंभिक स्तर) में वर्तमान में चौदह देशों के छात्रों का एक साथ शिक्षण।

2. स्तरगत एवं उद्देश्यगत भिन्नता।

3. अंग्रेजी भाषा का कुछ देशों के छात्रों को ज्ञान न होना।

4. कुछ देश जैसे कैमरून, वियतनाम जहाँ के छात्र पहली बार संस्थान आकर हिंदी वर्णमाला से रूबरू होते हैं।

5. कुछ देश जैसे– चाड, अफगानिस्तान आदि देशों में हिंदी शिक्षण की कोई अच्छी व्यवस्था नहीं है।

6. उपर्युक्त देशों की अपेक्षा पोलैंड, रूस, रोमानिया, आर्मेनिया, अमेरिका, बल्गारिया आदि देशों में हिंदी की पढ़ाई विश्वविद्यालयी स्तर पर हो रही है और छात्रों का स्तर अन्य देशों की अपेक्षा स्तरीय है।

7. यदि अप्रवासी देशों के छात्रों की बात करें तो मॉरिशस की अपेक्षा अन्य अप्रवासी देशों विशेषकर गयाना, सूरीनाम एवं त्रिनिदाद टुबैगो के छात्र हिंदी भाषा में अत्यधिक कमजोर हैं।

इस प्रकार के अनगिनत उदाहरण विदेशों में हिंदी शिक्षण के संदर्भ में देखे जा सकते हैं। इसके लिए आवश्यक होगा विश्व स्तर पर हिंदी का बाजार कहाँ–कहाँ है इसका सर्वेक्षण किया जाए तभी शायद एक अध्यापक के रूप में कक्षा शिक्षण को बेहतर बनाया जा सकता है।

प्रश्न उठता है कि भाषा शिक्षण के किस चरण पर कौन सा स्रोत चुना जाए। स्रोत का चरण छात्रों की जानकारी के स्तर पर ही निर्भर करता है। स्पष्ट है कि प्रारंभिक चरण में हिंदी की ध्वनियों से परिचय पर ध्यान दिया जाए।

किसी भी भाषा को सीखने की प्रक्रिया में उस भाषा की ध्वनियों को सुनकर समझना प्रारंभिक सोपान है। छात्र को ध्वनियों को सुनने, समझने, पहचानने तथा उनका अर्थग्रहण करने का अभ्यास कराया जाता है। सफल मौखिक अभिव्यक्ति के लिए सही–सही सुनकर समझना आवश्यक है। इस कुशलता के बाद ही ध्वनियों के उच्चारण एवं भावों तथा विचारों की मौखिक अभिव्यक्ति को सुचारू रूप से व्यवस्थित किया जा सकता है। इसके लिए उच्चारण शिक्षण एवं अभ्यास पहली सीढ़ी है। प्रायः देखा गया है कि विभिन्न देशों के हिंदी पढ़ने वाले छात्र व्याकरण की अच्छी जानकारी रखते हैं, लिखना भी सीख लेते हैं लेकिन बोलने के अभ्यास के अभाव में उनका उच्चारण स्पष्ट नहीं होता। इसका मूलभूत कारण है छात्र का भाषाई एवं सांस्कृतिक परिवेश।

उच्चारण शिक्षण– उच्चारण शिक्षण के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है अध्यापक को अन्य भाषा शिक्षण की जानकारी। अध्यापक अन्य भाषा की ध्वनियों तथा उस भाषा की प्रकृति से परिचित हो। प्रत्येक भाषा परिवार की अपनी एक भाषाई व्यवस्था है। इसके लिए आवश्यक होगा उस भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का एक समेकित ध्वनि चार्ट उस भाषा के छात्र की सहायता से अध्यापक तैयार कर सरलता से उसकी (छात्र) उच्चारण संबंधी समस्या को समझकर उसका निदान कुछ सीमा तक कर सकता है। ध्वनि चार्ट तैयार करने के निम्नलिखित आधार हो सकते हैं–

(क) नवीन ध्वनियों का चयन– जो छात्र की स्रोत भाषा में नहीं हैं।

(ख) समस्यापूर्ण ध्वनियाँ– जो ध्वनियाँ नई तो हैं लेकिन अभ्यास द्वारा सीखना असंभव है। जैसे मूर्धन्य ध्वनियाँ ट, ठ, ड, ढ, एवं ढ़, ड़, ण, ञ आदि।

(ग) समान ध्वनियाँ– स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में समान हैं।

(घ) अर्धसमान ध्वनियाँ– रूप की दृष्टि से समान लेकिन उच्चारण थोड़ा भिन्न।

(च) महाप्राण ध्वनियाँ– महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण लगभग सभी विदेशी भाषाओं के छात्रों के लिए मुश्किल है। ज्यादातर विदेशी भाषाओं में महाप्राण ध्वनियाँ नहीं है। लेकिन छात्र अभ्यास द्वारा उन्हें सीख लेते हैं। कुछ अपवाद देश जैसे कैमरून, चाड, टर्की आदि देशों के छात्रों के लिए महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण असंभव–सा है।

(छ) उच्चारणगत समानता लेकिन वितरण में भिन्नता– अर्थात् शब्द की विभिन्न स्थितियों में ध्वनियों के उच्चारण का क्या क्रम है?

(ज) वितरणगत भिन्नता

अन्य भाषा और मातृभाषा में कुछ ध्वनियाँ समान रूप से पाई जाती हैं परंतु वे पूर्णतः समान नहीं हो सकतीं। यह भी संभव है कि मातृभाषा और अन्यभाषा की कुछ ध्वनियों के उच्चारण में समानता हो परंतु वितरणगत भिन्नता हो। प्रत्येक भाषा, भाषा परिवार की दृष्टि से अलग–अलग है। उदाहरण– जापानी भाषा में ण्, ड्, और ञ् ध्वनि शब्द के प्रारंभ में नहीं है। इसी प्रकार थाई भाषा में 'त' ध्वनि शब्द के प्रारंभ और मध्य में 'द' उच्चरित होती है और अंत में 'त' ही उच्चरित है जैसे–

तराजू– दराजू

अंतर– अंदर

इस प्रकार छात्रों की उच्चारण संबंधी समस्याओं को चिह्नित करने एवं एक ध्वनि चार्ट तैयार करने हेतु जो आधार बिंदु निर्धारित किए गए हैं, वे वास्तव में कक्षा शिक्षण के दौरान (1) छात्र द्वारा पाठ वाचन (कहानी, कविता, चुटकुले आदि), (2) छात्रों द्वारा कक्षा में मौखिक प्रस्तुति (विषय–आपकी दिनचर्या, फलवाले से बातचीत, रेलवे स्टेशनपर टिकट बुकिंग, डॉक्टर से बातचीत, भारतीय खाना, आपके देश का मौसम आदि) द्वारा किए गए हैं। (3) शब्द एवं वाक्य स्तर पर वाचन द्वारा, (4) सामूहिक बातचीत/विचार–विमर्श आदि।

उपर्युक्त पाठ्यसामग्री द्वारा उच्चारण शिक्षण हेतु शिक्षण बिंदुओं को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक शिक्षण बिंदु पर विस्तार से विवेचन आगे के पृष्ठों में देखिए–

1. सार्वभौमिक समस्या

यहाँ हम उन्हीं ध्वनियों का उल्लेख कर रहें हैं जो सामान्य रूप से ज्यादातर देशों के छात्रों की भाषाओं में नहीं हैं, और छात्रों को इनके उच्चारण और वाचन में कठिनाई होती है। इसीलिए इन ध्वनियों को सार्वभौमिक समस्या के अंतर्गत रखा गया है, एक–दो अपवाद अवश्य हो सकते हैं।

(1) मूर्धन्य ध्वनियाँ– ट, ठ, ड, ढ आदि।

(2) महाप्राण ध्वनियाँ– फ, भ, ख, घ, थ, ध आदि।

(3) नासिक्य व्यंजन– ण, ञ, ङ आदि

(4) संयुक्त व्यंजन– क्ष, त्र, ज्ञ, श्र

(5) र और ल– की समस्या

(6) बड़े–बड़े शब्द– आवश्यकता, अंतरराष्ट्रीय आदि।

(7) ष, श, स – के अंतर की समस्या

(8) ढ़, ड़– के उच्चारण की समस्या

उपर्युक्त प्रत्येक शिक्षण बिंदु को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाएगा। छात्र किस प्रकार अमुक–अमुक ध्वनियों का उच्चारण करने में त्रुटि करते हैं,

जैसे– मूर्धन्य ध्वनि– टमाटर–तमातर (ट को त)

ठहरो – तहरो, थहरो (ठ को, त, थ)

लड्डू – लद्दू (ड को द)

बुड्ढा – बुद्दा (ढ़ को द)

महाप्राण ध्वनि– भाभी–बाबी (भ को ब)

घर – गर (घ को ग)

खरगोश – करगोश (ख को क)

इधर– इदर (ध को द)

टिप्पणी– महाप्राण ध्वनियों के उच्चारण में विशेष समस्या कैमरून (फ्रेंचभाषी), चाड (अरबी भाषी) और टर्की (टर्किश भाषी) छात्रों को होती है। अन्य देशों के छात्र जिसका

संकेत ऊपर किया जा चुका है, वे छात्र अभ्यास द्वारा सीख लेते हैं।

मूर्धन्य ध्वनि— ड, ढ— इस ध्वनि का उच्चारण छात्र द, ध तथा द, द प्रायः सभी विदेशी छात्र (ट्रिनीडाड, गयाना, रूस, वियतनाम, लिथुआनिया, मंगोलिया, थाईलैंड, पोलैंड, चाड, आदि देश) करते हैं क्योंकि ड, ढ ध्वनि का इन देशों की भाषाओं में अभाव है।

उदाहरण— बुड्ढा — बुद्दा (ड, ढ का उच्चारण 'द')

लड्डू — लद्दू (ड का उच्चारण द)

बुड्ढा — बुद्धा (ड, ढ का उच्चारण द, ध)

टिप्पणी— ड, ढ मूर्धन्य ध्वनि की यह विशेषता है, जहाँ अन्य ध्वनियों को छात्र अभ्यास एवं परिश्रम द्वारा सीखने का प्रयास करते हैं लेकिन ड, ढ का सही उच्चारण प्रायः सभी देशों के छात्रों के लिए असंभव–सा है।

ड़, ढ़ मूर्धन्य ध्वनि का उच्चरण 'र' (वत्र्स्य) की तरह प्रायः सभी विदेशी छात्र (ट्रिनीडाड, गयाना, टर्की मंगोलिया, चाड, कैमरून आदि देश) करते हैं। यह ध्वनि (ड़, ढ़) इन देशों की भाषाओं में नहीं है— उदाहरण देखिए—

नाड़ा — नारा (ड़ का उच्चारण 'र')

पढ़ — पर (ढ़ का उच्चारण 'र')

बड़ा — बरा (ड़ का उच्चारण 'र')

घोड़ा — कोरा (ड़ का उच्चारण 'र')

'र' और 'ल' (वत्सर्य) ध्वनि की समस्या— थाई और जापानी भाषा में 'र' और 'ल' इन दो ध्वनियों के उच्चारण में विशेष कठिनाई है। थाई भाषा में दोनों अर्थभेदक ध्वनियाँ हैं। छात्र 'र' और 'ल' में इस प्रकार की गलती करते हैं—

उदाहरण–1 — देकर — देकल (यहाँ 'र' ध्वनि 'ल' हो गई)

रह— लह (यहाँ 'र' ध्वनि 'ल' हो गई)

उदाहरण–2 — थाई भाषा में अंत्य स्थिति में 'ल' ध्वनि 'न' के रूप में उच्चरित है—

जंगल–जंगन (अंत्य 'ल' ध्वनि 'न' हो गई)

वैशाल–वैशान (अंत्य 'ल' ध्वनि 'न' हो गई)

कर— कन (अंत्य 'र' ध्वनि 'न' हो गई)

प्रण — प्रन (अंत्य 'ण' ध्वनि 'न' हो गई)

लेकिन दीर्घ 'ला' का उच्चारण छात्र सहजता से करते हैं। जैसे—

घरवाला — घरवाला (सही उच्चारण है।)

जापानी भाषा में 'र', 'ल' और 'ड़' इन तीनों ध्वनियों के उच्चारण में कोई अंतर नहीं है। जापानी भाषा में इन तीनों ध्वनियों के लिए सिर्फ 'र' ध्वनि ही है।

टिप्पणी— 'थाई' भाषी छात्र 'र' और 'ल' के अंतर को समझते हैं। लेकिन उनका कहना है कि युवा थाई ज्यादातर 'र' का उच्चारण कम करते हैं। मुख सुख की दृष्टि से 'र' का उपयोग कम करते हैं। कभी–कभी 'र' का उच्चारण 'न' हो गया है। जबकि जापानी भाषा में 'र', 'ल', 'ड' के लिए एक ही ध्वनि 'र' है। इस प्रकार 'र', 'ल' की विशेष समस्या उपर्युक्त दोनों भाषाओं में दिखाई देती है।

नासिक्य व्यंजन— ङ, ञ्, ण् का उच्चारण ज्यादातर देशों के छात्रों के लिए असंभव है। दंत्य नासिक्य व्यंजन 'न' और ओष्ठ्य नासिक्य ध्वनि 'म' का उच्चारण प्रायः सभी देशों की भाषाओं में पाया जाता है। छात्र अभ्यास द्वारा सीख भी लेते हैं।

टिप्पणी– कुछ देश की भाषाएँ इसका अपवाद भी हैं।

(1) फिलीपीन्स देश की 'फिलोपिनो भाषा' में कंठ्य नासिक्य व्यंजन 'ङ' ध्वनि पाई जाती है और ये छात्र सहजता से इस ध्वनि का उच्चारण कर लेते हैं। कंठ्य नासिक्य व्यंजन ध्वनि 'ङ्' शब्द में वितरण की तीनों स्थितियों में पाया जाता है–

जैसे– ङ् मोल – अभी

माङ्ग – आम

इनाङ् – माँ

(2) फिलोपिनो भाषा में मूर्धन्य और तालव्य स्पर्श व्यंजन नहीं है लेकिन तालव्य नासिक्य व्यंजन 'ञ' ध्वनि वितरण की स्थिति में– प्रारंभ में तो नहीं है लेकिन 'ञ' ध्वनि शब्द के मध्य और अंत में उच्चरित है– जैसे

कञ्या– (कन्या)

पिञ्या– (पाइन एप्पल)

लेकिन विशिष्टता यह है कि यह व्यंजन ध्वनि 'ञ' स्पैनिश भाषा से उधार लिए गए शब्दों में ही पाई जाती है।

(3) (अ) एक उदाहरण जापानी भाषा से– जापानी भाषा में ङ, 'ञ' ध्वनि शब्द के मध्य और अंत में पाई जाती है– उदाहरण–

जिञ्जा – मंदिर, तीर्थ स्थान

निञ्जा – तलवार चलाने वाला

(आ) कंठ्य नासिक्य व्यंजन ङ् ध्वनि अपने ही वर्ग 'क' और 'ग' से पहले उच्चरित है– उदाहरण– कङ्कि–Delight-

जापानी भाषा में बहुत सारे शब्द संस्कृत भाषा से आए हैं। ऐसे शब्दों में आई व्यंजन ध्वनियों जैसे–नासिक्य व्यंजन ञ, ङ तथा महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण छात्र सहज रूप से कर लेता है। जैसे– बुद्ध, धर्म, धारिणी आदि। इसी प्रकार संस्कृत भाषा से आए शब्दों प्रज्ञा, गङ्गा, चञ्चल, हञ्ञा, पञ्ञा (प्रज्ञा) आदि जापानी शब्द हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन देशों के छात्र कुछ सीमा तक इन कठिन ध्वनियों का उच्चारण आसानी से कर लेते हैं जिसका उच्चारण हिंदी भाषी भी सही ढंग से नहीं कर पाता।

समान ध्वनियाँ– भाषा शिक्षण में समान ध्वनियों को सुनना, सिखाना प्रारंभिक जरूरत अवश्य है, और छात्र इसे सीखने के लिए उत्प्रेरित भी होता है लेकिन अध्यापक को याद रखना होगा कि किन्हीं दो भाषाओं की ध्वनियाँ समान होते हुए भी उच्चारण के स्तर पर समान नहीं होती हैं। भाषा की प्रकृति के अनुसार उनमें उच्चारण के स्तर पर कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य होती है। भाषाओं के बीच का यह अंतर इतना सूक्ष्म होता है कि सहज रूप से दिखाई नहीं देता और शिक्षक भी पूरी तरह से पहचान नहीं पाता। जैसे थाई भाषा में– क, ख, प, फ, त, थ, स आदि ध्वनियाँ दोनों भाषाओं थाई– हिंदी में समान हैं लेकिन उच्चारण में बहुत थोड़ा–सा अंतर है।

बलाघात, विवृत्ति एवं अनुतान

उच्चारण शिक्षण का एक महत्वपूर्ण शिक्षण बिंदु है भाषा में बलाघात, विवृति एवं अनुतान। अन्य भाषा शिक्षण में इन तीनों ही घटकों का शिक्षण एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि भाषा में इनकी व्यवस्था प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति से नियंत्रित होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त समग्र विवेचन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि कक्षा शिक्षण के समय उच्चारण (श्रवण एवं भाषण) के स्तर पर छात्र को किन–किन ध्वनियों को सुनने एवं बोलने में समस्या होती है जिसके कारण वे अपनी बात (मौखिक अभिव्यक्ति) को सही ढंग से प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं? ऐसा

क्यों? इसके क्या कारण हैं? इसको समझाने का एक छोटा–सा प्रयास किया गया है, साथ ही उच्चारणगत इन त्रुटियों को कैसे दूर किया जा सकता है– इसका एक प्रयोग मात्र प्रस्तुत है–

छात्र सही उच्चारण कर सकें इसके लिए अध्यापक को निम्नलिखित सोपानों पर ध्यान देना होगा–

1. अध्यापक अन्य भाषा की ध्वनियों से परिचित हों। वे अन्य भाषा के स्वनिमों तथा संस्वनों की सूची छात्र की सहायता से तैयार करें।

2. दोनों भाषा ध्वनियों का व्यतिरेकी अध्ययन कर शिक्षण बिंदु चिह्नित किए जा सकते हैं।

3. इन शिक्षण बिंदुओं को अनुस्तरित करना जरूरी है जैसे समस्यात्मक ध्वनियाँ ड, ड़, ढ़, ढ, ण, ञ इनको बाद में सिखाना। पहले जैसे ओष्ठय और दंत्य ध्वनि अभ्यास के लिए ले सकते हैं क्योंकि ये ध्वनियाँ (ओष्ठ्य, दंत्य अल्पप्राण) सभी विदेशी भाषाओं में लगभग मिलती हैं।

4. अन्य भाषा में ध्वनियों के वितरण की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए शब्द स्तर पर अभ्यास कराना।

5. एकाकी ध्वनि का उच्चारण छात्रों के लिए नीरस और उबाऊ होता है। इससे छात्रों के मनोविज्ञान पर बुरा असर पड़ता है। इसके लिए आवश्यक है छोटी–छोटी कहानियाँ, गाने, चुटकुले के बीच से त्रुटिपूर्ण ध्वनियों को रेखांकित कर छात्र द्वारा उसका सामूहिक, तत्पश्चात् वैयक्तिक रूप से अभ्यास कराया जाए। उनके अपने देश की कहानी, घटना, संस्मरण को अभ्यास के लिए चुना जा सकता है। भाषा प्रयोगशाला के माध्यम से उच्चारण अभ्यास अधिक लाभप्रद होगा।

6. न्यूनतमशब्द युग्मों का उच्चारण अभ्यास अधिक लाभप्रद होगा।

7. ध्वनियों के उद्गम स्थान (उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न) को कक्षा शिक्षण के अध्यापक द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

8. वाग्यंत्र का चित्र एवं वाग्यंत्रों की सामान्य जानकारी द्वारा भी उच्चारण में सुधार किया जा सकता है। यह प्रयोग कक्षा शिक्षण द्वारा प्रमाणित भी है।

9. तुलनात्मक ध्वनि चार्ट तैयार कर सार्वभौमिक स्तर पर ध्वनियों को चिह्नित कर अभ्यास कराया जा सकता है।

10. सामूहिक बातचीत विषय प्रस्तुति, नाटक, संगीत, संदर्भ, विशेष द्वारा उच्चारण शिक्षण को बेहतर बनाया जा सकता है।

11. कक्षा में उच्चस्तरीय छात्रों के लिए प्रोजेक्ट बेस्ड लर्निंग की व्यवस्था कर उनसे अतिरिक्त शिक्षण कार्य करवाया जा सकता है।[3]

12. अमेरीकी परिदृश्य में 'लिंग्वाफोलियो' जो वेब आधारित सीखना है जिसमें छात्र स्वयं अपने उद्देश्य को निर्धारित कर सीखता है और अपना परीक्षण भी कर सकता है। इस विधि का प्रयोग भी हम अपने छात्रों के लिए कर सकते हैं।

13. लक्ष्य निर्धारित एवं छात्र स्तरानुकूल शिक्षण सामग्री का कक्षा में उपयोग करना अधिक श्रेयस्कर होगा।

14. प्रमुख है कक्षा में अध्यापक और छात्र का मैत्री–संबंध। उच्चारण में आने वाली त्रुटियों को अध्यापक इस विधि से सुधारने का प्रयास करें जिससे छात्र पीड़ित न हों।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गंभीर, सुरेंद्र : (संपादक), प्रवासी भारतीयों में हिंदी की कहानी, भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 160

2. कुमार,के. विजय : (प्रधान संपादक), स्मारिका 50 स्वर्ण जयंती वर्ष, 2011 केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, पृष्ठ 2

3. गोयनका, कमल किशोर : (संपादक), हिंदी भाषा – स्वरूप, शिक्षण, वैश्विकता, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2015, पृष्ठ 211

❑❑❑

वृद्धों की सामाजिक – आर्थिक स्थिति और उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति

सविता धामा

21वीं सदी की दुनिया में शिक्षा, संचार, स्वास्थ्य और आर्थिक संरचनाओं ने जीवन प्रणाली को समुचित रूप से प्रभावित किया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में विश्व में वृद्ध नागरिकों की संख्या 60 करोड़ के करीब है और यह अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2031 तक यह संख्या लगभग 150 करोड़ हो जाएगी।[1] मौजूदा सदी में जीवन–स्थितियों में सुधार दृष्टिगोचर होता है। इन जीवन–स्थितियों में सुधार की स्थिति को प्रसिद्ध समाजशास्त्री राधाकमल मुकर्जी निम्न रूप में अभिव्यक्त करते हैं, "जीवन–प्रत्याशा में वृद्धि विगत शताब्दी की प्रमुख जनांकिकीय उपलब्धि है। विश्व के अधिकांश भागों में एक ओर पोषण की सुधरती स्थिति, स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार तथा सभी क्षेत्रों में शिक्षा और संचार–माध्यमों की पहुँच और दूसरी ओर स्वास्थ्य के प्रति लोगों की बढ़ती जानकारी और चेतना के चलते मृत्युदर में आई कमी है और जीवन–प्रत्याशा में वृद्धि हुई है।"[2] इस जीवन–प्रत्याशा में वृद्धि के चलते भारत में भी वृद्धों की संख्या में वृद्धि हुई है। भारत में भी चिकित्सकीय सुविधाओं के विस्तार, खाद्यान्न और पोषण की समुचित उपलब्धता और आर्थिक सुदृढ़ीकरण ने जीवन के वर्षों को बढ़ाया है। ''वर्ष 1961 में भारत में वृद्धों की संख्या 2.4 करोड़ थी, जो बढ़कर वर्ष 2001 में 7.7 करोड़ हो गई।"[3]

21वीं सदी के साथ ही पूरे विश्व में वृद्धों की जनसंख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। एक ओर बदलती जनसंख्यात्मक संरचना तथा दूसरी ओर औद्योगीकीकरण, नगरीकरण, बढ़ती कौशलीय और तकनीकी शिक्षा, शहरों और दूसरे देशों में रोजगार के कारण हमारा समाज और परिवार व्यापक परिवर्तनों से गुजर रहा है। हमारे समाज की बुनियाद 'संयुक्त परिवार' एकाकी परिवारों में परिवर्तित होते जा रहे हैं। इस नई सामाजिक परिस्थितियों के निर्माण के कारण परिवार पहले की भाँति उतना अधिक देखभाल करने वाला नहीं रहा, जो कि अपने सदस्यों के लालन–पालन से लेकर मृत्यु होने तक उनकी देखभाल में जुटा रहता था। अब परिवार में वृद्ध अकेले रहने को मजबूर हैं। उनकी देखभाल न होने के कारण उनमें एकाकीपन और अलगाव का भाव पनपने लगा है, जो कि उनके सामाजिक और पारिवारिक समायोजन में कमी लाता है।

ध्यातव्य यह है कि वृद्धों में वृद्ध महिलाओं की स्थिति अत्यंत शोचनीय है। वृद्ध जनसंख्या का लगभग 48.2 प्रतिशत महिलाएँ हैं।[4] सामाजिक–सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक कारणों से भारत में महिलाओं की स्थिति कमजोर वर्ग की बनी हुई है। समाजशास्त्रीय शोधों से भी यह प्रमाणित होता है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनके साथ भेद–भाव होता है। उनके स्वास्थ्य के प्रति

लापरवाही बरती जाती है। वे पौष्टिक भोजन, आर्थिक सुरक्षा और आराम से वंचित रहती हैं। इन कारणों से महिलाओं का वृद्धावस्था जीवन और कठिन हो जाता है। भारत में आमतौर पर महिलाओं की पुरुषों की तुलना में जीवन प्रत्याशा अधिक होती है, सामान्यतः महिलाएँ अपनी आयु से अधिक आयु वाले पुरुष से विवाह करती हैं। इस कारण वृद्ध महिलाएँ विधवा भी होती हैं। महिलाओं को वृद्धावस्था में आर्थिक सुरक्षा से वंचित भी रहना पड़ता है। साथ ही, पारिवारिक निर्णयों में अधिकांश वृद्ध महिला को शामिल नहीं किया जाता है।

वर्तमान सदी में सामाजिक संरचना और समाज के विकास में वृद्धों की भूमिका अस्पष्ट है। महानगरों से लेकर ग्रामीण समाज के परिवारों में वृद्धों की स्थिति दयनीय है। अपमान, एकाकीपन, संत्रास झेलनेवाला वृद्ध इस समय की क्रूर सच्चाई है। मौजूदा सदी ने स्वतंत्र रूप से विभिन्न साहित्यिक विमर्श के लिए स्थान मुहैया करवाया। हमारे समय का प्रमुखविमर्शउत्तर–आधुनिकताकीधुरी पर खड़ा है। इसी से संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद,दलित–स्त्री–आदिवासी अस्मितापरक–विमर्श भी जुड़े हैं, जो आज स्वतंत्र रूप से साहित्यिक विमर्श बन चुके हैं। लेकिन वृद्धावस्था–विमर्शपर संवेदनापूर्ण कार्य का अभाव दृष्टिगोचर होता है। मौजूदा सामाजिक–संरचना में वृद्धों के लिए कोई भूमिका तैयार नहीं हो पाई है। प्रसिद्ध स्त्रीवादी कवयित्री अनामिका ने वृद्धा स्त्री की घर में उपयोगिता को निम्न शब्दों में लक्षित किया है–

जिस घर में हो कोई वृद्धा–
खाना ज्यादा अच्छा पकता है,
पर्दे–पेटीकोट और पायजामे भी दर्जी और रफूगरों के
मोहताज नहीं रहते
रहती हैं वृद्धाएँ, घर में रहती हैं
लेकिन ऐसे जैसे अपने होने की खातिर हों क्षमाप्रार्थी
लोगों के आते ही बैठक से उठ जातीं,
छुप–छुपकर रहती हैं छाया–सी, माया–सी।[5]

अनामिका ने अपने उपन्यास 'तिनका तिनके पास' में वृद्धों की मानसिक स्थितियों का तर्कयुक्त चित्रण किया है। उपन्यास की पात्र शीरीन जब पहली पोस्टिंग पर बिहार गई तब उसने वहाँ देखा, ''पतोहू से खाना माँगा तो वह तिनकी, बच्चों को जुड़ नहीं रहा और इनका ही पेट पहाड़ हुआ है। बूढ़ी ने भूखे ही पेट बीड़ी सुलगायी, खुरपी उठाई और चल दी कि कहीं तो जाना चाहिए... कुछ देर ही बाद लुढ़की तो जीवन की बीड़ी बुझ चुकी थी, पर हाथ की बीड़ी सुलगी हुई थी...।"[6]

'गिलिगडू' उपन्यास में चित्रा–मुद्गल ने वर्तमान सदी में भारत में संयुक्त परिवार व्यवस्था के तेजी से टूटने की स्थितियों को प्रस्तुत किया है। उपन्यास में चित्रा मुद्गल ने बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी दो कथापात्रों को केंद्र में रखा वृद्धावस्था के अकेलेपन, पारिवारिक त्रास, नई पीढ़ी, नानी पोतों से मोह और वृद्धों की इच्छाएँ पूरी न होने की विवशता आदि का सशक्त चित्रण किया गया है।

उपन्यास में बाबू जसवंत सिंह पीढ़ियों के मूल्य–परिवर्तन और मूल्यों के टूटने की चिंता में व्यथित हैं, जिनसे परिवार को जोड़कर रखा जाता है। बाबू जसवंत सिंह ने अपने बेटे को बड़ी मुसीबतों को झेलकर कानपुर में आई.टी.

आई. पढ़ाया, जिसके लिए उन्होंने अपनी भविष्य निधि (पी.एफ.) की रकम तोड़ दी। वही बेटा आज उनका ख्याल नहीं रखता। उनके खाने–पीने की इच्छा दरकिनार कर देता है– "दिल्ली आने के हफ्ते भर बाद बाबू जसवंत सिंह को लगा था कि उन्हें नरेंद्र से अपनी आपत्ति प्रकट कर देनी चाहिए खाने में कुछ भी खाना उनके लिए संभव नहीं। फ्रिज में रखा बासी कुची उसकी अम्मा ने कभी उन्हें नहीं खिलाया– सो पेट को उसकी आदत नहीं। रोटी भी तुरंत सिकी ही खा सकते हैं वे। बनी रखी दाँतों से चबती नहीं। जवाब में नरेंद्र के लंबे–चौड़े भाषण ने बाबू जसवंत सिंह को नसीहत पिलाई कि आइंदा वे अपनी पसंद की गुँजाइश इस घर में न ढूँढ़े तो बेहतर है। नरेंद्र की सलाह वाजिब लगी कि उन्हें वक्त की मारामारी देख वक़्त के साथ चलने का अभ्यास डालना चाहिए"[7] इस प्रकार की अनेक विवशताएँ वृद्धों को झेलनी पड़ती हैं। नरेंद्र और पिता जसवंत सिंह की स्थितियाँ इतनी दारूण होती चली जाती हैं कि उन्हें अपनी वसीयत बदल, नौकरानी सुनगुनिया के नाम वह घर कर देना चाहते हैं। उनका भी निर्णय है कि "सुनगुनिया से वे कहकर जाएँगे और अपनी वसीयत में स्पष्ट लिखा भी देंगे कि सुनगुनिया का पुत्र रामरत्न, व अभिषेक आसरे ही उनके कपाल–संस्कार का अधिकारी रहें– क्रिया करें।"[8]

बाबू जसवंत सिंह से भी बदतर स्थिति कर्नल स्वामी की है जो जीवन भर दुनिया के सामने झूठ बोलते हैं कि वे बेटा–बहू के साथ बहुत सुखी हैं। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि उनके बेटे ने प्लाट हथियाने के चक्कर में एक प्रकार से पिता को इतना मारा कि ग्लानि से उनकी मृत्यु हो जाती है, "कुछ श्री नारायण ने अपने पिता पर हाथ उठा दिया। कर्नल स्वामी के रोने–चीखने का स्वर सुनकर मिस्टर एंड मिसेज श्रीवास्तव का दिल दहल उठा। दरवाजा भड़भड़ाया। श्रीनारायण ने भीतर से ही उनको आपसी मामले में दखल न देने की धमकी दी। घबराए श्रीवास्तव जी ने डायल कर पुलिस बुला ली। पुलिस ने दरवाजा खुलवाया। लहुलूहान कर्नल स्वामी को कैलाश अस्पताल ले जाया गया। बोलने के काबिल होते ही उन्होंने बेटे के खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज कराने से मना कर दिया। श्रीनारायण ने माफी माँगते हुए अपने अप्पू के पाँव जोड़ लिए"।[9] इस तरह से चित्रा मुद्गल ने समाज के एक क्रूर सत्य को 'गिलिगडु' उपन्यास में दर्शाया। 'गिलिगडु' वृद्धावस्था की कारूणिक अवस्था की अत्यंत संवेदनात्मक प्रस्तुति है।

साहित्य और विमर्श उपेक्षितों की विचारपरक अभिव्यक्ति होती है। वृद्धों के साथ वैचारिकी निर्माण में यह समस्या रही कि साहित्य अभिव्यक्ति में उन्हें निर्णायक भूमिका में रखा गया तो दूसरी ओर उपेक्षित की भूमिका में भी उनकी अभिव्यक्ति होती रही। सामाजिक और आर्थिक संरचना में परिवर्तन के साथ वृद्धों की परस्पर पारिवारिक परिस्थितियों में भी बदलाव होता है। समाजशास्त्री वृद्ध–विमर्श को सामाजिक–आर्थिक परिप्रेक्ष्य में ही प्रस्तुत करते रहे जबकि वृद्ध–विमर्श में मनोवैज्ञानिक स्तर का भी अध्ययन अपरिहार्य है, इस अपरिहार्यता को आंशिक रूप से साहित्य द्वारा अभिव्यक्ति मिलती रही है। प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' की पात्र रूपा वृद्ध बूढ़ी काकी के प्रति अपने उपेक्षित व्यवहार के कारण ग्लानि महसूस करती है। "रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में कभी न दिख

पड़े थे। वह सोचने लगी– हाय! कितनी निर्दयी हूँ। जिसकी संपत्ति से मुझे दो सौ आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति। और मेरे कारण। हे दयामय भगवान! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया। मैं उनके इशारों की दासी बनी रही। अपने नाम के लिए सैकड़ों रुपए व्यय कर दिए, परंतु जिसकी बदौलत हजारों रुपए खाए, उसे इस उत्सव में भी भरपेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो, वह वृद्धा असहाय है।"[10] लेकिन स्वतंत्रता के बाद भीष्म साहनी की कहानी के सामाजिक और आर्थिक बदलावों के बाद 'चीफ की दावत' का शामनाथ अपनी वृद्ध माँ के प्रति अपने उपेक्षित व्यवहार के लिए किसी तरह की ग्लानि महसूस नहीं करता। "नहीं बेटा, अब तुम अपनी बहू के साथ जैसा मन चाहे रहो। मैंने खा–पहन लिया। अब यहाँ क्या करूँगी। जो थोड़े दिन जिंदगानी के बाकी हैं, भगवान का नाम लूँगी। तुम मुझे हरिद्वार भेज दो।

– तुम चली जाओगी, तो फुलकारी कौन बनाएगा? साहब से तुम्हारे सामने ही फुलकारी देने का इकरार किया है

– मेरी आँखें अब नहीं हैं बेटा, जो फुलकारी बना सकूँ। तुम कहीं और से बनवा लो, बनी बनाई ले लो।

– माँ, तुम मुझे धोखा देकर यूँ चली जाओगी? मेरा बनता काम बिगाड़ोगी! जानती नहीं, साहब खुश होगा तो तरक्की मिलेगी।"[11]

वृद्धों के प्रति यह उपेक्षित व्यवहार बदलते समय के साथ बढ़ा है।

'वृद्धावस्था–विमर्श' नामक पुस्तक चंदर्मोलेश्वर प्रसाद ने लिखकर एक व्यवस्थित रूप से हिंदी में 'वृद्धावस्था–विमर्श' को चर्चा के केंद्र में लेकर आएँ'वृद्धावस्था–विमर्श' पुस्तक के रूप में प्रकाशित यह उनकी पहली कृति है। वस्तुतः यह पुस्तक सिमोन–द–बुआ की पुस्तक 'ओल्ड एज' का हिंदी में सार–संक्षेप है। इस कृति का महत्व बताते हुए इसके संपादक डॉ. ऋषभदेव शर्मा ने लिखा है, "आज हमारी चिंता का विषय विशाल वृद्ध जन–समुदाय के जीवन को सुखमय बनाने से संबंधित है– चाहे वे पुरुष हों या स्त्री। यही कारण है कि वृद्धावस्था से जुड़े सेवामुक्ति से लेकर वृद्धाश्रम तक के अथवा देह से लेकर आयु तक के क्षीण होने के मुद्देचिंतन और सृजन के विविध मंचों पर स्पष्ट हुए हैं। यदि यह कहा जाए कि आज का मनुष्य बुढ़ापे और मौत से कुछ ज्यादा आतंकित है तो भी शायद गलत नहीं होगा।"[12]

'वृद्धावस्था–विमर्श' की शुरुआत होने पर समाजशास्त्रियों ने वृद्ध होने के सामाजिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य को चिह्नित किया। चिकित्सा, वैज्ञानिक या जैविक वैज्ञानिक वृद्धावस्था के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं कर पाए हैं। विभिन्न देशों में वृद्धावस्था की आयु अलग–अलग है। विकसित देशों में जहाँ पर जीवन के 65 वर्ष के बाद लोग वृद्धावस्था की श्रेणी में आते हैं और विकासशील देशों में वृद्धावस्था की आयु 60 वर्ष मानी गई है। ''वृद्ध होना अकस्मात् नहीं होता, यह तो बहुत जटिल और क्रमिक प्रक्रिया है। वृद्धावस्था का समाज–शास्त्र इस तथ्य को स्वीकार करता है कि वृद्ध बनने की शारीरिक प्रक्रिया के अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम होते हैं। आयु एक सांस्कृतिक कोटि है और इसका अर्थ व महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से और विभिन्न संस्कृतियों में प्रायः परिवर्तित होता रहता है।"[13]

हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में वृद्धों की समस्या तथा वृद्धों की स्थिति को लेकर लेखन निरंतर होता रहा। हिंदी साहित्य

में युगीन चेतना के साथ वृद्धों की स्थिति को प्रस्तुत किया जाता रहा है। नए आर्थिक परिप्रेक्ष्य में वृद्धों की अनदेखी की गई लेकिन इस बदले परिप्रेक्ष्य में भी वृद्ध अपनी शैक्षणिक उत्कृष्टता और कौशल पर अर्थोपार्जन करते हैं। इस दृष्टि से समकालीन कथाकारों अथवा साहित्यकारों की दृष्टि का अभाव है। नागार्जुन ने इस दृष्टि से वृद्धों की आलोचना को भी साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। नागार्जुन के अनुसार सड़ी–गली परंपराएँ, मान्यताएँ वृद्धों के जरिए ही नई पीढ़ी में इंजेक्ट होती रहती हैं। भ्रष्टाचार को दूर करने में उन्हें वृद्धों की नहीं, युवाओं की भूमिका महत्वपूर्ण लगती है। 'भ्रष्टाचार के दानव' निबंध में उन्होंने लिखा है, "मेरी तो पक्की धारणा है कि भ्रष्टाचार का उन्मूलन भविष्य में हम नहीं कर पाएँगे, जिनकी उम्र पचास पार गई है। यानी मुझे स्पष्ट दिखता है कि भ्रष्टाचार का उन्मूलन नई पीढ़ी ही करेगी।"[14]

वृद्धों की सामाजिक–आर्थिक स्थितियों पर समाजशास्त्रियों द्वारा अनेक शोध प्रस्तुत हुए हैं। साहित्य में वृद्धों की स्थितियों का चित्रण विविध मनोभावों और सामाजिक परिस्थितियों के बदलते संदर्भों में प्रस्तुत हुआ है। हालाँकि 'वृद्धावस्था–विमर्श अथवा वृद्ध–विमर्श 21वीं सदी के प्रारंभ में वैचारिक अस्तित्व लेकर आया। मौजूदा सदी में समाज और परिवार में वृद्धों की स्थिति को समकालीन साहित्यकारों ने विमर्श की वैचारिकी के अनुरूप संवेदनापूर्ण ढंग से सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। 1990 ई. के बाद भारत के ग्रामीण और शहरी समाज की पारिवारिक संरचना में वैचारिक और भौतिक बदलाव बड़ी तेजी से दृष्टिगोचर हुए इस बदलाव की संरचना को समकालीन साहित्य में सतर्कता पूर्वक अभिव्यक्ति मिल रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बढ़ते बुजुर्ग, हटती सुरक्षा, उमेश चंद्र अग्रवाल, कुरुक्षेत्र, अंक–12, अक्तूबर 2009, पृष्ठ–54

2. राधा कमल मुकर्जीः चिंतन परंपरा, जनवरी–जून 2015, पृष्ठ 83

3. Population Ageing and Health is India, Irudaya Rajan, July, 2006

4. www.esocialsciences.com/data/e ssearch papers.

5. वृद्धाएँ धरती का नमक हैं, अनामिका, किताबघर प्रकाशन, 2011, पृष्ठ 24

6. तिनका तिनके पास, अनामिका, वाणी प्रकाशन, 2008, पृष्ठ 298

7. गिलिगडु, चित्रा मुद्गल, सामायिक प्रकाशन, 2003, पृष्ठ 34

8. गिलिगडु, चित्रा मुद्गल, सामायिक प्रकाशन, 2003, पृष्ठ 40

9. गिलिगडु, चित्रा मुद्गल, सामायिक प्रकाशन, 2003, पृष्ठ 144

10. premchand.co.in/story/budhi-kaki

11. hindisamay.com/kahani/chief .ki.dawat/htm

12. वृद्धवस्था–विमर्श, चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, सं. ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, 2016, पृष्ठ 11

13. राधाकमल मुकर्जी : चिंतन परंपरा, जनवरी–जून 2016, पृष्ठ 110

14. भ्रष्टाचार का दानव, नागार्जुन, gadykosh.org/gh भ्रष्टाचार का दानव

❑❑❑

समकालीन विमर्शों के दौर में 'राम' की प्रासंगिकता

मानसी रस्तोगी

वैदिक काल से भक्तिकाल तक, भक्तिकाल से आधुनिक काल तथा आधुनिक काल से उत्तर–आधुनिक युग पर्यंत जिस भारतीय महाख्यान ने संपूर्ण विश्व साहित्य को सर्वाधिक आकृष्ट किया है, उसके महानायक हैं 'राम'। राम यानी 'वह' जिसमें योगियों का 'मन' रमे या वह 'प्रकाश' जो समूचे ब्रह्मांड में अंतर्निहित है। भारतीय समाज में संभवतः राम ही एकमात्र ऐसे भगवान हैं जो मंदिरों से अधिक घरों में, तीज–त्योहारों, रस्मों–रिवाज़ों, लोक मान्यताओं और दैनंदिन जीवन के सामान्य भाषाई और सांस्कृतिक क्रियाकलापों में दिख जाएँगे। अगर ऐसा नहीं होता तो 'नमस्ते' कहने के स्थान पर 'राम–राम' कह देने से या जाते समय 'जय राम जी की' बोल देने भर से हमारा अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो पाता। आश्चर्य प्रकट करते हुए मुँह से अनायास 'हाय राम! यह कैसे हो गया?' या आशंका प्रकट करते हुए 'राम जाने वह दिन कब आएगा!' नहीं निकलता। किसी कार्य के शुभांरभ के समय 'राम का नाम लेकर कार्य प्रारंभ करो' या मरने के बाद शव–यात्रा के साथ "राम नाम सत्य है" क्यों बोला जाता? राम हमारे शुभ–अशुभ सबमें मौजूद हैं। हमारे मुहावरों में भी जहाँ लोक में कोई अपनी 'राम–कहानी' सुना रहा होता है तो कोई 'मुँह में राम बगल में छूरी लिए' डोलता–फिरता है।

यूँ तो राम कथा भारतवर्ष में सर्वप्रथम आदिकवि वाल्मीकि ने संस्कृत में 'रामायण' (3–4वीं सदी ई.पू.) में कही। वाल्मीकि के राम आदर्श महापुरुष थे। वे उच्च मानवीय गुणों की पराकाष्ठा के जीते–जागते पुंज थे, जिन्होंने अपने कर्मों से 'ईश्वरत्व' प्राप्त किया। इस रूप में वे पहले मनुष्य थे और ईश्वर बाद में पर जिस महाकाव्य ने राम को लोक–मानस के केंद्र में स्थापित किया, वह 'रामचरितमानस' था जिसे भक्तिकाल के गोस्वामी तुलसीदास जी ने लोकभाषा 'अवधी' में रचा। 'मानस' एक कालजयी रचना साबित हुई जिसने न केवल भारत अपितु समग्र विश्व के पाठकों, लेखकों, अनुवादकों, शोधार्थियों, शिक्षकों और चिंतकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। क्लासिकल भाषा 'संस्कृत' में रचित रामायण की अपेक्षा दोहा–चौपाई की सरल शैली एवं जनभाषा अवधी में लिखी गई मानस की पैठ संपूर्ण भारतीय जन–सामान्य तक बेहद सुगमता से हुई। तुलसी को संस्कृत के साथ–साथ उस समय उत्तर भारत में प्रचलित दोनों ही महत्वपूर्ण प्रादेशिक बोलियों और काव्य– भाषाओं अवधी और ब्रज का अच्छा अभ्यास था। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि अन्य सभी समकालीन कवियों में कोई दूसरी भाषा और काव्य–प्रतिभा के ऐसे विरल संयोग वाला रहा हो, जैसे कि तुलसी। यह उन्हीं का सामर्थ्य था कि गीता के श्लोक 'यदा यदा हि धर्मस्य' का लोकभाषा में इतना सुंदर रूपांतरण प्रस्तुत किया–

> *जब जब होइ धरम की हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।*
>
> *तब तब प्रभु धरि मनुज सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।*

यही कारण है कि तुलसी के अनन्य मित्र और मुस्लिम कवि रहीम ने भी मानस को हिंदुओं और मुसलमानों दोनों की ही अमूल्य धरोहर कहा–

> *रामचरितमानस विमल, संतत जीवन प्रान।*
>
> *हिंदुवान को वेद सम, तुरुकहिं प्रकट कुरान।।*

राम एक ऐसे युगपुरुष हैं जो विरुद्धों में भी सामंजस्य बिठा देते हैं। वे सगुण भक्तकवियों के ही आराध्य नहीं अपितु कबीर जैसे निर्गुण संतकवियों के भी निराकार ब्रह्म हैं। कबीर कहते हैं–

एक राम दशरथ का बेटा, एक राम घट–घट में बैठा।

एक राम का सकल पसारा, एक राम त्रिभुवन से न्यारा।।

राम को देखने की सभी की दृष्टि भिन्न –भिन्न है। वैष्णव उन्हें विष्णु भगवान के अवतार के रूप में देखते हैं तो शैव उन्हें शिव की स्तुति करते हुए देखते हैं। शाक्त राम से शक्ति की पूजा करवाते हैं। कृतिवास की (बांग्ला) रामायण पर आधारित निराला की 'राम की शक्तिपूजा' ऐसी ही रचना है। निराला के राम पुरुषोत्तम तो हैं किंतु पूर्ववर्ती 'मर्यादा' के भार को ढोने वाले नहीं अपितु इस सत्य को समझने और देखने वाले 'कि अन्याय है जिधर, हैं उधर शक्ति'। जिन्होंने अपने जीवन में सदा ही विरोध पाए, सदा ही साधन जुटाने के लिए संघर्ष किए। पर अंत में शक्ति को भी रावण यानी अधर्मी के पक्ष में लड़ते देखकर 'निराश हो जाने और आँसू तक बहाने वाले' राम अंततः अपने ध्यान को स्थिर करके शक्ति को प्रसन्न करने में सफ़ल हो जाते हैं और इस रूप में वे 'पुरुषोत्तम नवीन' की संज्ञा पाते हैं। 'संशय की एक रात' (काव्य–नाटक) में नरेश मेहता राम को युद्ध से पूर्व संशयग्रस्त दिखाते हैं। 1962 के भारत–चीन युद्ध की ऐतिहासिक घटना के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया यह काव्य नाटक सीता प्राप्ति हेतु युद्ध से होने वाले विध्वंस और हिंसा को लेकर राम के अंतर्मन में चल रहे द्वंद्व और मंथन पर केंद्रित है। वे सोचने पर मजबूर हैं कि–

व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ

क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें।।

उत्तर आधुनिक युग की वैचारिकी ने सत्य को 'सापेक्ष' माना और किसी भी सत्य को 'अंतिम' नहीं माना। इस युग ने कई नए विमर्शों को जन्म दिया और अनेक अस्मिताओं के अलग–अलग स्वर मुखर हुए। जाहिर सी बात है कि ऐसा कैसे संभव होता कि राम जैसे संभावनाशील पात्र के व्यक्तित्व और चरित्र पर एक भी सवाल न उठे या उनसे बाकियों को कोई अंतर्विरोध ही न जान पड़े। कालांतर में स्त्री–विमर्शकारों ने उन पर सीता की 'अग्निपरीक्षा' और उनके 'परित्याग' को लेकर आक्षेप लगाए। उन्हें स्त्री–विरोधी या स्त्री के प्रति संवेदनहीन भी कहा। पर यहाँ दो बातों पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है– पहली, कि रावण की कैद में लंबे समय तक रहने के बावजूद सीता ने राम के प्रति अपने पतिव्रत और शील की सदैव रक्षा की। एक पत्नी के रूप में पति राम को इस बात को लेकर कोई संदेह नहीं था किंतु अयोध्या के भावी राजा को अपनी रानी सीता के लोकापवाद का भय ज़रूर था। हर युग की अपनी प्राथमिकताएँ होती हैं। त्रेता युग में स्त्री का शील–भंग होना एक बहुत बड़ी दुर्घटना थी। नहीं तो राम का सीता के प्रति प्रेम हमें उनके विवाह के समय से ही दिखाई देता है। राम ने दशरथ (जिनकी तीन रानियाँ थीं) के पुत्र होने के बावजूद 'एकपत्नीव्रत' का पालन किया जो उस समय के कई राजाओं के लिए एक आदर्श था। यही नहीं, उन्होंने वनवास मिलने पर भी सीता को साथ चलने के लिए नहीं कहा। पर जैसे ही उन्हें सीता के उनसे वियोग न सह पाने की मनोदशा के बारे में पता चला वे उन्हें साथ ले जाने के लिए सहर्ष तैयार भी हो गए। वन में भी उनके और लक्ष्मण के कारण सीता तब तक सुखी और सुरक्षित रहीं जब तक रावण ने छल से उनका हरण नहीं किया। उनके हरण के बाद तो राम एक पल के लिए भी चैन से नहीं बैठे। वानरराज सुग्रीव और अन्य वन्य जीवों के साथ मित्रता साधी, पुल बनाया और लंका पहुँचकर रावण और उसके भाइयों–बेटों से भीषण युद्ध किया। यह सीता के प्रति उनका अगाध प्रेम ही था। दूसरी बात है उनके

परित्याग की। इसका वर्णन न तो वाल्मीकि रामायण में आया है और न ही मानस में। यह वस्तुतः 'उत्तरकांड' में सम्मिलित उत्तर रामायण काल की घटनाएँ हैं, जो बौद्ध और जैन धर्मों के आगमन के बाद लिखा गया और उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। इसी प्रकार दलित चिंतकों को राम द्वारा 'शंबूक–वध' किए जाने पर आपत्ति है और यह घटना भी केवल उत्तरकांड में वर्णित है। राम कथा पर आधिकारिक शोध कार्य करने वाले फ़ादर कामिल बुल्के ने भी इस विषय में अपना स्पष्ट मत दिया है– "वाल्मीकि रामायण का 'उत्तरकांड' मूल रामायण के बहुत बाद की पूर्णतः प्रक्षिप्त रचना है।" (राम कथा उत्पति विकास–हिंदी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1950) मूल रामायण में केवल छह ही कांड हैं। एक अन्य शोधकर्ता विपिन किशोर सिन्हा जी ने भी अपनी शोध–पुस्तिका "राम ने सीता–परित्याग कभी किया ही नहीं" में इस तथ्य की पुष्टि की है।

एक आदर्श राजा होने के नाते न वे आक्षेप लगाने वाले उस धोबी (यानी उनकी सामान्य प्रजा का प्रतिनिधि) की आवाज़ को बलपूर्वक दबा सकते थे; और एक आदर्श पति होने के कारण न वे सीता को प्रतिदिन मानसिक यंत्रणा और अपमान से गुज़रते हुए देख सकते थे। 'महाराज' राम 'महारानी' सीता का परित्याग अपने राज्य के हित में करते हैं, पति राम अपनी पत्नी सीता का नहीं। ऐसा करने पर भी वे उन्हें वाल्मीकि आश्रम में भेजते हैं ताकि उनकी गर्भावस्था में उचित देखभाल हो जाए। आश्रम में ऋषि–पत्नियाँ उनका विशेष ध्यान रखती हैं। प्रकृति की गोद में वे जुड़वाँ बेटों को जन्म देती हैं। राम जिस दिन सीता को वन भिजवाते हैं, उसी रात से वे स्वयं भी भूमि पर ही सोते हैं। सीता यदि उनसे वियोग झेलती हैं तो वे भी सीता–वियोग झेलते हैं, फ़िर भी अपने शेष दायित्वों की पूर्ति करते हैं। यहाँ राम का व्यक्तित्व एक बहुत ही तटस्थ कर्मयोगी के रूप में साकार होता है, जिनके लिए व्यक्तिगत सुख से अधिक ज़रूरी अपने सामाजिक और नैतिक दायित्वों का बोध होना और उनकी पूर्ति करना रहा है। फ़िर भी उन पर इस घटना के कारण 'पुरुषवादी' होने का लांछन तो लगा ही; इसका ख़ामियाज़ा भी उठाना पड़ा। आज भी पूरे भारत में अविवाहित युवतियाँ अच्छे पति की कामना लेकर 'शिव' की आराधना करती हैं, 'विष्णु' की नहीं। हर सोमवार को वे 'महादेव' का व्रत रखती हैं, 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' का नहीं।

बहुभाषिक राम काव्य–मर्मज्ञ, कवि और कथाकार डॉ. रामनाथ त्रिपाठी ने अपनी औपन्यासिक कृति 'रामगाथा' (साकेत निधि पुरस्कार से सम्मानित) में उत्तरकांड को प्रक्षिप्त ही माना है पर उसे अपने उपन्यास की कथा में शामिल किया है। जब सीता के पुत्रों के जन्म होने के पश्चात् भी उनकी शुचिता पर प्रश्न उठते हैं तो राम कह उठते हैं– "सीता अयोध्या नहीं लौटेगी तो मैं भी राज्य का दायित्व छोड़ दूँगा। यह यज्ञ संपन्न हो जाए, मैं वानप्रस्थ ले लूँगा।..... सीता को वनवास देने में मेरा यह उद्देश्य था कि वाल्मीकि–आश्रम में उसके पुत्रों का जन्म हो और प्रजा उन्हें स्वीकार करे। मैं ऐसा न करता तो हमारे बच्चों को भी कलंकित जीवन–यापन करना पड़ता, जिसे मैं सह नहीं पाता।"

(पृष्ठ 200, रामगाथा)

कन्नड के यशस्वी साहित्यकार और पद्मश्री से सम्मानित डॉ. एस.एल. भैरप्पा ने अपने आधुनिक गद्य–महाकाव्य 'उत्तरकांड' में सीता के दृष्टिकोण से घटनाओं की पुनर्निर्मिति की है। उन्होंने यद्यपि राम को 'मिथकीकरण' से मुक्त करके स्वाभाविक परिवेश में चित्रित किया है लेकिन फ़िर भी वे राम के उज्ज्वल व्यक्तित्व की प्रशंसा करने का लोभ–संवरण नहीं कर पाते। गौतम ऋषि और उनकी पत्नी अहिल्या संबंधी प्रकरण में जब राम गौतम और अहिल्या का पुनर्मिलन कराने में सफल हो

जाते हैं, तो इसकी सूचना सीता तक भी पहुँचती है। उस समय सीता राम के विषय में क्या सोचती हैं, भैरप्पा जी ने यूँ अभिव्यक्त किया है–

"गौतम जी जैसे ऋषिवर को मनाने के लिए कैसी प्रौढ़ बुद्धि–शक्ति की आवश्यकता होती है! कैसा दयावान है वह! सुना है कि अभी अठारह साल का लड़का है। .....स्फुरद्रूपी और तेजस्वी होगा; चूँकि उसने राक्षसों को मार डाला है तो अवश्य ही वह वीर और धैर्यशाली होगा; इस प्रसंग से पता चलता है कि वह करुणालु भी है।"

(पृष्ठ 61, उत्तरकांड)

आक्षेपों और प्रत्यारोपों के बीच राम का चरित्र प्रत्येक बार उसी प्रकार निर्मल दिखाई पड़ता है जैसे कि कीचड़ के बीचोंबीच खिला हुआ 'कमल'; संभवतः उनकी कथा को इसीलिए तुलसी ने रामचरितमानस की संज्ञा दी। राम की 'यात्रा' अनवरत काल से चली आ रही है और इसी रूप में यह आने वाले कई युगों तक अविराम चलेगी। विमर्शों के केंद्र में रहते हुए भी राम सदैव प्रासंगिक और सदैव अनुकरणीय रहेंगे। यही उनकी 'युग–सापेक्षता' है और 'कालातीतता' भी। यही उनकी 'पौराणिक महत्ता' भी है और 'ऐतिहासिक विश्वसनीयता' भी।

अंत में, कुमार विश्वास के भजन की इन पंक्तियों से बस यही कहा जा सकता है कि *मानवता की खुली आँख के सबसे सुंदर सपने राम, जिह्वा–वाणी अर्थवती हो गई लगी जब जपने राम, माता–पिता, गुरुजन, परिजन ने अपने–अपने देखे थे, दुनिया–भर ने देखे अपने, अपने अपने अपने राम।*

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एस.एल. भैरप्पा, उत्तरकांड, किताबघर प्रकाशन, संस्करण : 2020

2. कामिल बुल्के, राम कथा, हिंदी परिषद, प्रयाग वि. वि., प्रथम संस्करण : 1950

3. संपा. रामविलास शर्मा, राम विराग, सूर्यकांतत्रिपाठी निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2011

4. रमानाथ त्रिपाठी, रामगाथा, राजपाल एंड सन्स, संस्करण : 2013

5. संपा. विद्यानिवास मिश्र और गोविंद रजनीश, रहीम ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, संस्करण : 2004

6. नरेश मेहता, संशय की एक रात, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण : 2013

❑❑❑

भारतीय समाज का सशक्त स्वर : सिनेमा

कुमारी उर्वशी

संचार के सबसे सशक्त माध्यम के तौर परसिनेमा का प्रभाव समाज पर सर्वाधिक पड़ा है, क्योंकि अनपढ़ हो या पढ़ा लिखा, अमीर हो या गरीब यह सबको समान रूप से प्रभावित करता है। साहित्य और सिनेमा दो ऐसे माध्यम हैं जिसमें समाज को बदलने की ताकत सबसे अधिक होती है। हालाँकि साहित्य के चिंतक, लेखक और आलोचक सिनेमा को साहित्य का हिस्सा मानने से हमेशा हिचकते रहे हैं, यह जानते हुए भी कि सिनेमा का आरंभ ही साहित्य से होता है। जमाना बदलता रहेगा, फिल्मों में प्रयोग होते रहेंगे, लेकिन फिल्मों में साहित्य का असर हमेशा प्रभावी रहेगा। चर्चित उपन्यासों और कालजयी रचनाओं पर आधारित फिल्में हर दौर में पसंद की जाती रही हैं। मनोरंजन के साथ–साथ सामाजिक दायित्व निभाने का सवाल भी यहाँ जुड़ जाता है, जब कोई फिल्म रोचक अंदाज में सामाजिक विसंगतियों के चित्र और कुछ सकारात्मक संदेश संप्रेषित करने में समर्थ होती है तो उसे व्यापक स्तर पर सराहना भी मिलती है। एक–दूसरे को प्रभावित करने वाले सिनेमा और समाज परस्परावलंबी हैं, यह सहज स्वाभाविक है।

पाश्चात्य विद्वान दी क्विन्सी ने साहित्य के दो वर्ग किए हैं– ज्ञान का साहित्य और भावना का साहित्य। उन्होंने लिखा है कि ज्ञान के साहित्य का लक्ष्य सिखाना होता है वहाँ भावना के साहित्य का लक्ष्य भावनाओं को पूर्ण करना होता है, एक में तथ्यों और उपदेशों की प्रधानता होती है जबकि दूसरे में कला और सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है ।

फिल्मकार कमलस्वरूप का कहना है कि सिनेमा अनुभूति और संवेदना, व्यष्टि और समष्टि के संबंध का विज्ञान है। विभिन्न नाट्य एवं ललित कलाओं का सम्मिश्रण है। किसी घटना के काल और दिक् के आयामों का रूपांकन है।

विजय शर्मा के अनुसार "फिल्म साहित्य से अलग एक भिन्न विधा है। यहाँ कथा होती है मगर वही सब कुछ नहीं होता है। फिल्म भिन्न मुहावरों में बात करती है।"

आलोक पांडेय का मत है "दरअसल सिनेमा सिर्फ अभिव्यक्ति नहीं है। वह बहुत कुछ ऐसा भी कहता और करता है, जिसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता।"

विनोद दास कहते हैं कि "सिनेमा एक कला है और अन्य कलाओं की तरह यह भी हमारे समय और समाज की बुनियादी चिंताओं–जिज्ञासाओं को अपनी सृजनशीलता का एक अनिवार्य अंश बनाता रहा है।"

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में प्रवेश कर चुके विश्व पर आज यदि सबसे ज्यादा प्रभाव जिस माध्यम का है तो वह सिनेमा का ही है। हमारे रीति–रिवाज, खान–पान, रहन–सहन से लेकर चिंतन तक सिनेमा की गहरी पहुँच है। समूची मानवीय सभ्यता का यथार्थ जिस माध्यम से आज हमारे सामने उपस्थित है, उसमें सिनेमा की भूमिका अग्रणी है। सिनेमा का सौ साल से ज्यादा का सफ़र हमारा आपका और समूची मानव सभ्यता के विकास का सफ़र है। इस सफ़र ने देश की कई पीढ़ियों से साक्षात्कार किए हैं। सिनेमा ने एक उभरते हुए देश को आकार दिया है।

भारतीय हिंदी सिनेमा ने जनसामान्य के अवचेतन जीवन को संबोधन और स्थिर भावों को गति प्रदान की है। सिनेमा में बहुसंख्य समाज अपने समग्र तेवर, कलेवर अपने संपूर्ण चरित्र और व्यवहार के साथ हजारों गीतों, संवादों, पात्रों, किस्से कहानियों में मौजूद है। सिनेमा की सार्थकता उस बदलाव से जुड़ी होती है। जो उसके प्रभाव से व्यक्ति परिवार और समाज में दिखाई देता है। बॉलीवुड ने हमारे देश व समाज को अपने समय के हिसाब से फैशन करना सिखाया, सामाजिक बदलाव को स्वीकार करने की समझ दी और हमारी भावनाओं को दृश्य–शब्द दिए।

प्रसिद्ध फिल्म समीक्षक विमलेंदु साहित्य और सिनेमा के अंतःसंबंध को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "साहित्य और सिनेमा का संबंध भी दो पड़ोसियों की तरह रहा है दोनों एक दूसरे के काम तो आते रहें लेकिन यह कभी सुनिश्चित नहीं हो पाया कि इनमें प्रेम है या नहीं।"

भारतीय सिनेमा के इतिहास में हिंदी फिल्मों ने भारत के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सरोकारों को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदी फिल्मों ने मनोरंजन के साथ–साथ भारतीय जीवन के विविध पहलुओं को बदलते परिवेश में चित्रित करने में सफलता हासिल की है। हिंदी फिल्मों की सबसे बड़ी विशेषता जीवन में व्याप्त हर तरह की संवेदना को दर्शाना रहा है। भारत में सिनेमा के उदय काल से ही इस माध्यम का प्रयोग फ़िल्मकारों ने देश में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना जगाने के लिए किया।

साहित्य की ही तरह आज़ादी से पहले की फिल्मों के मुख्य विषय स्वतंत्रता संग्राम, अंग्रेजी राज से मुक्ति के प्रयास और देशभक्त वीरों के बलिदान की कथाओं पर आधारित रहे। हिंदी फिल्मों का प्रथम दौर ऐतिहासिक और धार्मिक फिल्मों का था इस दौर में निर्माता, निर्देशक और अभिनेता सोहराब मोदी ने 'सिकंदर', 'पुकार', 'झांसी की रानी' जैसी महान ऐतिहासिक फिल्में बनाईं। इन फिल्मों ने लोगों में देश–प्रेम की भावना को उद्दीप्त करने का माहौल बनाया।भारतीय नवजागरण आंदोलन से प्रेरित और प्रभावित होकर फ़िल्मकारों की दृष्टि भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं की ओर गई। परिणामस्वरूप सुधारवादी फिल्मों का आविर्भाव आज़ादी से पहले हुआ। साहित्य की ही तरह सिनेमा भी समाज का दर्पण है। समाज की सच्ची तस्वीर सिनेमा में दिखाई देती है। फ़िल्मकारों ने इस सशक्त माध्यम के द्वारा एक कारगर परिवर्तन और सुधार को समाज में प्रचारित करने के लिए महत्वपूर्ण फिल्में बनाईं जिनकी प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण है।

भारत में बनने वाली पहली फीचर फिल्म आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक 'हरिश्चंद्र' से प्रेरित थी। प्रारंभ से ही हिंदी सिनेमा में लिखित और अलिखित साहित्य की भूमिका अहम रही है।1931 में पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' से आज तक सर्वाधिक फिल्में हिंदी भाषा में ही बनाई गई।

हिंदी सिनेमा में साहित्य के योगदान की बात करते हैं तो पहली बार हिंदी सिनेमा में स्थापित लेखक के रूप में कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद का प्रवेश हुआ। वर्ष 1933 में हिंदी के सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यकार प्रेमचंद की कहानी पर मोहन भवनानी के निर्देशन में फिल्म 'मिल मजदूर' बनी। 1934 में प्रेमचंद की ही कृतियों पर 'नवजीवन' और 'सेवासदन' बनीं। भगवतीचरण वर्मा, पांडेय बेचन शर्मा, फणीश्वरनाथ 'रेणु', अमृतलाल नागर, चतुरसेन शास्त्री जैसे साहित्यकारों की रचनाओं पर भी फिल्में बनीं। आर के नारायण के उपन्यास 'गाइड' पर फिल्म बनी। फिल्म में देव आनंद राजू गाइड की भूमिका में थे, वहीं वहीदा रहमान एक कुशल नर्तकी और पति द्वारा उपेक्षित महिला रोजी के किरदार में थीं।

1962 में आई फिल्म 'साहिब बीवी और गुलाम' लेखक बिमल मित्र के उपन्यास पर आधारित थी। कोलकाता की जमींदार पृष्ठभूमि पर आधारित इस फिल्म को बेहद पसंद किया गया। गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी द्वारा लिखित गुजराती उपन्यास 'सरस्वतीचंद्र' पर आधारित फिल्म 1968 में बनी थी। इसमें नूतन लीड रोल में थी। इस फिल्म का विषय जागीरदारी प्रथा पर आधारित था। 1977 में बनी सत्यजीत रे निर्देशित फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी' प्रेमचंद की लघु कहानी पर आधारित थी। यह फिल्म 1857 की क्रांति के आसपास के दौर की कहानी कहती है। इसमें अमजद खान, संजीव कुमार, सईद ज़ाफरी के साथ शबाना आजमी और टॉम अल्टर मुख्य भूमिका में थे।

जानी–मानी लेखिका अमृता प्रीतम के उपन्यास 'पिंजर' पर इसी नाम से फिल्म बनी। बंटवारे के दौरान हुए सामाजिक उथल–पुथल, प्यार और नफरत पर आधारित इस फिल्म को बेहद पसंद किया गया, वहीं फणीश्वर नाथ 'रेणु' की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर बनी फिल्म 'तीसरी कसम' वहीदा रहमान और राज कपूर के अभिनय से जीवंत हो उठी थी।

निर्देशक विशाल भारद्वाज की फिल्म 'मकबूल' शेक्सपीयर के नाटक 'मैकबेथ' पर आधारित थी। वहीं 'ओंकारा', 'ऑथेलो' पर और हैदर, 'हैमलेट' पर आधारित थी। इसी तरह फिल्म 'सात खून माफ' रस्किन बॉन्ड की कहानी 'सुजैनाज सेवेन हस्बैंड' पर बनी थी।

अगर हम बात करें सिनेमा के समाज पर प्रभाव पर तो सिनेमा का प्रभाव समाज पर कैसा पड़ता है, यह हमारी मानसिकता पर निर्भर करता है। सिनेमा में प्रायः अच्छे एवं बुरे दोनों पहलुओं को दर्शाया जाता है। समाज यदि बुरे पहलुओं को आत्मसात् करे, तो इसमें सिनेमा का क्या दोष है। विवेकानंद ने भी कहा था– "संसार की प्रत्येक चीज अच्छी है, पवित्र है और सुंदर है यदि आपको कुछ बुरा दिखाई देता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह चीज बुरी है। इसका अर्थ यह है कि आपने उसे सही रोशनी में नहीं देखा।"

सामाजिक बुराइयों को दूर करने में सिनेमा सक्षम है। दहेज प्रथा और इस जैसी अन्य सामाजिक समस्याओं का फिल्मों में चित्रण कर कई बार परंपरागत बुराइयों का विरोध किया गया है। समसामयिक विषयों को लेकर भी सिनेमा–निर्माण सामान्यतया होता रहा है।चूँकि सिनेमा के निर्माण में निर्माता को अत्यधिक धन निवेश करना पड़ता है, इसलिए वह लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से कुछ ऐसी बातों को भी सिनेमा में जगह देना शुरू करता है, जो भले ही समाज का स्वच्छ मनोरंजन न करती हो, पर जिन्हें देखने वाले लोगों की संख्या अधिक हो ।

हिंदी फ़िल्मकारों ने भारतीय स्त्री के लगभग सभी रूपों को फिल्मों में प्रस्तुत किया है। घरेलू स्त्री, कामकाजी स्त्री, किसान स्त्री, विवाहित और अविवाहित स्त्री, जुझारू स्त्री, संघर्षशील स्त्री और अन्याय–अत्याचार से लड़ने वाली स्त्री आदि रूप हिंदी फिल्मों में प्रमुख रूप से आते रहे हैं। राजकपूर द्वारा निर्मित 'प्रेमरोग' (1982) (जैनेंद्र जैन के.के. सिंह) में आभिजात्य परिवार की विधवा युवती 'मनोरमा' (पद्मिनी कोल्हापुरी) का विवाह सामान्य वर्ग के युवक 'देवधर' (ऋषि कपूर) से करवाकर वर्ग–वैषम्य को मिटाने की पहल की की गई है। इस फिल्म में एक ओर वर्ग–संघर्ष है तो दूसरी ओर आभिजात्य परिवारों में प्रच्छन्न रूप से प्रचलित स्त्री–शोषण का घिनौना रूप भी अनावृत्त हुआ है। ये फिल्में संदेशात्मक फिल्में हैं। इसी श्रेणी में आर. के. फिल्म्स के बैनर तले बनी फिल्म 'प्रेमग्रंथ' (जैनेंद्र जैन) भी आती है जो कि बलात्कार पीड़ित स्त्री के उत्पीड़न और परिणामों को दर्शाती है। इस फिल्म के माध्यम से ऐसी स्त्रियों को समाज में स्वीकार करने की पहल की गई है।

प्रकाश झा ने 1985 में 'दामुल' बनाई जिसमें अमीर लोगों द्वारा गरीबों का शोषण

दिखाया गया है। 'दामुल' के जरिए गाँव की पंचायत, जमींदारी, सवर्ण तथा दलित–संघर्ष की नब्ज को उन्होंने छुआ है। इसके पश्चात् 'मृत्युदंड' में उन्होंने ग्रामीण वातावरण में स्त्री के यौन शोषण और कर्मकांडी धार्मिक व्यवस्था द्वारा स्त्री की दुर्गति के प्रयासों के विरुद्धस्त्रियों के संघर्ष को दर्शाया है। यह फिल्म सामाजिक और लिंग अन्याय पर एक टिप्पणी है।

महबूब खान द्वारा निर्देशित तथा लिखित फिल्म 'मदर इंडिया' भारतीय किसान तथा नारी के संघर्ष और त्रासदी की महागाथा है। यह ग्रामीण महाजनी–सभ्यता की क्रूरता और अत्याचार से लड़ती हुई नारी की मार्मिक कहानी भी है। जमींदारी अन्याय से लड़ते–लड़ते गाँवों में डाकुओं की जमात भी तैयार होती है। ग्रामीण सामंती अत्याचार से उत्पन्न डाकू समस्या को उजागर करने वाली फिल्मों में भी यह शामिल है। 'मुझे जीने दो' (सुनील दत्त– वहीदा रहमान) अघजानी कश्मीरी द्वारा लिखित, 'गंगा जमुना' (दिलीप कुमार–वैजयंती माला) लेखक दिलीप कुमार, शेखर कपूर की 'बैंडिट क्वीन' (सीमा बिस्वास)माला सेन, जिस 'देश में गंगा बहती है' (राजकपूर–पद्मिनी–प्राण) प्रमुख हैं।

समकालीन समय में 'उरी द सर्जिकल स्ट्राइक' (आदित्य धर), 'थप्पड़', लेखक अनुभव सिन्हा (फिल्म और लोकप्रिय ऑस्ट्रेलियाई टेलीविजन शृंखला 'द स्लैप' (टीवी शृंखला) के बीच उल्लेखनीय समानताएँ हैं,जो स्वयं2008 के उपन्यास 'द स्लैप' पर आधारित हैं जिसके लेखक हैं क्रिस्टोस त्सोलकास। लिंग भेदभाव, पितृसत्ता में फँसे पारंपरिक समाज के लिए हमेशा एक बड़ी चुनौती के रूप में देखा गया है। अनुभव की फिल्म 'थप्पड़' ने इसी पुरुष विशेषाधिकार को चुनौती दी है, जिसे हमारा समाज लंबे समय से एन्जॉय करता हुआ नज़र आ रहा था। फिल्म में घरेलू हिंसा जैसी सामाजिक कुरीति पर गहनता से चर्चा की गई है और बताया गया है कि यदि कहीं घरेलू हिंसा होती है तो उसके कई आयाम या ये कहें कि अलग–अलग दृष्टिकोण होते हैं।

2021 में आई फिल्म 'शेरशाह' विक्रम बत्रा की एक प्रेरक कहानी है। इसमें कारगिल युद्धमें शहीद हुए युवा परमवीर चक्र विजेता कप्तान विक्रम बत्रा के जीवन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया गया है।

पैड मैन, (आर. बल्कि स्वानंद किरकिरे) यह फिल्म अरुणाचलम मुरुगनथम की वास्तविक जीवन की कहानी से प्रेरित है, जिन्होंने कम लागत वाले सैनिटरी पैड बनाने की मशीन का आविष्कार किया था। मुरुगनथम ने एक ऐसी मशीन का निर्माण किया था जो सैनिटरी नैपकिन्स सस्ते दाम में उत्पादित करती थी। उनको इस आविष्कार के लिए पदमश्री से भी नवाजा गया था।

'टॉयलेटः एक प्रेम कथा', 'तारे ज़मीन पर' आदि आधुनिक फ़िल्में बेहिचक और बिना संकोच आम आदमी की मनोवैज्ञानिकता के दरवाज़े खटखटाती हैं। इसीलिए ऐसी फ़िल्में बेहद पसंद की जाती हैं जो सच्चाई को बेपरवाह, बेखटके सबके सामने लाती हैं और साधारण व्यक्ति के दिल में घुसकर उसे सोचने–समझने पर मजबूर कर देती हैं। आज के दौर में कई ऐसी फ़िल्में बनी हैं तथा बन रही हैं जिनका आधार या लक्ष्य आम आदमी को जागरूक करना है। इस समय, मैं आपके सामने आज के दौर की कुछ फिल्मों के नाम रख रही हूँ ।

'पीके' फिल्म पर आरोपित विवादों की बात छोड़ दें तो यह बहुत खूबसूरती से व मनोरंजक ढ़ंग से आदमी के हृदय में गहराया हुआ अपनी असफलताओं और कमजोरियों का डर दर्शाती है। यह फिल्म बताती है कि कैसे यह डर मनुष्य को भगवान पर या ढोंगी साधुओं पर निर्भर रहने पर मजबूर कर देता है। कहीं न कहीं हर व्यक्ति स्वयं यह जानता है कि इसमें कुछ गलत है। परंतु उसके अंदर का भय उसे अपनेआप या समाज से विद्रोह करने की अनुमति नहीं देता। 'पीके' जैसी

फ़िल्में उसकी सुप्त अंतरात्मा पर दस्तक देती हैं, उसे संबल और साहस देती हैं। यह फ़िल्म उसे बताती है कि यह उसकी अकेले की समस्या नहीं है। पता नहीं कितने और इसके शिकार हुए हैं। हाथ पर हाथ धरकर बैठने की बजाय यदि कुछ किया जाए तो उसके साथ–साथ समाज का भी भला होगा।

'ए वेडनेस्डे' फिल्म आतंकवाद जैसा मुद्दा उठाती है जिसे सामान्यतया और अनन्य रूप से सरकार की समस्या मानकर आम आदमी सरलता से अपने दायित्वों से हाथ झाड़ लेता है। यह फिल्म व्यक्ति को अपनी इस सोच पर पुनर्विचार करके, एक साधारण व्यक्ति को उसकी ताकत का अहसास करवाती है। इस फिल्म के ख़त्म होते ही हर दर्शक अपने आपको कहीं बहुत ज्यादा सबल और सक्षम महसूस करता है। यह फिल्म आतंकवाद, जो एक जोंक की तरह खून चूसकर पूरे विश्व को सुरक्षा कवच टूटने के भय से ग्रस्त कर रहा है उसे खींचकर निकाल फेंकने का सुगम रास्ता दिखाती है।

'हिंदी मीडियम' फिल्म उच्च वर्गों द्वारा निम्न–वर्ग के अधिकार को हड़पने के षड्यंत्र पर आधारित है, पर इसमें दो ऐसे वर्ग को दिखाया गया है जो शिक्षा के लिए संघर्षरत है। एक वर्ग जो सभी प्रकार से संपन्न है, वह शिक्षा को पाने के लिए निम्न वर्ग का व्यक्ति बनने का नाटक करता है और दूसरा वह वर्ग जो निम्न वर्ग का होते हुए शिक्षा के द्वारा उच्च–वर्ग में सम्मिलित होने का आकांक्षी है। भारतीय समाज स्वतंत्रता के पूर्व वर्ण पर आधारित था। समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्धनामक वर्णों में बाटा गया था। स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान में सभी के साथ एक जैसा व्यवहार करने के लिए कानून का निर्माण किया गया सभी के लिए समान रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य और क्षमता अनुसार रोजगार उपलब्ध करवाने का सरकार द्वारा वादा किया गया पर देखते ही देखते सरकार का यह वादा सिर्फ छलावा साबित हुआ। शिक्षा के क्षेत्र ने दो प्रकार के समाजों का निर्माण किया। एक शिक्षा समाज के उन लोगों को सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाओं से संपन्न और सुसज्जित इमारतों में दी जाती है जिनकी संख्या समाज में सिर्फ पाँच प्रतिशत है। दूसरी शिक्षा किसी टूटी, बरसात में पानी की बूँद टपकती सरकारी इमारत या फिर किसी पेड़ के नीचे समाज के पचानवें प्रतिशत लोगों को दी जाती है। शिक्षा का यह विभेद आगे चलकर विद्यार्थियों में हीनभावना के जन्म का कारण बनता है। संपूर्ण फिल्म समाज के दो ऐसे वर्ग का चित्रण करती है जो आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा को पाने के लिए संघर्षरत हैं।

'टॉइलेटः एक प्रेम–कथा हमारी समाज की एक मूलभूत समस्या पर उँगली रखती है। भारत सहित अनेक देशों में लोग आज भी खुले में शौच का प्रयोग करते हैं। जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता है लोग सुविधानुसार पुराने विचार छोड़कर नए विचार को अपनाने लगते हैं। यही समाज के विकास का क्रम है। इस प्रक्रिया में कभी–कभी नए विचार या संस्कृति को अपनाने में हम शर्म या गर्व का अनुभव कर सकते हैं। भारत में अंग्रेजी शासन के आने पर यहाँ के कुछ लोग उनकी संस्कृति को अपनाकर एक तरफ गौरवान्वित हो रहे थे वहीं कुछ के लिए यह शर्म की बात थी। यह फिल्म एक ऐसी नायिका पर आधारित है जिसकी ससुराल में टॉयलेट नहीं है जिसकी वजह से वह अपनी ससुराल छोड़कर मायके चली आती है। नायक को, नायिका को वापस लाने के लिए अपने घर में टॉयलेट बनवाना पड़ता है।

'टॉयलेट एक प्रेम– कथा' श्री नारायण सिंह द्वारा निर्देशित साल 2017 में आई हिंदी भाषा की कॉमेडी–ड्रामा फिल्म है। यह फिल्म भारत में स्वच्छता की स्थिति में सुधार करने के लिए सरकारी अभियानों के समर्थन में एक व्यंग्यपूर्ण कॉमेडी है, जिसमें खुले में शौच के उन्मूलन पर जोर दिया गया है, खासकर ग्रामीण इलाकों में। फिल्म भारत की शौचालय समस्या पर प्रकाश डालती है। आज भी भारत

में बहुत से ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालय नहीं हैं। यदि हैं भी तो साझे, जहाँ गली, मोहल्ले के सभी लोग जाते हैं। और तो और, शर्म के कारण महिलाएँ इसे इस्तेमाल नहीं करतीं। उनके लिए शौचालय है दूरदराज के खेत या जंगल या कंटीला या सुनसान इलाका। कई

बार यही यौन उत्पीड़न का कारण बनता है। यह एक बुनियादी जरूरत है, जिसका इस फिल्म ने संदेश दिया है।

'न्यूटन' सिनेमा के माध्यम से फिल्मकार ने भारत में विभिन्न जाति, समुदाय, धर्म और मान्यताओं के जो लोग रहते हैं; उनको अभिव्यक्ति दी है। जिन्हें सामाजिक रूप से उपेक्षित किया जाता है फिल्मों में उनकी मान्यताओं या व्यवहारों को किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति मिलती रही है। ऐसा कहा जाता है कि भारतीय फिल्मों में भारतीय समाज का दर्शन होता है। एक हद तक यह सही भी हो सकता है। पर भारतीय समाज में जितनी विविधता और विस्तार है ये फिल्में उसके संपूर्ण अंश का भी चित्रण करने में सफल नहीं हुई हैं। अधिकतर भारतीय फिल्मों में समाज के कुछ प्रतिशत लोगों का ही चित्रण हो पाया है। समाज का अधिकांश हिस्सा अभी भी इसकी पहुँच से छूटा हुआ है। हाशिये के समाज पर बनने वाली फिल्मों को आज भी उँगलियों पर गिना जा सकता है।

'न्यूटन' फिल्म का आरंभ ही आदिवासी इलाके में चुनाव प्रचार के दौरान नेता की हत्या से होता है। नेता की हत्या करने वाले कौन लोग हैं? वे इस प्रकार नेता की हत्या क्यों करते हैं? इस हत्या के पीछे किसकी चाल है? फिल्म इन सभी प्रश्नों को दर्शकों को सोचने के लिए छोड़कर आगे बढ़ जाती है। हमारी सरकार इस प्रकार की हत्या करने वालों को नक्सली कहती है और अपने इस अभियान में वह आए दिन नक्सलियों को पुलिस मुठभेड़ में मारती रहती है। इस फिल्म में इस समाज की शांति को भंग करने वाले कारक तत्वों को बहुत ही सूक्ष्मता से उकेरा गया है।

अनुषा रिजवी निर्देशित फिल्म 'पीपली लाइव' किसानों की व्यथा–कथा को सम्मुख लाती है,

'स्वदेश' फिल्म का मोहन नासा जैसी स्पेस एजेंसी को छोड़कर अपने वतन लौट आता है, वह भारत को उस ऊँचाई पर ले जाने का स्वप्न देखता है जहाँ से भारत की गरिमा बनी रहे। फिल्म में शिक्षा–व्यवस्था, जातिप्रथा, छुआछूत, ऊँच–नीच का भेदभाव, बाल–विवाह, स्त्री शिक्षा, बाल मजदूरी, गाँवों की बदहाल स्थिति, बेरोजगारी, सामाजिक विकास के कार्य, राजनीति, पंचायतों की रिवायतें, बिजली की समस्या आदि पर प्रकाश डाला गया है।

सुप्रसिद्ध फिल्म 'लगान' का नायक भुवन भारत के उस आम आदमी का प्रतीक है, जिसके पास अंग्रेजों से लड़ने के लिए कोई भी हथियार नहीं है। लेकिन वो अपने आत्मबल के भरोसे ऐसे लड़ाई लड़ता है, जिसके बारे में कोई सोच भी नहीं सकता। एक आम आदमी हमेशा एक मौके की तलाश में रहता है, क्योंकि उसे जीत की आस हमेशा मौका मिलने पर ही नसीब हो सकती है। भुवन के साथ भी कुछ ऐसा ही था। उसके पास सिर्फ एक मौका है जीतने का...और हार के कई मौके हैं। लेकिन हार से बेफिक्र भुवन अपनी मिट्टी व अपने लोगों के लिए आखिरी वक्त तक लड़ता है और अपनी कभी न हार मानने वाली जिद की वजह से ही जीतता है।

खिलाड़ियों पर आधारित फिल्में भी बहुत बन रही हैं। महिला खिलाड़ियों पर बनी फिल्मों में 'मैरी कॉम' एक ऐसी फिल्म है जिसमें स्त्री की जिजीविषा और प्रगतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। 'मैरी कॉम' उन तमाम औरतों के लिए एक प्रेरणा की तरह है जिनके जीवन में सिर्फ अभाव है। शून्य से शिखर तक पहुँचने की कहानी को ,उनके संघर्षों से यह फिल्म परिचित कराती है। 'मैरी कॉम'से पहले मिल्खा सिंह के जीवन पर 'भाग

मिल्खा भाग' का निर्माण हो चुका था लिहाजा उससे भी तुलना हुई है।

'पिंक' सिनेमा के बारे में कहा जा सकता है कि लंबे समय बाद कोई ऐसी फिल्म रिलीज हुई, जिसने बिना कोई भाषण दिए सीधे लोगों के दिलो–दिमाग को झकझोर कर रख दिया। फिल्म कई सवाल खड़े करती है। जैसे–गलती किसी की भी हो, लेकिन इल्जाम हमेशा लड़की पर आता है। हमेशा उसके कैरेक्टर पर ही उँगली उठाई जाती है। उसे ही कहा जाता है कि अपनी इच्छाओं को मारो। ऐसे कई सवाल, जो आपको सोचने पर मजबूर कर देते हैं। हम अपने लड़कों को क्या सिखा रहे हैं, बजाय लड़कियों को समझाने कि हम लडक़ों से ये क्यों नहीं कह सकते कि औरतों की 'न' की भी उतनी ही इज्जत करो, जितनी आप उनकी 'हाँ' की करते हो।

'विकी डोनर', 'मद्रास कैफे', 'पान सिंह तोमर', 'गैंग ऑफ वासेपुर', 'अलीगढ़', 'बर्फी', 'लंच बॉक्स', 'पीकू', 'मसान', 'एनएच 10', 'उड़ान', 'मुक्ति भवन', आँखों देखी जैसी बेहतरीन फिल्मों के विषय इतने अनोखे थे जिन पर फिल्म बनाने की सहज आवश्यकता थी।

'तारे ज़मीं पर' साल 2007 में आई फिल्म ईशान के जीवन और कल्पना की खोज करती है, जो एक 8 वर्षीय डिस्लेक्सिक बच्चा है। वह कला में उत्कृष्ट है, उसके खराब शैक्षणिक प्रदर्शन से उसके माता–पिता उसे एक बोर्डिंग स्कूल में भेजते हैं। ईशान के आर्ट टीचर को पूरा विश्वास है कि ईशान डिस्लेक्सिक है और वो इसे दूर करने में उसकी मदद कर सकते हैं। दर्शील सफरी 8 वर्षीय ईशान के रूप में, और आमिर खान ने कला शिक्षक की भूमिका निभाई। फिल्म स्पेशल चाइल्ड की जरूरतों के बारे में है।

'दामिनी' राजकुमार संतोषी द्वारा निर्देशित साल 1993 में रिलीज यह फिल्म अपराध ड्रामा है। इस फिल्म में दिखाया गया है कि कैसे एक महिला न्याय के लिए समाज से लड़ती है। यह फिल्म बॉलीवुड में अब तक बनी महिला केंद्रित फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ है।

'मातृभूमिः ए नेशन विदआउट वुमन' सामाजिक मुद्दे यानी कन्या भ्रूण हत्या पर आधारित यह फिल्म देश के भविष्य को दिखाती है। यदि लड़कियों को मारते रहे तो वो दिन दूर नहीं जब देश ही नहीं रहेगा। आज भी भारत में कई जगहों पर लड़कियों को जन्म के समय ही मार दिया जाता है। यह फिल्म एक लड़की की कहानी के इर्द–गिर्द घूमती है, जिसकी शादी पाँच भाइयों से होती है। फिल्म क्रूर समाज की झलक दिखाती है और एक बच्ची को बचाने का संदेश देती है।

कुछ फिल्में हमें बहुत प्रेरित करती हैं और कभी–कभी यह हमारे जीवन को भी बदल देती हैं और हमें नई आशा से भर देती हैं। कुछ फिल्में हमारे समाज में वर्जनाओं पर एक व्यंग्य के रूप में बनती हैं जो हमें अपनी मानसिकता बदलने और समाज में बदलाव लाने में मदद करती हैं। फिल्मों को स्ट्रेस बस्टर यानी तनाव को ख़त्म करने के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि हम खुद को भूल जाते हैं और दूसरी कहानी में जीते हैं, जो कभी हमें हँसाती भी है और कभी हमें रुलाती भी है। कुछ लोगों को फिल्मों की लत लग जाती है और यह अच्छी बात नहीं है क्योंकि सब कुछ एक सीमा में होना चाहिए। किसी भी चीज की अधिकता स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।वे फिल्म में सब कुछ दिखाते हैं जैसे नशा, शराब, आदि; कभी–कभी युवाओं और छात्रों को इन चीजों से खतरा होता है और यह उनके जीवन को बुरी तरह प्रभावित करता है। इस चर्चा से यह भी स्पष्ट है कि फिल्में विभिन्न श्रेणियों की होती हैं और कुछ वयस्क फिल्में बच्चों को बुरी तरह प्रभावित करती हैं। इसलिए, बच्चों को सुरक्षित रखने के लिए माता–पिता को हमेशा उन पर नज़र रखनी चाहिए।

❑❑❑

यात्रा वृत्तांत

धौलाधार पर्वत श्रृंखला की गोद में स्थित–बौद्ध आध्यात्मिकता का प्रवेश द्वार– रमणीय पर्वतीय स्थल मैकलोडगंज (मिनी ल्हासा)

प्रदीप शर्मा 'स्नेही'

माँ प्रकृति ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों को मनमोहक व नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्यावलियों के रूप में प्राकृतिक संपदा के अकूत भंडार का एक विशाल भाग मुक्तहस्त होकर प्रदान किया है। हिम मंडित शुभ्र धवल पर्वतीय चोटियाँ, हरीतिमा से आप्लावित छोटी–बड़ी पहाड़ियाँ, सघन वन, आकर्षक झीलें, छोटे–बड़े अनेक खूबसूरत झरने, पशु–पक्षी, पुष्प–वृक्ष वैविध्य, सभी कुछ तो है हमारे भारत में।

बात अगर पर्वतीय स्थलों की जाए तो उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक देश के सभी क्षेत्रों में एक से बढ़कर एक पर्वतीय पर्यटन स्थल विद्यमान हैं। विभिन्न राज्यों के ये लोकप्रिय पर्यटन स्थल प्रतिवर्ष लाखों देशी–विदेशी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यूँ तो विभिन्न प्रदेशों के पर्यटन स्थलों की तुलना करना बेमानी है क्योंकि हरेक का अपना अलग ही वैशिष्ट्य है पर हिमाचल प्रदेश की बात ही अलग है। देवभूमि हिमाचल में पग–पग पर खूबसूरत नज़ारे विद्यमान हैं इस विशुद्ध पहाड़ी प्रदेश में स्थित अनेक पर्वतीय पर्यटन स्थल वर्षभर पर्यटकों को अपनी ओर लुभाते रहते हैं। कसौली, नाहन, रेणुका नोहराधार, सोलन व बड़ोग से लेकर कुल्लू, मनाली, मंडी, चंबा, डलहौजी, पालमपुर, कांगड़ा, अंद्रेटा, लाहौल–स्पीति, धर्मशाला, मैकलोडगंज, बैजनाथ, सराहन, रामपुर बुशहर, रिकांगपियों से कल्पा तक अनेक पर्यटन स्थल हिमाचल प्रदेश के मुकुट में जड़ित बेशकीमती रत्न हैं।

यात्राओं का चस्का तो विद्यालयीन जीवन में ही लग गया था। फिर महाविद्यालय से विश्वविद्यालय तक यात्रा का कोई भी अवसर हाथ से जाने न दिया। शोध का कार्यक्षेत्र कुमायूं गढ़वाल का भू–भौतिकीय अध्ययन होने के कारण समय–समय पर 'फील्ड ट्रिप' पर जाने के अवसर मिलने के कारण यह साध पूरी होती रही। शिक्षकीय जीवन में विद्यार्थियों के साथ भी खूब घूमा। जैसे ही प्राचार्य के रूप में दायित्व संभाला इस शौक पर कुछ समय के लिए विराम लग गया। कार्यकाल के पहले छह वर्ष पूर्णतः महाविद्यालय को समर्पित कर दिए। एक भी अवकाश नहीं लिया। पत्नी व बच्चे भी नाराज थे। बच्चों ने मित्रों के साथ जाना आरंभ कर दिया। सेवाकाल का मात्र एक वर्ष ही बचा था तभी दोनों बच्चों ने एक योजना के तहत जून की तपती गर्मियों में एक दिन दिल्ली मैकलोडगंज रात्रिकालीन बस सेवा के दो टिकट हम दोनों पति–पत्नी के

हाथों में थमा दिए। पत्नी की खुशी का पारावार न था। मुझे भी तीन–चार दिन का अवकाश लेने के लिए बाध्य होना ही पड़ा। मन ही मन खुशी भी थी। मैकलोडगंज जाने की बरसों की इच्छा जो पूर्ण होने जा रही थी। बौद्ध–आध्यात्मिकता के इस प्रवेश द्वार की यात्रा करने के लिए मन लालायित हो उठा।

'दिल्ली–मैकलोडगंज' रात्रिकालीन बस सेवा की बस दिल्ली से लगभग 7:00 बजे रवाना होती है। रास्ते में कहीं से भी चढ़ें पर किराया दिल्ली से मैकलोडगंज का ही देना पड़ता है। हम पति–पत्नी को अंबाला छावनी से सवार होना था। हम रात्रि लगभग दस बजे छावनी पहुँच गए थे। दोनों पुत्र हमें छोड़ने आए थे। बस सही समय पर आ गई थी और हम रात्रि साढ़े दस बजे बस में सवार हो गए थे कुछ देर बाद ही नींद ने हमें अपने आगोश में ले लिया था। लगभग 8–9 घंटे की यात्रा के बाद जैसे ही आँख खुली, हमें बताया गया कि हम मैकलोडगंज बस स्टैंड पहुँचने वाले हैं। लगभग 300 किलोमीटर की यात्रा कर प्रातः 6:00 बजे हम धर्म की नगरी आ पहुँचे थे। बस स्टैंड पर उतरते ही ठंडी, ताजी हवा के झोकों ने हमारा स्वागत किया। पहाड़ी वृक्षों की गंध ने हमें तरोताजा कर दिया था। हम पूर्व निर्धारित होटल में पहुँच गए थे। थोड़ा विश्राम किया। लॉबी में चाय पीते–पीते मेरी नज़र एक काउंटर के पास रखी अलमारी में मैकलोडगंज के बारे में लिखी एक किताब पर गई। जिज्ञासावश मैंने कुछ पन्ने पलटे।

मैकलोडगंज को 1850 में अंग्रेजों–सिखों की दूसरी लड़ाई के बाद पंजाब के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर सर डोनाल्ड मैकलॉयड ने खोजा और बसाया। अंग्रेजों ने यहाँ प्रशासनिक दफ्तरों के साथ–साथ एक सहायक छावनी भी स्थापित की। दरअसल मैकलोडगंज धर्मशाला शहर के ऊपरी भाग में बसा हुआ है जिसे अपर धर्मशाला भी कहते हैं। लोअर धर्मशाला ही आज की धर्मशाला है। धर्मशाला से मैकलोडगंज की दूरी लगभग 9 किलोमीटर है। 1904 तक धर्मशाला व मैकलोडगंज तरक्की करते हुए व्यापार के केंद्र बिंदु बनने के साथ–साथ कांगड़ा जिले के प्रशासनिक कार्यों के महत्वपूर्ण केंद्र बिंदु भी बन गए थे। 1905 में कांगड़ा के विनाशकारी भूकंप में सब तहस–नहस हो गया। सब गतिविधियाँ ठप्प हो गईं। लगभग 44 वर्ष तक मैकलोडगंज गुमनामी के अंधेरे में रहा। 1947 में अंग्रेज़ों के जाने के बाद तो यह और भी वीरान हो गया। इसे भुतहा शहर कहा जाने लगा।

भूकंप के 45 वर्षों के एक लंबे अंतराल के बाद मैकलोडगंज एक बार पुनः चर्चा में आया जब भारत सरकार ने तिब्बत से निष्कासित तिब्बतियों व उनके पूज्य आध्यात्मिक गुरु 14वें दलाई लामा को यहाँ बसने की अनुमति दी। कालांतर में यह एक तिब्बती प्रशासनिक धार्मिक केंद्र के रूप में विकसित होता गया। दलाई लामा के आशीर्वाद व प्रेरणा से तिब्बतियों ने मैकलोडगंज को एक खूबसूरत छोटे से शहर में परिणत कर दिया। 1850 में अंग्रेजों के समय में 10–12 घरों से आरंभ हुआ यह शहर आज एक प्रसिद्ध पर्वतीय पर्यटन स्थल में परिवर्तित हो चुका है। 1960 से अब तक दलाई लामा तिब्बत की निर्वासित सरकार का संचालन यहाँ से कर रहे हैं।

मैकलोडगंज के इतिहास में जाने के बाद अब यहाँ के दर्शनीय स्थलों को देखने की इच्छा बलवती हो गई। हमने पूरे दिन के लिए

एक टैक्सी की व्यवस्था कर ली। चीड़ और देवदार के वृक्षों से घिरे मैकलोडगंज के आसपास अनेक दर्शनीय स्थल हैं। हम सबसे पहले यहाँ के प्राचीनतम सेंट जॉन चर्च के दर्शन करना चाहते थे।

सेंट जॉन चर्च

मैकलोडगंज से नड्डी गाँव व डल लेक जाने वाले रास्ते पर स्थित 168 वर्ष पुराने, सेंट जॉन चर्च में चलने के कुछ ही समय बाद हम पहुँच गए थे। इसे 'सेंट जॉन चर्च इन वाल्डरनेस' भी कहा जाता है। इसका कारण है जब यह चर्च बना तब यहाँ घना जंगल था। गोथिक पद्धति से 1852 में बना यह कलात्मक चर्च सेंट जॉन को समर्पित है। खिड़कियों में लगे रंगीन काँच पर उकेरी गई सेंट जॉन के जीवन से संबंधित पेंटिंग्स दर्शनीय हैं। रंगीन काँच की ये दोनों खिड़कियाँ बेल्जियम काँच से बनी हैं उन्हें भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड एल्गिन की पत्नी कांउटेस ऐल्गिन द्वारा भेंट किया गया था। लॉर्ड ऐल्गिन को 1863 में मृत्यु के बाद चर्च परिसर में ही दफन कर दिया गया था। आज भी यहाँ स्कॉटलैंड के लॉर्ड ऐल्गिन का सुंदर स्मृति स्थल विद्यमान है जिसे संरक्षित स्मारक का दर्जा दे दिया गया है। कहते हैं कि अगर लॉर्ड ऐल्गिन कुछ वर्ष और जीवित रहे होते तो शिमला के स्थान पर धर्मशाला अंग्रेजों की गर्मियों की राजधानी होती। इस ऐतिहासिक और आज भी मज़बूती से खड़े चर्च के दर्शन कर इसके प्राचीन शिल्प सौंदर्य से अभिभूत हम अगले गंतव्य की ओर चल पड़े।

नड्डी गाँव

सेंट जॉन चर्च के दर्शन के बाद हम धीरे–धीरे 7000 फीट से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित नड्डी गाँव की ओर चल पड़े। चीड़ के पेड़ों से आती वनैली खुशबू मदमस्त किए दे रही थी। प्राकृतिक दृश्यावलियों की सुंदरता में स्नान करते हम लगभग आधा घंटे के बाद मैकलोडगंज से तीन–चार किलोमीटर की दूरी पर प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थित नड्डी गाँव जा पहुँचे। दरअसल यह एक छोटा सा गाँव है जहाँ से धौलाधार पर्वत श्रृंखला के हिममंडित शिखरों के दर्शन किए जा सकते हैं। यहाँ स्थित नड्डी व्यूप्वाइंट से हमने भी शुभ्र श्वेत हिममंडित हिमालय के दर्शन किए। नड्डी से सुंदर प्राकृतिक दृश्यावलियों के दर्शन सुलभ होने के कारण आसपास कुछ होटल भी अस्तित्व में आ गए हैं। व्यूप्वाइंट के पास कुछ चाय व खाद्य सामग्री की दुकानें हैं। हमने भी वहाँ अदरक की गरमा–गरम चाय का आनंद लेते हुए प्राकृतिक सुषमा का भरपूर आनंद लिया।

डल लेक

आधा घंटा नड्डी गाँव में रुककर हम वापस लौट पड़े। रास्ते में तोतारानी गाँव के पास चीड़ और देवदार के वृक्षों से घिरी एक खूबसूरत झील को देखकर हम अपने वाहन से उतरने का लोभ संवरण न कर सके। झील का नाम जानकर आश्चर्य हुआ। डल झील के नाम से विख्यात इस झील का नामकरण कश्मीर की श्रीनगर स्थित विख्यात डल झील के नाम पर हुआ है। मैकलोडगंज से लगभग नौ किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह झील बरसात के दिनों में पानी से लबालब भर जाती है। यहाँ पर्यटक बोटिंग का भी आनंद उठाते हैं। झील के किनारे पर स्थित भगवान शिव का मंदिर झील को अतिरिक्त पवित्रता प्रदान करता है। सितंबर माह में यहाँ एक मेला लगता है जो पर्यटकों व श्रद्धालुओं को यहाँ

की लोकसंस्कृति से रूबरू करवाता है। भले ही हिमाचल की डल झील का विस्तार कश्मीर की डल जितना न हो पर हरे–भरे ऊँचे पेड़ों से घिरी इस खूबसूरत पहाड़ी झील का सौंदर्य मंत्र–मुग्ध तो कर ही देता है। दम साधे हम भी कुछ देर तक प्रकृति की इस अनुपम भेंट को निहारते रहे। डल लेक विहार के बाद अब हम मैकलोडगंज के दूसरी ओर स्थित प्रसिद्ध भागसुनाग मंदिर जाने वाले थे।

प्राचीन भागसुनाग मंदिर

देव भूमि हिमाचल में अनेक स्थानों पर देवी–देवताओं के मंदिर हैं जहाँ प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु आकर श्रद्धावनत होते हैं। ऐसा ही एक प्राचीन प्रसिद्ध मंदिर मैकलोडगंज से लगभग दो–तीन किलोमीटर की दूरी पर धौलाधार पहाड़ियों की खूबसूरत ढलानों पर स्थित भागसुनाग मंदिर है। हज़ारों वर्ष पुराना यह मंदिर 1905 के भूकंप में ध्वस्त होने के बाद पुराने वैभव को प्राप्त नहीं कर पाया है। भगवान शिव के इस प्राचीन मंदिर में कुछ पुरानी व कुछ नई प्रतिमाएँ हैं। कुछ चित्र भी लगे हुए हैं। यहाँ एक स्वच्छ जल कुंड है जिसमें पर्यटक स्नान कर धन्य होते हैं। जल कुंड में पानी का स्रोत यहाँ से एक–दो किलोमीटर ऊपर की ओर स्थित भागसुनाग जलप्रपात है। पानी अत्याधिक ठंडा होने के कारण हमने स्नान तो नहीं किया अलबत्ता हाथ–मुँह धोकर थोड़ा पुण्य अवश्य कमा लिया। कुछ पर्यटक तो यहीं से लौट जाते हैं। हमने थोड़ी सी हिम्मत की और अन्य कुछ उत्साही पर्यटकों के साथ हम लगभग 20–25 मिनट में भागसुनाग जलप्रपात तक पहुँच गए। कुछ देर वहाँ बैठकर जलप्रपात की ठंडी फुहारों व वनों की जाती बयार का आनंद लिया। चारों ओर का दृश्य सम्मोहित करने वाला था। कहते हैं कि अगर वर्षा ऋतु में यहाँ आएँ तो यहाँ का जादुई सौंदर्य बरबस ही अपने मोहपाश में बाँध लेता है। प्रकृति प्रेमियों के लिए यह स्थान प्रकृति के अनमोल उपहार की मानिंद है।

दिन ढलने लगा था। बर्फीली चोटियों को नहलाती और चाँदी का सा भ्रम पैदा करती सूरज की रश्मियाँ जलप्रपात के जल को सुनहरा रंग प्रदान करती प्रतीत हो रहीं थीं। इस खूबसूरत दृश्य को देखकर मन मयूर नर्तन करने लगा। प्रकृति की इस लीला में हम देर तक खोए रहे। लौटने का समय हो गया था। शाम गहराने लगी थी। आज की यात्रा समाप्त कर हम जल्दी ही मैकलोडगंज लौटना चाहते थे। नीचे पहुँचकर हमने वापसी यात्रा आरंभ कर दी।

तिब्बती संस्कृति

भागसुनाग मंदिर से लौटकर कुछ देर हमने होटल में विश्राम किया और फिर निकल पड़े मैकलोडगंज के बाज़ार की रौनक देखने और पेट पूजा करने के लिए। 1960 में जब तिब्बती धर्मगुरु दलाई लामा (तेन जिन ग्यात्सो) और उनके अनुयायियों ने मैकलोडगंज को अपनाया, मैकलोडगंज धीरे–धीरे तिब्बतमय होता चला गया। 6831 फीट की ऊँचाई पर स्थित लगभग 11000–12000 की आबादी वाले इस छोटे से कस्बे में बौद्ध मठों, मंदिरों, विद्यालयों, बाज़ारों व खान–पान पर तिब्बती कला व संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। बाज़ार में हमें तिब्बती कलाकृतियों व खान–पान से जुड़ी अनेक दुकानें व रेस्तरां दिखाई पड़े।

यूँ तो मैकलोडगंज में 'कॉमन ग्राउंड कैफे', 'ट्रैक एंड डाइन', 'निक इटालियन किचन', 'क्रीप पैन केक हट' आदि कई

प्रतिष्ठित रेस्तरां हैं जहाँ कश्मीरी, नेपाली, इटालियन, इज़राइली, जापानी आदि विविध प्रकार की भोजन सामग्री उपलब्ध है पर हमारा मन देशी तिब्बती रेस्त्रां में तिब्बती खाने का स्वाद लेने का था। तिब्बती देसी व्यंजनों के लिए 'तिब्बती किचन', 'मंडाला कैफे', 'पीस कैफे', 'नोरलिंग', 'नामग्याल कैफे', 'पेमांग यांग वेज कैफे' व 'गेकी तिब्बती फूड' आदि कई छोटे–छोटे रेस्तरां प्रसिद्ध हैं। पहले एक बार यहाँ आ चुके पुत्र प्रणव के सुझावानुसार हमने 'गेकी तिब्बती फूड' रेस्त्रां में दस्तक दी। प्रसिद्ध तिब्बती व्यंजनों में थेनथक सूप (सामिष भोजियों के लिए), मोमोज़, तिब्बती रोटी, बोक चॉय सूप व थुकपा (नूडल्स सूप) सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। शाकाहारी होने के कारण हमने सबसे पहले बोक चॉय सूप लिया। स्वाद थोड़ा अलग–सा था पर अच्छा लगा। तिब्बती रोटी पहली बार खाई। उसका अपना अलग ही वैशिष्ट्य है। मोमोज़ और थुकवा नूडल्स सूप तिब्बत के सर्वाधिक लोकप्रिय व्यंजन हैं। इनके बिना तिब्बती भोजन संपूर्ण नहीं माना जाता और जहाँ भी तिब्बती गए इन्हें भी साथ ले गए। नॉनवेज डिश होने के कारण थुकवा तो हमने नहीं लिया अलबत्ता मोमोज़ का भरपूर मजा लिया। विशेषकर पालक वाले मोमोज़, मिर्च की तीखी चटनी के साथ हमने भरपेट खाए। भाप में पकने के कारण ये स्वास्थ्य को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते। दरअसल मोमोज़ उत्तरी भारत में होली के अवसर पर बनने वाली खोए वाली मीठी भरवाँ गुझिया का ही दूसरा रूप है। बस खोए व मेवों के स्थान पर सब्ज़ियों की फिलिंग कर ली जाती है और तलने के स्थान पर भाप में पकाई जाती है। यह बात और है कि मैकलोडगंज में कुछ स्थानों पर तले हुए मोमोज़ भी उपलब्ध हैं। गेकी तिब्बती भोजनालय से पूर्ण तृप्ति के बाद हमने उसकी तिब्बती मालकिन के साथ एक यादगार चित्र भी खिँचवाया। उनकी मेजबानी दिल को छू गई। उनका मातृ सुलभ व्यवहार व सौम्य मुस्कान आज भी हमें भुलाए नहीं भूलती आज भी हमें उनकी याद आती है तो आँखें नम हो जाती हैं।

दिनभर की थकान के बाद जल्दी ही हमें नींद ने आ घेरा। सुबह हम देर तक सोते रहे। पेड़ों से छनकर आती सूरज की रश्मियों और पक्षियों के मधुर कलरव से आँखें खुलीं। दिन चढ़ आया था। तरोताज़ा होकर नाश्ते के लिए एक बार फिर हम गेकी भोजनालय जा पहुँचे। नाश्ते में घर की बनी आटा ब्रैड पर पीनट बटर लगाकर खाया तो सच मानो स्वाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। विशेष चाय ने हमारे नाश्ते को पूर्णता प्रदान की।

त्रियुंड

स्वप्न नगरी मैकलोडगंज आए हमें दूसरा दिन था। आज हम शाम तक त्रियुंड देख लेना चाहते थे। मैकलोडगंज के आस–पास ट्रैकिंग के शौकीनों के लिए कई रूट हैं इनमें त्रियुंड सर्वाधिक लोकप्रिय है। मैकलोडगंज के लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर स्थित धर्मकोट से चढ़ाई शुरू होती है। युवावस्था में शोध के दौरान यमुना घाटी, भागीरथी घाटी व टौंस घाटी में ट्रैकिंग का विस्तृत अनुभव मेरे पास था पर अनीता जी के साथ होने और आयु थोड़ी अधिक हो जाने के कारण एक बार तो झिझक हुई। फिर मन बना ही लिया कि जहाँ तक संभव होगा, चले जाएँगे, फिर वापस लौट आएँगे। धर्मकोट तक टैक्सी में गए और आगे का सफर पैदल पूरा करने के लिए सन्नद्ध हो गए।

धर्मकोट से त्रियुंड लगभग चार घंटे का सफ़र है। रास्ते में उत्साही ट्रैकर्स का आवागमन जारी था। वे हमारा उत्साह बढ़ाते रहे। साफ़ स्वच्छ वातावरण में नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव से आनंदित होते, प्रकृति की अनुपम छटा को निहारते, धीरे–धीरे हम आगे बढ़ते रहे। चार घंटे की अपेक्षा छह घंटे में अंततः हम त्रियुंड पहुँच ही गए। चीड़, देवदार व अन्य पेड़ों के घने जंगलों से होते हुए यहाँ पहुँचना एक रोमांचक अनुभव था। ऊपर पहुँचकर खूबसूरत कांगड़ा घाटी व दर्शनीय धौलाधार पहाड़ियों के मनोरम दृश्य देखकर हृदय कमल खिल उठा। प्रकृति के अद्‌भुत सौंदर्य को देखकर हमने दाँतों तले उँगली दबा ली थी। हम दम साधे प्रकृति के असीम वैभव को एकटक निहारते रहे। जोरों की भूख लग आई थी त्रियुंड में कुछ अस्थाई दुकानें हैं। हमने पनियाली दाल और चावल से संतोष कर लिया। भूख में गूलर भी पकवान वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। कुछ टेंट भी वहाँ लगे हुए थे। कई ट्रैकर्स यहाँ रात भी बिताते हैं। यहाँ वन विभाग का एक विश्रामगृह भी है। जिसकी अग्रिम बुकिंग कराई जा सकती है। दिसंबर से फरवरी तक हिमपात के कारण यहाँ आना जोखिम भरा है।

दाल–चावल का भोग लगाने के बाद हमने गरमा–गरम चाय पी तो कुछ जान में जान आई। काफी देर तक हम वहाँ बैठे–बैठे चारों ओर प्राकृतिक सौंदर्य को निहारते रहे। अंततः वापस तो लौटना ही था। प्रकृति माँ की नेमत हिमालय की धौलाधार पर्वत श्रृंखला को नमन कर हम धीरे–धीरे वापस लौट चले।

मैकलोडगंज पहुँचते–पहुँचतेरात हो चली थी। त्रियुंड का रोमांचकारी अनुभव हमें लौटने की ताकत देता रहा और साहस का संचरण भी करता रहा। भले ही हम बुरी तरह थक गए थे पर ट्रैकिंग का यह अनुभव जीवन की अमूल्य निधि बन गया था। रात को हमने भोजन जम्बाला गेस्ट हाउस के अपने कमरे में ही मँगा लिया था। थके–मांदे हम खाना खाते ही सो गए थे। अगले दिन प्रातः उठे तो थकान मिट गई थी और हम तरोताज़ा महसूस कर रहे थे। आज मैकलोडगंज में हमारा अंतिम दिन था। आज के दिन हमारा कार्यक्रम दलाई लामा मंदिर और नामग्याल मोनेस्ट्री के दर्शन करने का था।

दलाई लामा मंदिर (नामग्याल मोनेस्ट्री)

मैकलोडगंजमेंस्थापित नामग्याल मोनेस्ट्री को ही आजकल दलाई लामा मंदिर कहा जाता है। नामग्याल तिब्बती में दीर्घजीवी देवता को कहा जाता है। तिब्बत से 1959 में स्थानांतरित होकर तिब्बतियों के धर्मगुरु 14वें दलाई लामा के अपने अनुयायियों के साथ मैकलोडगंज में बसने के बाद से ही यह नन्हा कस्बा तिब्बती संस्कृति व अध्यात्म के विशद केंद्र में परिणत हो गया है। छोटा ल्हासा या ढासा के नाम से तिब्बतियों में लोकप्रिय मैकलोडगंज निर्वासित तिब्बती सरकार का मुख्यालय है। नामग्याल मोनेस्ट्री या दलाई लामा मंदिर परिसर यहाँ का सबसे प्रमुख आकर्षण हैं। हमें भी इस मंदिर के दर्शन की बेताबी से प्रतीक्षा थी। मंदिर स्थानीय बस स्टैंड से कुछ ही दूरी पर स्थित है। दलाई लामा मंदिर को सुगलाखांग मंदिर भी कहा जाता है।

मंदिर में प्रवेश करते ही यहाँ का शांत वातावरण हृदय में एक पुलकन सी जगा देता है। यहाँ का भक्तिमय परिवेश स्वतः स्फूर्त ही मन में विशेष प्रकार की शांति का अहसास

कराता है। मंदिर का सौंदर्य देखकर हम अभिभूत थे। विशेष बात यह है कि इस अद्वितीय मंदिर में दर्शन के लिए किसी भी धर्म व जाति के व्यक्ति निस्संकोच आ सकते हैं। प्रतिवर्ष कुछ विशेष दिनों में दो–तीन बार दलाई लामा भी यहाँ आते हैं। तिब्बती भाषा में अपना प्रवचन देते हैं। मंदिर में शाक्यमुनि बुद्ध, अवलोकितेश्वर एवं पद्मसंभव की भव्य प्रतिमाएँ हैं। मंदिर के पास ही लामाओं के रहने के स्थान हैं। मंदिर में ध्यान लगाते, प्रार्थना चक्र घुमाते और मंत्रोच्चार करते लामाओं को देखना एक सुखद अनुभव था। कुछ देर बैठकर हम भी ध्यान मग्न हुए। मंदिर में विराजमान भगवान बुद्ध की एक भव्य प्रतिमा बरबस ध्यान आकृष्ट करती है। श्रद्धालु एक विशाल हॉल में बैठकर ध्यान लगा रहे थे। 1959 में पचपन की संख्या थी बौद्ध साधुओं की जो अब बढ़कर लगभग 200 हो गई है।

मंदिर में एक विशाल पुस्तकालय भी है। अनेक दुर्लभ पुस्तकें व पांडुलिपियाँ इसकी शोभा बढ़ा रही हैं। पर्यटक भी इनमें से अनूदित पुस्तकों को पढ़ सकते हैं। मंदिर परिसर में ही एक संग्रहालय भी विद्यमान है। संग्रहालय में दलाईलामा के दुर्लभ चित्रों के साथ–साथ तिब्बती संस्कृति से जुड़े चित्रों एवं शहीदों को भी दर्शाया गया है। चित्रों में यह भी दर्शाया गया है कि दलाईलामा तिब्बत से कैसे निकलने में सफल हुए। इन चित्रों को देखकर रोमांच हो आया। तिब्बती संस्कृति से जुड़ी एक लघु वीडियों फिल्म भी यहाँ दिखाई जाती है। इसे देखकर हम भी तिब्बती संस्कृति के कुछ अनछुए पहलुओं से अवगत हुए। सुना था मंदिर से सूर्यास्त का नज़ारा दर्शनीय होता है। हमने भी सूर्यास्त होने तक इंतजार किया। वास्तव में सूर्यास्त का मनोरम दृश्य स्मृतियों में भर लेने वाला था।

नामग्याल मोनेस्ट्री या दलाईलामा मंदिर से लौटते हुए मन प्रातंर पूर्णतया आध्यात्मिकता से सराबोर था। हम दोनों सोच रहे थे कि शायद हमारी मैकलोडगंज यात्रा का चरमोत्कर्ष था– दलाईलामा मंदिर दर्शन। प्रकृति की गोद में बसा मैकलोडगंज अगर हिमाचल का तख्त–ए–ताजस है तो सच मानिए दलाई लामा मंदिर (नामग्याल मोनेस्ट्री) हिमाचल का कोहिनूर है। अनिंद्य प्राकृतिक दृश्यावलियों के दर्शन करने हों, चीड़ देवदार के हरे–भरे जंगलों से गुजरते हुए ट्रैकिंग करनी हो, झीलों व झरनों का मधुर संगीत सुनना हो, पक्षी वैविध्य का अवलोकन करना हो या फिर आध्यात्मिकता के सागर में गोते लगाने हों तो मैकलोडगंज से बेहतर कोई दूसरा स्थान नहीं हो सकता।

❑❑❑

हिंदी कहानी

अफसोस के लिफाफे

सुमन बाजपेयी

शिवचरण तीन–चार दिन से बहुत परेशान हैं। घर में हर जगह कुछ ढूँढ़ते से रहते हैं। हालाँकि, बहुत सामान नहीं है अब घर में। वही कुछ दिनों से चीजें हटाते जा रहे हैं, गैर–जरूरी सामान रखने का फायदा भी क्या। सामान जितना एकत्र करना आसान है, उतना ही मुश्किल है उसकी सार–सँभाल करना। साफ–सफाई के साथ–साथ पूरी देखभाल करनी पड़ती है। टूट–फूट हो जाए तो मरम्मत कराओ, यहाँ–वहाँ दौड़ते रहो। अब उन्हें न तो इतनी भागदौड़ करने की जरूरत है और न ही उनका मन करता है कुछ करने को। बेशक वे सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हुए, एकदम ठसक से रहते हैं और अपनी जिंदगी में किसी तरह की हील–हुज्जत या अव्यवस्था को जगह नहीं बनाने देते, पर पिछले कुछ समय से यह अव्यवस्था खुद–ब–खुद उनके साथ चहलकदमी करने लगी है। कमरों में हालाँकि चीजें अभी बिखराव की अंतिम स्थिति में नहीं पहुँची हैं, तब भी जो ढूँढ़ रहे हैं, वह मिल ही नहीं रही हैं।

तो क्या उसकी अलमारी में ही हो सकती हैं? पूरे घर में एक वही अलमारी है जिसे खोलने से वह झिझक रहे हैं। न जाने उनके जैसे रफ–टफ इनसान, जैसा कि ऑफिस में और आसपास उन्हें बोला जाता था, उनकी हिम्मत क्यों चुक जाती है उस अलमारी को खोलने के ख्याल से। कठोरता की परतें अचानक उतर कर तब संवेदनाओं की तह लगानी हैं। पहले पूरे घर में ढूँढ़ लें, फिर भी नहीं मिली तो खोल लेंगे अलमारी, लगातार यही बात अपने मन को समझा रहे हैं।

पैंसठ वर्षीय शिवचरण वैसे तो एकदम स्वस्थ हैं और उनकी उम्र के लोग उनकी फिटनेस पर रश्क भी करते हैं पर शरीर से ज्यादा मन की अस्वस्थता से बेचैन हैं इन दिनों। गठा हुआ शरीर है, चाल में भी फुर्ती है। इतनी लंबी पारी खेल चुकने के बावजूद थकावट को अपने पास फटकने नहीं देते हैं। योग भी करते हैं और सैर भी। बड़े सरकारी पद पर थे और नौकरी की पूरी समयावधि के दौरान शान से जिए और अपना रुतबा बनाए रखा और रुआब भी। किसी से दबे नहीं और काम में पक्के होने के कारण, उसूलों पर चलने के कारण दबंग बने रहे। उनके सामने मुँह खोलने से पहले हर कोई दो बार सोचता था। पहले–चाहे ऑफिस में हों या घर के लोग–एकदम सीधे किसी को भी कड़वी बात कहने से भी नहीं चूकते थे वह।

नौकरी के दौरान हमेशा वेलड्रेस्ड रहे। मौसम बदलता तो कपड़ों का स्टाइल भी बदल जाता। सर्दियों में एकदम सूटेड–बूटेड साहब से कम नहीं लगते थे और गर्मियों में खादी की शर्ट और रेमंड के ट्राउजर में एक रोबीले अफसर। रिटायर होने के बाद से उन्होंने अपने पहनावे में बदलाव कर लिया। खादी की शर्ट की जगह कुर्ते ने ले ली और

ट्राउजर की बजाय पजामा पहनने लगे। किसी फंक्शन में जाना होता तभी सूट पहनते और पूरी नवाबी शान के साथ तैयार होकर जाते। घर पर सादगी से रहने लगे थे, हालाँकि रुआब पूरा रखते थे, जिसे सहने के लिए पत्नी ही थी।

दोनों बेटे विदेश में बस चुके थे और वापस आने को तैयार नहीं थे और शिवचरण के साथ रहने को तो बिल्कुल भी नहीं। बड़े बेटे का विवाह हो चुका था, छोटा शादी करना जरूरी नहीं मानता था। बेटे अकसर माँ से कहते बचपन में बहुत सह ली इनकी डाँट और रौबअब वे अच्छा कमाते हैं और उनकी अकड़ को सहने को तैयार नहीं और पत्नी.... वह तो चालीस वर्षों से सह रही थीं। इसे शिवचरण का स्वभाव मानते हुए। जल्दी उम्र में शादी हो गई थी, इसलिए कमलेश ढल गईं जैसे उन्हें ढाला गया, लेकिन शिवचरण जिंदगी भर उनसे लड़ते ही रहे... वजह, बिना वजह किस बात पर, क्यों... पता नहीं... बस लड़ते रहे, उन्हें बात–बात पर झिड़कते रहे, मानो ऐसा कर वह अपना पति होने का दायित्व पूरा कर रहे हों, या उनके अंदर ऐसे ही बीज रोपे गए थे कि पत्नी के साथ व्यवहार करने का यही तरीका है। प्यार के एहसास को कराना या महसूस करना जरूरी चीज है, ऐसे ख्याल उनके अंदर पोषित ही नहीं किए गए थे। शादी हुई है, शारीरिक संबंध बनाओ, बच्चे पैदा करो... प्यार...क्या और क्यों...

"हो सकता है उन्हें एहसास ही न होता हो कि वह लड़ रहे हैं। उनकी आदत है ऐसा बोलने की। वैसे मुझे कोई कमी नहीं रखते।'' जब कोई उनसे पूछता कि आखिर कैसे सह लेती हैं वह उनके व्यवहार को तो कमलेश मुस्कुराती हुई कहतीं। साधारण सी महिला थीं, लेकिन शादी के बाद भी समय निकालकर पत्राचार से बी.ए. कर लिया था। पढ़ने का शौक रखती थीं और किताबें, अखबार और पत्रिकाएँ पढ़कर उन्हें सुकून मिलता था या शायद पति से हमेशा झिड़की खाने के बाद वह शब्दों में सुकून तलाशने लगी थीं। सूती साड़ी पहनतीं और बड़ी–सी बिंदी लगातीं। पहले बाल बहुत लंबे थे, पर जब बाल अचानक झड़ने लगे तो उन्होंने कटवा लिए थे, इसलिए माथे पर जब तब लटें झूल जाती थीं। कुल मिलाकर एक सुघड़ गृहिणी, एक अच्छी माँ और पत्नी थीं... पता नहीं शिवचरण मानते थे कि नहीं, पर बाकी दुनिया तो यही कहती थी।

बेटे चिढ़ते थे कि आखिर माँ पलटकर पिता को जवाब क्यों नहीं देतीं... ''एक बार तो उन्हें आप भी झिड़क दो... हो सकता है इससे हमारा जीवन भी सुधर जाए'' वे कहते तो हमेशा की तरह कमलेश मुस्कुरा देतीं और कहतीं, ''डाँटते हैं तो क्या हुआ? वैसे मुझे कोई कमी नहीं रखते। कभी नहीं बोली तो अब क्यों बोल कर अपना दिमाग गरम करूँ? निकल जाएगी बाकी की जिंदगी भी।'' और निकल ही गई थी।

डेढ़ महीना हो गया है उन्हें गए। रात को सोते–सोते ही चली गईं। शिवचरण सुबह उठे और समय पर चाय नहीं मिली तो आदतन चिल्लाने लगे, ''हद हो गई आज। अभी तक सो रही हो। तुम्हें कब से नवाबी सूझने लगी है।'' जब कोई जवाब नहीं मिला तो उन्होंने ध्यान से सोती हुई कमलेश को देखा। कभी इससे पहले उन्होंने कमलेश को सोते देखा हो, याद नहीं। हमेशा उनके जागने से पहले ही उठ जाया करती थीं। तबीयत

खराब हो तब भी अपने दायित्वों को पूरा करने से कमलेश कभी पीछे नहीं हटीं। कभी उनके मुँह से न शिकायतें सुनी थीं और न ही कभी गुस्से से बड़बड़ाते देखा था। अपने में मग्न काम में लगी रहतीं या फिर पढ़ती रहतीं। अपने गुस्से, झल्लाहट या जो मन में आए बोलने की अपनी आदत का कभी प्रतिवाद या कभी उनसे उलझते नहीं देखा था उन्होंने। इस समय क्यों सोच रहे हैं वह यह सब...आज से पहले इस तरह का ख्याल तक उनके मन में नहीं आया था कि उन्होंने कभी पलट कर जवाब तक नहीं दिया। ख्याल आता कैसे? उनके बारे में कभी सोचा था क्या? उनसे कभी जानना चाहा था कि वह क्या चाहती हैं? उनके क्या सपने हैं? उनके हमेशा उन पर चिल्लाते रहने से उनके मन की चौखट पर क्या कभी पीड़ा ने दस्तक नहीं दी होगी? इस समय क्यों मंथन कर रहे हैं वह? कोई डर उन पर प्रहार कर रहा है क्या?

उनका मन हुआ कि जोर से उन्हें झिंझोड़ डालें। क्रोध की ज्वाला बिस्तर की चादर पर सिलवटें बिखेरने लगी। शांत चेहरे पर से उतरती होंठों पर हल्की सी मुस्कुराहट तैर रही थी। बड़ी–सी लाल बिंदी माथे पर गुलाब की पत्ती की तरह लग रही थी। दोनों हाथ एक दूसरे में गुथे हुए छाती पर रखे थे। सूती साड़ी का पल्ला पलंग के नीचे लटका हुआ था। वह इतने क्रोधित हैं, फिर भी उठ नहीं रही हैं। तबीयत शायद ज्यादा खराब हो गई है। हल्के से झिंझोड़ा उन्होंने कमलेश को। बंद आँखों में कोई हरकत नहीं हुई।

शिवचरण उन्हें देखते रहे, ना जाने कितनी देर तक उनके मन में तभी एक ख्याल ने जोर से दस्तक दी... कब देखा था उन्होंने कमलेश को जी भर कर, कब उन्हें अपलक निहारा था, कब उनके रूप को, उनके गुणों को सराहा था। कब उनकी प्रशंसा में दो बोल बोले थे। उन्हें पता क्यों नहीं चला कि उनकी मुस्कान इतनी प्यारी और दिव्य है... उन्होंने कब उसे प्यार से सराबोर किया था।

दरवाजे पर बराबर खटखट हो रही थी। ''मालिक, आज दरवाजा बंद कैसे था?'' कामवाली हैरान थी। ''अरे रसोई घर में मालकिन भी नहीं दिख रही हैं।'' उसका आश्चर्य ऐसा फट रहा था मानो पहाड़ के पत्थर तड़–तड़ कर नीचे गिर रहे हों। इतनी नियम वाली मालकिन का नियम भला कैसे टूटा!

शिवचरण चुपचाप कमरे में लौट आए। कोई प्रतिक्रिया नहीं, मालिक चिल्लाए भी नहीं.. ''हे! राम जी का अनर्थ भया!'' वह उनके पीछे–पीछे कमरे में दौड़ी। एकदम शांत लेटी मालकिन को देख उसके आँसू बह निकले। ''कबहू मालकिन को लेटे नहीं देखा। हे राम जी, का अनर्थ कर दिया। ऐसन दयालु आत्मा को बुला लिया। गईंन तो भी शांत रहीं... पूरा जीवन जैसन बिताया वैसन चली भी गईंन। पुण्यात्मा रहिन।'' दहाड़ें मार–मार कर वह रोने लगी।

बेटे आए... माँ से बेहद जुड़े जो थे, पर पिता की वजह से घर कम ही आते थे। माँ को कितना कहते थे कि उनके साथ चले, पर वह तो पति की सहधर्मिणी थीं... कैसे जातीं उन्हें छोड़कर।

हालाँकि अब की बार बहुत सहजता से चली गई थीं, एकदम सुकून से।

"भाग्यशाली थी, तभी तो इतनी अच्छी मौत पाई।" जो आया उसने यही कहा

बेटे वापस लौट गए। पिता अकेले कैसे रहेंगे यह विचार मन में नहीं आया। न ही

उन्होंने उनसे पूछा कि अकेले कैसे रहोगे, न ही अपने साथ चलने को कहा बहू ने अवश्य ही कामवाली को हिदायत दी कि पापा का ख्याल रखना, समय से सब काम करते रहना, खाना भी अब तुझे ही बनाना होगा।

एक महीना तो शिवचरण को यह समझने और मानने में लगा कि कमलेश अब नहीं है। काम समय पर ना होने पर आदतन चिल्ला उठते तो ध्यान आते ही चुपचाप अपनी आराम कुर्सी पर जाकर बैठ जाते। बेटों केमुँह से सुने शब्द अकसर उन्हें झिंझोड़ देते।

''इन्हें कौन–सा फर्क पड़ेगा? कौन–सा माँ से प्यार करते थे। हाँ! अब इनकी झिड़कियाँ सुनने वाला, इनका रुआब और अकड़ सहने वाला बेशक कोई नहीं रहा इनके अहं की तुष्टि कैसे होगी अब?''

'सच में ऐसा है क्या?' फिर ना जाने मन में क्या आया कि ढूँढ़ने में लग गए। कमलेश के साथ उनकी खिंची कोई फोटो। उन दोनों के साथ–साथ कोई फोटो...हाँ याद आया... कमलेश की भाँजी की शादी में गए थे गाँव। वहाँ भी पूरा समय मुँह फुलाए घूमते रहे थे कि कहाँ उनके जैसे अफसर को इस गाँव की गंदगी में ले आई है। हालाँकि उनकी साली ने उनके ठहरने की व्यवस्था सरपँच की कोठी में की थी, पर फिर भी वह बात–बात पर कमलेश को झिड़कते ही रहे थे। कमलेश की भाँजी ने ही जिद करके उन दोनों की एक फोटो खिंचवाई थी साथ–साथ। एक अपने और अपने दूल्हे के साथ खिंचवाई थी, जिसे वह सबसे बड़ा ड्रामा मानते थे। फोटो खिंचवाते समय वह मन ही मन माँ–बहन की गालियाँ निकाल रहे थे। वे सभ्य और शालीन हैं, यह हमेशा जताने के लिए वह कभी भी मुँह पर किसी को गाली नहीं देते थे। यह बात सबके मन में अचरज भी पैदा करती थी कि उन्हें कभी गाली देते नहीं देखा, कमलेश को भी नहीं। पर जब भी अकेले होते वह खूब गालियाँ निकाल कर निगली हुई गालियों को थूक देते थे। वे दोनों फोटो उसने डाक द्वारा भेजी भी थीं। न जाने कहाँ रखी गई हैं। पूरा घर छान मारा। अब कोई विकल्प नहीं, उन्हें कमलेश की अलमारी में झाँकना ही होगा। भूख लगने लगी थी, पर अभी पहले ढूँढ़ लें वह फोटो को नहीं तो बेचैनी बनी रहेगी। इन दिनों वैसे ही लापरवाह हो गए हैं अपने पहनने और खाने को लेकर।

काँपते हाथों से उन्होंने अलमारी खोली। महसूस हुआ कि कमलेश के हाथों का स्पर्श, उसके शरीर की खुशबू, सब उसमें घुली–मिली है। उसके जाने के बाद, आज वह अलमारी खुल रही थी। सब चीजें करीने से लगी थीं, मानो उन्हें पता हो कि जाने का समय आ गया है, इसलिए व्यवस्थित कर जाएँ सामान को। साड़ियाँ, ब्लाउज, पेटीकोट गड्डी बनाकर रखे हुए थे। लॉकर में आभूषण थे, नीचे के हिस्से में किताबें भी नजर आईं उन्हें। कमलेश की जरूरत का हर सामान था... कितनी कम जरूरतें थी उसकी, अलमारी देख कोई भी अंदाजा लगा सकता था। अलमारी की ऊपरी दो दराजों को भी खोल डाला उन्होंने। एक में एल्बम थी बड़े बेटे की शादी की। और भी ढेर सारी फोटो देख उम्मीद जागी शिवचरण के मन में। ना, वह फोटो है ही नहीं इनमें। दूसरी दराज खींच कर बाहर ही निकाल लाए और पलंग पर बैठ गए।बस एक पोटली है। जयपुर गए थे तो वही लाए थे उनके लिए यह पोटलीनुमा पर्स चमकते शीशों और खूब सारे रंगीन धागों की कढ़ाई वाला... इसमें तो रुपए ही रखे होंगे... खूब

बचाती जो थीं। पोटली को उलट दिया उन्होंने। ढेर सारे लिफाफे... कौतुक की असंख्य कंकड़ियाँ टप–टप कर पानी में गिरने लगीं। हर लिफाफे के अंदर एक कागज रखा था। अब तो संशय के असंख्य पत्थर लहरों से टकराने लगे... कौन सा राज है जिससे वह अंजान थे जाने किसकी होंगी वे चिट्ठियाँ... उनके जीवन में कोई और भी था क्या? मन का क्या... संदेह सबसे पहले फन उठाता है।

पहला कागज खोला, फिर दूसरा, तीसरा...ढेर लग गया कागजों का पलंग पर। शिवचरण की आँखों में नमी उतर आई। वह हर कागज पर ऐसे हाथ फेर रहे थे मानो उन्हें सहलाने भर से जिंदगी के हर उस पल को जी लेंगे जो वह कमलेश के साथ रहते हुए भी उसके संग जी नहीं पाए थे, या जीना चाहिए ऐसा ख्याल भी मन में नहीं आया था।

कमलेश ने कब लिखीं इतनी चिट्ठियाँ... वह जान ही नहीं पाए कि वह उन्हें इतना प्यार करती थी। नहीं, गलत तो वह सोच रहे हैं, उन्होंने नहीं समझा उनके प्यार को। प्यार भी एक खूबसूरत एहसास है, यह उनके जैसा शुष्क, हमेशा अपनी अकड़ में रहने वाला इनसान समझ भी कैसे सकता है। वह जो कुछ उनके लिएकरती थीं, उसे केवल वह पत्नी का कर्तव्य मानते थे और अपेक्षा रखते थे कि वह ऐसा करें, उन्हें करना ही चाहिए। पर क्या उन्होंने कभी सही मायने में पति धर्म निभाया? बेशक घर–गृहस्थी से जुड़ी जरूरतें पूरी कीं, पर कमलेश को कभी प्यार से देखा भी हो, उन्हें याद नहीं। उनके जिस्म का स्पर्श करते हुए भी अपने प्यार के रेशे उसके मन के भीतर रोपे हों, और तरंगित की हों असंख्य कोंपलें।

चिट्ठियों को कब वह सहलाने लगे थे, उन्हें पता ही नहीं चला। या शायद कमलेश को महसूस करने की कोशिश कर रहे थे।

चिट्ठियों में लिखा था कि उनके जाने के बाद में वह अपना ख्याल रखें, उनकी चीजें कहाँ रखी हैं, कब और क्या उन्हें खाना है, उनके कपड़ों के बारे में, उनकी दवाईयाँ, हर छोटी–छोटी सी चीज के बारे में लिखा था जिसके बारे में कभी शायद उन्होंने सोचा भी नहीं होगा। और भी कुछ ऐसा लिखा था, जिसकी वह सपने में भी उम्मीद नहीं कर सकते थे, कमलेश से तो बिल्कुल भी नहीं। एक सीधी–सादी, मामूली–सी गृहिणी जिसने कभी महत्वाकांक्षाओं की बेल छूने की इच्छा जाहिर नहीं की, जिसने कभी नहीं जताया कि उसकी पलकों के भीतर भी सपने पलते हैं, जिसने कभी पता नहीं लगने दिया कि उसके भीतर भावनाओं का सैलाब हिलोरें मारता है, वह इन लिफाफों के अंदर दिल की स्याही से मन की परतों को यूँ भी उधेड़ कर रख सकती है...

"मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है, लेकिन जब मैं ब्याह कर आई थी तो मेरा मन भी करता था कि मेरी पायल की रुनझुन सुनकर आप मुझे नजरें उठाकर देखें, मेरे आलता लगे पाँवों को निहारें। मेरा भी मन करता था कि जब मैं कपड़े सुखाने छत पर जाऊँ तो आप किसी बहाने से वहाँ चले आएँ और भीगे कपड़ों की कुछ बूंदें मेरे चेहरे पर डाल दें और पानी की बौछारें मुझ पर फेंक मेरे साथ अठखेलियाँ करें। मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है, लेकिन जब मैं आपके घर में रम गई थी तो मेरा मन भी करता था कि आप

मेरे साथ बैठकर खाना खाएँ, आप मेरे साथ बैठकर बातें करें। मैं आपसे छोटी–छोटी बातें करना चाहती थी, अपनी कहना और आपकी सुनना चाहती थी। पूरे दिन मैंने क्या किया, बच्चों ने क्या किया, मैं कहना चाहती थी। मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है, लेकिन जब हमारे बच्चे हो गए तो मेरा मन भी करता था कि आप बच्चों के साथ खेलते–खेलते मुझे हल्के से छू जाएँ और कहें कि देखो ना बच्चे कितने प्यारे हैं तुम पर जो गए हैं। उनके साथ बैठे–बैठे थोड़ा सा मुझे छेड़ दें, मेरी बाँहों में चिकोटी काट लें या मेरी साड़ी के पल्लू को ही अपनी उँगलियों पर लपेट लें। मुझे आप से कोई शिकायत नहीं है, लेकिन चाहती थी कि एक बार तो आप मेरी प्रशंसा करें। कहीं जाएँ तो एक बार मुझे जी भर कर देखकर कहें कि तुम आज बहुत सुंदर लग रही हो, कि तुम पर यह साड़ी बहुत अच्छी लगती है, कि तुम पर यह रंग बहुत खिलता है। मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है, लेकिन जब उम्र बढ़ने लगी मन की चाहतें ना जाने कैसी हो गईं और मुझे लगने लगा कि अब तो आप मेरे पास बैठेंगे। मुझसे कहेंगे कि तुमने कितने अच्छे से घर को सँभाला। तुमने बच्चों को कितने अच्छे संस्कार दिए, तुम्हारे बिना मैं कितना अधूरा हूँ। तुम्हारी वजह से ही मैं बेफिक्र होकर दूसरे शहर में रहकर काम कर सका। नहीं, मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है। लेकिन आजकल दिल करता है कि मैं आपकी आरामकुर्सी के पास एक कुर्सी डालकर खामोशी से बैठी रहूँ। ना कुछ करूँ, ना कुछ कहूँ। थक गई हूँ, यह मैं नहीं कहना चाहती। क्यों कहूँ? आखिर परिवार तो मेरा है, मुझे इसे सँभालना ही है। मुझे आप से कोई शिकायत नहीं है, बस यही चाहती हूँकि अब कुछ पल अपने लिए, अपने साथ गुजारूँ।"

शिवचरण रो रहे थे, उन्हें खुद पर हैरानी हो रही थी। आँसू....उनकी आँखों से निकल रहे हैं... वह कमलेश पर कितना निर्भर थे, यह तो उसके जाने के बाद ही उन्हें समझ आया था वरना सारी जिंदगी यही रुआब झाड़ते रहे थे कि उनके बिना कमलेश का कोई वजूद नहीं है। वजूद तो उनका नहीं है उसके बिना। कैसे सब कुछ सह लेती थी वह... तभी तो बना रहा उनका वजूद... वह फिर से उठकर उस फोटो को ढूँढ़ने लगे।

❑❑❑

<u>हिंदी कहानी</u>

दहशत

भगवान अटलानी

वातावरण में डर था। कोरोना से अधिक वायरस से संक्रमित हो जाने का आतंक सता रहा था। न टीका, न दवा, अँधेरा ही अँधेरा था। दुनिया का हर कोना भ्रमित था। हर एक बड़ा–छोटा, प्रभुत्व संपन्न, ग़रीब, विकसित–अविकसित, उन्नत–पिछड़ा देश हो या व्यक्ति, निरुपाय महसूस कर रहा था। तीसमार खाँ माने जाने वाले से लेकर मुखापेक्षी महाद्वीप, सब अज्ञात त्रास में डूबे थे। अस्पताल, उपकरण, विशेषज्ञ चिकित्सक, सुविधायुक्त प्रणालियाँ, शरीर का ज़र्रा–ज़र्रा खंगालने में सक्षम जाँचें और बीमे मुँह चिढ़ाने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पा रहे थे। बार–बार साबुन से हाथ धोना, सैनेटाइज़र, मास्क, दो गज़ की दूरी, कर्फ़्यू और लॉकडाउन के सिवाय कोई हथियार नज़र नहीं आ रहा था। हवाओं में शोर था कि समाचार पत्र के पन्नों पर अदृश्य कोरोना वायरस पंख पसारे बैठा है, कि खाँसीऔर छींक कोरोना के वाहन बने हुए हैं, कि ज़ुकाम या गले में ख़राश कोरोना के आगमन की दस्तक हैं।

रात के साढ़े आठ बजे थे। मोबाइल की घंटी बजी। स्क्रीन पर दिशा का नाम चमक रहा था। दिशा? उसका फ़ोन कैसे आया है? कोई अनहोनी तो नहीं हो गई? आशंकित धड़कनों में डूबते उतरते फ़ोन उठाया, ''हैलो!''

''लॉकडाउन हो गया है। आप आए नहीं अब तक?''

''रात को बारह बजे से है न लॉकडाउन? दुकान समेटकर डेढ़–दो घंटे में आता हूँ।''

''जल्दी आओ न?'' दिशा की आवाज़ भयाक्रांत थी।

''बच्चे आ गए?''

''हाँ, दोनों को फ़ोन करके मैंने बुला लिया है। आप आइए, मुझे डर लग रहा है।''

''डरो मत, बच्चे हैं न तुम्हारे पास? दुकान न जाने कितने दिन बंदरखनी पड़ेगी। हिसाब–किताब, माल–असबाब, सहेज–संवार, अलमारियों के ताले–चाबी चाक–चौबस्त करके, जितनी जल्दी मुमकिन होगा, आ जाऊँगा। तुम चिंता मत करो।''

''देखना......।'' घबराहट से सने अनकहे शब्द मोबाइल में समा नहीं रहे थे।

''आता हूँ, जल्दी आता हूँ।''

हमेशा असहमति, अवज्ञा, तिरस्कार और तुनकमिज़ाजी से लबरेज़ स्वर चिंतातुरता में कैसे बदल गया? लॉकडाउन ज़रूर अब हुआ है मगर क्या कोरोना वायरस की दहशत लॉकडाउन की घोषणा भर से इतनी बढ़ गई थी दिशा के भीतर? उसका स्वर मोबाइल पर शायद ही कभी सुनने को मिलता था।

आमने–सामने होने वाली हर बात बारूद की गंध में लिपटी होती थी। वही दिशा भयभीत हिरणी की तरह मानो विलाप की भाषा बोल रही थी। किसी ने बढ़ा–चढ़ाकर कुछ कह तो नहीं दिया? पास–पड़ोस में किसी की कोरोना के कारण अचानक मौत तो नहीं हो गई? दिशा की मनोवृत्ति में आए परिवर्तन का कारण ठीक तरह से समझ में नहीं आया उसे।

घर पहुँचते–पहुँचते साढ़े ग्यारह बज गए। इस बीच दिशा का दो बार फ़ोन आ गया। हर बार आजिज़ी का जीवंत रूप था उसका लहज़ा। कोई दूसरा दिन होता तो दिशा की मनःस्थिति से विचलित होकर आगा–पीछा सोचे बिना वह घर लौट जाता। मगर लॉकडाउन की घोषणा के कारण इस बार सब कुछ सामान्य नहीं था। पूरा ध्यान दिशा की ओर, शरीर दुकान पर और मन प्रश्नों के मकड़जाल में उलझा था।

हमेशा घंटी बजने के बाद दरवाज़ा खुलने में कम से कम तीन–चार मिनट लगते थे। इस बार लगा, दिशा दरवाज़े से चिपककर खड़ी आहट का इंतज़ार कर रही थी। बच्चे अंदर कमरे में थे। उसके साथ या आसपास होते तब भी शायद यही करती। बेसाख़्ता लिपट गई उससे और रोने लगी। एक हाथ में दुकान से साथ लाया थैला सँभालते हुए, दूसरे हाथ से वह दिशा की पीठ को सहलाता रहा इसी अवस्था में अंदर आकर दिशा को अपने साथ सोफ़े पर बैठाकर उसने बेटे को बुलाकर पानी लाने का इशारा किया। हाथ में पकड़ा थैला उसने सोफ़े पर अपने पास रखा। बेटा फुर्ती से गिलास भर लाया तो एक हाथ से पीठ सहलाते हुए ही दूसरे हाथ से उसने दिशा के मुँह से पानी भरा गिलास लगाया। कुछ बच्चों की उपस्थिति के कारण और कुछ उसके लौट आने के अहसास से सँभली दिशा ने गिलास अपने हाथ में लेकर पानी पीया। होंठों पर हल्की मुस्कान के साथ आँखों में विस्मय और प्यार भरकर वह दिशा को निहारता रहा।

दिशा ने उसकी तरफ देखा और अपनी अधीरता को याद करके चुपचाप उठ खड़ी हुई। हाथ आगे बढ़ाकर उसने दिशा को फिर से अपने पास बैठाया, ''क्या बात है? बहुत डर लग रहा है?''

''हाँ... नहीं...।'' वह एकाएक उठकर तेज़ी से चली गई।

सड़कों पर सन्नाटा पसरा था। पक्षियों की चहचहाट और वातावरण में रची बसी सांय–सांय से निकटता, जीवन का अनिवार्य अंग बन गई थी। आना–जाना, मिलना–जुलना पूरी तरह बंद था। दूध, सब्ज़ी और ज़रूरी सामान की खरीदारी के अलावा घर का दरवाज़ा लाँघना भी वर्जित था। दूरदर्शन पर 'रामायण' और 'महाभारत' की पुनर्प्रसारित हो रही शृंखला थी। बाहर की मानसिक और शारीरिक हलचल सिकुड़कर परिवार के इर्द–गिर्द घूम रही थी। ताली, थाली, टॉर्च, दीपक, मोबाइल की तेज रोशनी जैसे आह्वानों ने ज़रूर सरसता के रंग भरे थे, अन्यथा ख़ामोशी और उदासी के साथ जीवन जीने की विवशता सर्व स्वीकार्य हो गई थी।

दुकान के गल्ले में रखी पूरी नक़द राशि वह अपने साथ ले आया था। सुरक्षा और भविष्य की आर्थिक आवश्यकताओं के मद्देनज़र यह क़दम ज़रूरी लगा था उसे। वैसे ए.टी.एम. कार्ड था। बैंक अकाउंट में रुपए इतने थे कि तंगी झेलने की सँभावना नहीं थी। लेकिन ए.टी.एम. या बैंक तक जाना दूभर

था। सड़कों पर पुलिस थी। पुलिस के सवालों से जूझते–उलझते, बैंक में जमा अपनी राशि तक हाथ को पहुँचाना सरल नहीं था। गनीमत थी कि थैले में लाई गल्ले की रक़म अच्छा ख़ासा सहारा बनी हुई थी अन्यथा मुश्किलें सिर से ऊपर चली जातीं।

बंद ट्रेनों, बंद बसों, बंद आवागमन के अन्य साधनों, एक से दूसरे स्थान पर पलायन करते मज़दूरों के समाचार, भूख और बदहाली की डराने वाली घटनाएँ, फ़िज़ाओं में थीं। वह सपरिवार घर में सुरक्षित था। पत्नी, बच्चे साथ थे, ज़रूरतें पूरी हो सकें, रोजमर्रा का काम चल जाए, इतना नक़द रुपया पास था। दौर का यह सबसे बड़ा वरदान उसे मिला हुआ था। भोजन के पैकेटों और राशन की राह नहीं तकनी पड़ती थी।

अख़बार न आ रहा था और न उसके पन्नों से चिपकी कोरोना की उपस्थिति की झूठी–सच्ची अफ़वाह के कारण उसमें रुचि थी मगर घर में उपलब्ध दूरदर्शन पर सूचनाओं का अंबार था। आकाशवाणी से नियमित समाचारों के स्थान पर, कोरोना से जुड़ी जानकारियाँ दी जा रहीं थीं। बढ़ता संक्रमण, बढ़ती मौतें, वेंटीलेटरों और पी.पी.ई. किटों की कमी के फ़ोन और व्हाट्सएप पर उड़ते, पंख पसारते वास्तविक, काल्पनिक किस्से वायरल हो रहे थे।

लॉकडाउन की घोषणा के बाद उसके मन में कोरोना से भी बड़ा डर दिशा के व्यवहार के संदर्भ में था। लॉकडाउन का मुक़ाबला करने में वह सक्षम था। घर में रहना पड़ेगा। वायरस पर किसी का वश नहीं चल पा रहा था, मगर कहीं आ–जाकर घर के माहौल से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं था। दिशा की तुनक मिज़ाजी लॉकडाउन के दौर में कैसे जीने देगी, यह प्रश्न सामने खड़े यक्ष को मौजूदा हालात से अधिक भयावह बनाकर प्रस्तुत कर रहा था उसके ज़हन में। लॉकडाउन की घोषणा के बाद बार–बार आए दिशा के फ़ोन उसके असमंजस को गहरा कर गए थे। घर आने के बाद दिखाई दी दिशा की मानसिकता ने आशंकाओं को ऐसी धुंध के हवाले कर दिया था जिसके उस पार देखना संभव नहीं था।

घर में क़ैद थे। बस चार चेहरे थे, जिन्हें देखना था घूमफिर कर। लगा था, दिशा के व्यवहार के कारण एक–एक पल गुज़ारना दूभर हो जाएगा किंतुऐसानहीं हुआ। सबको बैठाकर समवेत् स्वरों में हनुमान चालीसा और सुंदर काँड के पाठ। 'रामायण' और 'महाभारत' के दूरदर्शन पर आने वाले कार्यक्रमों में सहभागिता। साथ बैठकर किया गया दोपहर और रात का भोजन। शाम को किसी स्वादिष्ट मिठाई या इडली सांभर या डोसा या पिज़्ज़ा या केक की स्नेहपूर्ण प्रस्तुति। चिंतापूर्वक पलक नोक की खुर्दबीन लगाकर की गई साज़–सज्जा। आत्मीयता का प्रतिपल सुनाई देता आलाप। दिशा का दिनचर्या संयोजन विस्मय का कारण होते हुए भी, समय का सच था।

दिशा में आए बदलाव का कारण कुछ भी रहा हो मगर घर के बाक़ी तीनों सदस्य पिघला–पिघला अनुभव कर रहे थे। घर के काम का पूरा बोझ खुशी से उठाते हुए हम लोगों की प्रसन्नता के लिए वह जो कुछ कर रही थी, उसका असर पाँव पसार रहा था। दिशा ने न संकेत दिया और न ज़बान से कुछ बोली या शिकायत की, फिर भी तीनों उसकी जिम्मेदारियों में हाथ बँटाने की कोशिश करने लगे। झाड़ू, पोंछा, बर्तन, कपड़े, फ़र्नीचर की

साफ़–सफ़ाई, कपड़ों की धुलाई और इस्त्री, बिस्तर समेटने, चादरे बदलने, तकियों पर गिलाफ़ चढ़ाने के साथ नाश्ता, दोपहर और रात का भोजन तैयार करने, मनभावन व्यंजन और मिठाईयाँ बनाने वाली दिशा अकेली क्यों पिसती रहे?

घर बैठे हैं तो हम लोग भी क्यों न कुछ करें? एक–दूसरे से चर्चा किए बिना हम तीनों ने घर के कामों में हाथ बँटाना शुरू कर दिया था। ना–ना के बावजूद दिशा को मिल रही ख़ुशी, चमक भरी मुस्कान बनकर उसके चेहरे पर नाचने लगती थी। उऋण होने का अहसास संतोष से भर देता था उन तीनों को।

बस, घरेलू ज़रूरतें पूरी करने के लिए बाहर निकलने का प्रसंग आते ही दिशा बैचेन होने लगती थी। हर बार हिदायतों को दोहराने के साथ जाने से पहले मास्क और लौटने के बाद साबुन से हाथ धोने की प्रक्रिया सुनिश्चित करती। दूध लाने में दस मिनट लगें या सब्ज़ी लाने में आधा घंटा और सौदा सुलफ़ लाने में एक घंटा, उसके फ़ोन आते रहते। सावधानी बरती जा रही है, या नहीं, पूछती रहती। उसका हर प्रश्न चिंता के समुद्र की झलक होता। पति या बच्चे सुरक्षित रहें, कोरोना की चपेट में न आएँ, समझ में आ सकती थी, दिशा की अतिरिक्त सजगता यदि यह पहले वाली दिशा नहीं होती, जिसे अब तक वह देखता रहा था।

एक–आध बार झिड़ककर, एक से अधिक बार प्यार से, नाराज़गी ज़ाहिर की, ''मैं दुकान चलाता हूँ। दुनियादारी, बुरा–भला समझता हूँ अपना। पीछे क्यों पड़ी रहती हो हर वक़्त?''

वह ख़ामोश रहती। न स्पष्टीकरण देती, न अपराध–बोध जाहिर करती और न भविष्य में ऐसा कुछ न करने का आश्वासन देती। इस प्रतिक्रिया को सुनकर दिशा न मुस्कुराती और न असहज दिखती। उल्टा उसके व्यवहार में रोक–टोक का अंश बढ़ जाता। फ़ोन कॉल अधिक हो जाते। पहली और अब वाली दिशा में अंतर केवल इतना था कि झल्लाहट, चिड़चिड़ापन, तुनक का नामोनिशान भी नज़र नहीं आता था उसके व्यवहार में। सचेत, सजग, सावधान रहने की दृष्टि से तिलमात्र भी समझौता नहीं, संपूर्ण मुखरता मगर वाणी व भंगिमा में उद्वेलन से परहेज़।

रात का भोजन हो चुका था। बच्चे अपने कमरे में जा चुके थे। दिशा अभी रसोईघर में थी। बिस्तर पर अधलेटा होकर अपने नगर के ताज़ा समाचार जानने के मक़सद से वह स्थानीय टीवी चैनल देख रहा था। कोरोना से युद्धरत् चिकित्सकों पर एक विशेष कार्यक्रम दिखाया जा रहा था कि नगर में कितने और कौन–कौन से डॉक्टर कोरोना के शिकार होकर ज़िंदगी गंवा चुके थे अब तक?

कार्यक्रम निहारते हुए अचानक उसने स्क्रीन पर एक परिचित चेहरा देखा। बताया जा रहा था कि लॉकडाउन की घोषणा होने के दिन डॉ. लाल की साँसें उखड़ गईं थीं। वह चौंका, अरे यह तो दिशा के भाई का क़रीबी दोस्त था! वह ज़ोर से चीख़ा, ''दिशा!''

गीले हाथ लिए दिशा दौड़ती हुई आई। कुछ कहे इससे पहले ही वह चिल्लाया, ''डॉ. लाल तुम्हारे भाई के दोस्त थे न? मौत हो गई उनकी? तुमने बताया भी नहीं?''

दिशा ने कोई जवाब नहीं दिया। धम्म से पलंग पर बैठ गई। भरपूर कोशिश के बावजूद वह अपनी रुलाई रोक नहीं पा रही थी। बिस्तर से उठकर, उसने दिशा का सिर अपने सीने से लगा लिया।

लॉकडाउन लगने के बाद दुकान पर बार–बार आने वाले दिशा के फ़ोन, उसकी घबराहट, लॉकडाउन के दौरान उसके परिवर्तित व्यवहार का कारण, पर्त–दर–पर्त उसके सामने खुल रहा था। कोरोना के चलते भाई जैसे भाई के दोस्त की मौत से उपजी असुरक्षा ने कवच बनकर सुरक्षित करने की कोशिश की थी उन सबको। कोरोना ने किया होगा बहुत कुछ तहस–नहस, उसकी ज़िंदगी को तो ख़ुश्बू से भर दिया है इस वायरस ने।

वह प्रार्थना कर रहा था, कोरोना की विदाई के बाद भी दहशत जनित संरक्षण भाव क़ायम रहे दिशा में।

❑❑❑

<u>हिंदी कहानी</u>

सबरस

अजय मलिक

हाँ, वह खूबसूरत थी...बेहद खूबसूरत।

वह स्वयं भी यह अच्छी तरह जानती थी।

विवाद इस बात पर था भी नहीं। खूबसूरती पर विवाद भला होना भी क्यों चाहिए! गोरा बल्कि हल्का सा साँवला रंग रूप, छरहरा बदन, नाक—नक्श सब ईर्ष्या के लायक... दर्पण भी कई बार उसे निहारने लगता था... तब वह शर्माती—लजाती नहीं थी... बल्कि तनिक अभिमान से भर उठती थी ...

उसके आरोपों पर प्राण ने निःसंकोच सब कुछ स्वीकार लिया था। हाँ, मैंने ही ये सब संदेश भेजे थे... मैं इसे बेशुमार प्यार करता हूँ.. ....सामाजिक रूप से यह गलत है, तो भी। हम दोनों विवाहित हैं...परिवार हैं... बच्चे हैं। जो भी इसने कहा है, सब कुछ सही है। जाँच करने वाले सदमे में थे... वे क्या जाँचने आए थे! उन दोनों के बीच प्यार था...है.... या आरोप सही हैं! किसका...दोष, कौन दोषी...कितना बड़ा अपराध!

जिसपर आरोप थे, वह सब बेखौफ सहज स्वीकार रहा था। उसे किसी बात की कोई चिंता नहीं थी... कि उसने अपराध किया था, तो कितना बड़ा... और कितनी भयानक सज़ा उसकी हो सकती थी। तृप्ति स्वयं यह सब सुनकर घबरा उठी थी। सोच रही थी कि आरोप लगाकर या उसके खिलाफ पुलिस में शिकायत कर, उससे कोई भूल तो नहीं हो गई! वह शिकायत करने से पहले अपने पति से सलाह ले चुकी थी... सब कुछ बता चुकी थी... कि कैसे वह इतने सालों तक चुप रही थी...सोचती रही कि प्राण समझ जाएगा। प्यार में कोई इतना पागल कैसे बन सकता है! लैला—मजनूँ, शीरी—फरहाद, हीर—राँझा ...ये सब किस्से—कहानियाँ हैं... इन सबका व्यावहारिक जिंदगी से क्या लेना—देना! ठीक है, कुछ होता है... साथ दफ्तर में घंटों बैठते हैं..। हँस—बोल भी लेते हैं...और... इतना सब तो चलता ही है।

जाँचकर्ता अनमने से होकर इस निष्कर्ष पर पहुँचें कि प्राण को जयपुर से इलाहाबाद भेज दिया जाए। इससे अधिक कुछ करने से... ये सिरफिरा... कोई अनहोनी भी हो सकती है... प्राण को किसी अच्छे—बुरे परिणाम की परवाह नहीं है, तो... दीवानगी से पार नहीं पाया जा सकता। अंत में निर्णय हो गया था और प्राण का जयपुर से रिश्ता भी सदा के लिए समाप्त मान लिया गया था।

प्राण जयपुर छोड़कर पत्नी और बेटे के साथ इलाहाबाद चला आया था। इसके बाद इलाहाबाद भी प्रयागराज बन गया था। तृप्ति पिछले दो साल में सब कुछ भुला चुकी होने का भ्रम भी पाल—पोस कर और आगे बढ़ चुकी थी। किंतु... कितने विचित्र हैं— ये प्रश्न चिह्न भरे शब्द...क्यों, कब, कैसे, किंतु, परंतु!

शिकायती कागज मरे नहीं थे। कुछ विशेष सरकारी दिमाग़ों और अलमारियों में बंद थे, ऐसी अलमारियाँ जिनमें दीमक वगैरह लगाने की भी गुंजाइश कदापि नहीं हो सकती थी।

अचानक कुछ दिन पहले तृप्ति को जयपुर रेलवे स्टेशन पर प्राण नजर आया तो उसके भूतकाल ने काल भैरवी जैसी कुछ तान छेड़ दी... सीधा आरोप लगाया... मेरा पीछा कर रहा था... और प्राण ...

हाँ, प्राण। जब पहली बार वह तृप्ति से मिला था...बेहद औपचारिक था सब कुछ... कई माह तक यह औपचारिकता मशीनी अंदाज में जारी रही थी। तृप्ति न सिर्फ जानकार और परिश्रमी महिला थी, बल्कि बेहद आकर्षक व्यक्तित्व और अगाध सौंदर्य की स्वामिनी भी थी। यूँ तो शादी को दस साल हो चुके थे और सात साल की उसकी एक बेटी भी थी, पर इन दोनों ही सच्चाइयों को उसे देखकर कोई सहज स्वीकार नहीं सकता था। कुल जमा बात इतनी सी ही थी कि वह बेहद खूबसूरत दिखती ही नहीं थी, बल्कि सचमुच थी भी।

प्राण की औपचारिकता कहीं किसी कोने में उसे और उसके सौंदर्य को चुभती थी। यह दुराव उसके अभिमान को अपमान सा लगता। सेक्शन में कुल तीन ही लोग थे— प्राण, तृप्ति और एक तीसरा। एक दिन तीसरा अवकाश पर था। प्राण अपने काम में व्यस्त था और सदैव की तरह चुप्पी का लबादा अच्छे से लादे—लपेटे तृप्ति से पूरी तरह असंपृक्त अपनी कुर्सी में सिमटा मेज पर पड़ी फाइलों में डूबा बैठा था। तृप्ति ने अनायास पुकारा था... प्राण जी ! प्राण ने उसकी ओर प्रश्न भरी निगाह से देखा तो वह हँसते हुए बोली—"नहीं, कुछ नहीं. ..आप... बस यूँ ही।"

इसके बाद सब कुछ 'बस यूँ ही' तक सीमित न रह सका था। बातें शुरू हुईं तो बढ़ती गईं। दोनों आगे बढ़ गए... बहुत आगे... सब कुछ...सारी दुनिया और दुनियादारी से बेपरवाह... और 'बस यूँ ही' से शुरू हुई बात भी बहुत आगे तक बढ़ती चली गई। इतनी आगे कि पीछे हटना या लौटना मुश्किल... असंभव सा लगने लगा। तृप्ति खुश थी... वह प्राण को पा चुकी थी...प्राण तृप्ति में खो चुका था।

प्राण की पत्नी निशा को समझते देर नहीं लगी थी... प्राण का बेटा दस साल का हो चला था... निशा ने सीधे—सीधे पूछ लिया था और प्राण ने साफ—साफ बता भी दिया था— "हाँ, कुछ, बल्कि बहुत कुछ हो गया है... इसमें कोई लुका—छिपी का प्रश्न ही नहीं है"। प्यार के मामले में 'क्यों, कब और कैसे' जैसे सवाल सिर्फ निरुत्तर रहने के लिए ही बने हैं। निशा अवाक् थी, पर वह प्राण को जानती, समझती और स्वीकारती थी। उसने पूछा था— अब? प्राण थोड़ी देर चुप रहा था... फिर उसका सपाट जवाब था— अब, जो तुम निर्णय लो...जो चाहो!

प्राण की साफ़गोई से वह बहुत आहत भी हुई... झूठ ही बोल देते... इतना सच..., परंतु प्राण के सच को स्वीकारने के साहस से वह सहम गई। थोड़ी देर चुप रहकर उदासी के दलदल में फँसी कराहती सी बोली— मेरे चाहने से तो तृप्ति के पास नहीं गए थे... सिर्फ पास ही नहीं गए, बल्कि उसमें खो गए, डूब गए। अब मेरे पास मेरा आत्मसम्मान तक नहीं बचा... हाँ, कोई गुस्सा नहीं है, तुमने बेईमानी

को भी पूरी ईमानदारी से स्वीकार कर मुझे निरुत्तर कर दिया है। बेटे से बाप को नहीं छीन सकती, परंतु बाप को भी बेटे पर अभिमान बनाए रखना होगा। तलाक सामाजिक मर्यादाओं का मखौल भर बन कर रह जाएगा। सदियों से लोग कहते आए हैं– "पुरुष के लिए सब जायज़ है, फिर भी... ऐसा कुछ न हो, जो दिखावे को भी लील जाए...! "

प्राण ने निशा की सूनी सी निगाहों में खुद को उम्र कैद काट रहे कैदी सा पाया था। बोला था– "पर पुरुष के किसी भी नाजायज के लिए, एक स्त्री भी तो है, फिर यह नाजायज सिर्फ इकतरफा कैसे हो सकता है?"

प्राण ने तृप्ति को पत्नी के साथ हुई सारी बातें बता डाली थीं। वह मुस्कुराहट के साथ गले लगते हुए बोली थी– "चिंता मत कीजिए, देखिए मैं कितने आराम से निभा रही हूँ! किसी को कुछ भी पता नहीं है।"

पति–पत्नी यानी प्राण और निशा गाँठ लगी रस्सी सी जिंदगी को खींचने लगे थे। जंग खाई जिंदगी भी आगे बढ़ती गई.... थका–हारा समय पीछे छूटता चला गया। देखते–देखते पूरा एक साल बीत गया।

प्राण और तृप्ति को एक साल गुजर जाने का पता भी नहीं चला। एक दिन दोनों जब होटल से बाहर आ रहे थे, तो एक तीसरा उन्हें देख रहा था। वह तीसरा तृप्ति का पति नहीं था। वह तीसरा वही था, जिसके अवकाश पर रहने के दिन साल भर पहले ये पहेलीनुमा कहानी 'बस यूँ ही' से शुरू होने का अवसर और संबल पा गई थी। वह तीसरा मुँह खोलने वाला नहीं भी हो सकता था, मगर तृप्ति ने उसी पल किसी भी संभावना को असंभव करने का निर्णय ले लिया था।

उसने उसी दिन अपने पति से सब कुछ कह डाला था। फर्क सिर्फ इतना था कि उसके कहे उस सब कुछ से 'बस यूँ ही' का सच स्वतः संपादित हो गया था। इतने भर से ही तृप्ति पति की नजरों में पुण्यात्मा होने का गौरव पा गई थी। अब यह पुण्यात्मा का खोल ही वह ढोल था, जिसे निरंतर बजाया जाना था। वह सुबकने लगी थी... पति एकटक पत्नी का बेहाल, बेसहारा, बेचारगी भरा रूप देखकर गदगद था...। एक अजीब सी तड़प लिए वह बोली थी– "मैं प्राण जी का कितना आदर करती थी, आज भी मुझे ये तनिक सा भी एहसास नहीं था कि वे होटल में कंपनी के मालिक के साथ मीटिंग का बहाना बनाकर किसी घिनौनी हरकत के इरादे से मुझे ले जा रहे थे। कितनी मुश्किल से मैं बच पाई हूँ, इसका अनुमान आप नहीं लगा सकते।"

अगले दिन एकांत पाकर उसने प्राण से बड़े ही आहत लहजे में कहा था– "कल शाम को मेरी बेटी ने मेरे मोबाइल पर आपके संदेश देख लिए... वह मेरे पति को बताने लगी... मैंने जल्दी से उन्हें मिटा दिया। अब पता नहीं मेरे साथ क्या होगा! बहुत ही मुश्किल है आगे की राह... बस इतना अवश्य समझ लीजिए कि हमारी कल की मुलाक़ात अंतिम थी।"

प्राण ने निरीहता के साथ कहा था– "मेरे लिए अब इस रिश्ते...या किसी भी मुलाक़ात को अंतिम कहना असंभव है।"

अगले दिन रविवार को अचानक प्राण तृप्ति के घर पहुँच गया था। तृप्ति की सास ने दरवाजा खोला था। तृप्ति ने सीढ़ियों से उतरते हुए प्राण को देखा तो अवाक् रह गई। पति साथ में थे, बेटी अपनी दादी के साथ खड़ी थी। प्राण के मुँह खोलने से पहले ही

वह फट पड़ी थी–"आपको यहाँ नहीं आना चाहिए था!"

फिर पति की प्रश्न भरी निगाहों के उत्तर गढ़ते हुए वह चिल्लाने लगी थी– "आप फौरन दफा हो जाइए। ... आपका इतना साहस कि मेरे घर तक...!" प्राण हैरान था और तृप्ति का पति पत्नी के पतिव्रता होने का साक्षात् प्रमाण पाकर बलिहारी हो गया था।

इसके बाद शिकायतों का लंबा दौर चला था। यौन उत्पीड़न का मामला। अब एकांत में भी प्राण से मिलने, नजरें मिलाने का साहस उसमें नहीं था।

मगर आज जाँच के समय प्राण की सहज स्वीकारोक्ति ने उसे परास्त कर दिया था। जाँच समिति ने प्राण को जयपुर से प्रयागराज भेज दिया था और वह चुपचाप चला भी गया था।

एक साल के समर्पण के उस दौर में वह अकसर कहा करती थी– "आप एक साल में ही मुझसे बोर हो जाएँगे... मैं कभी आपसे जुदाई की कल्पना भी नहीं कर सकती... पर... मैं बस इतना जानती हूँ यह सच्चा प्यार है... ट्रू लव......।"

ये सब सुनकर प्राण बस एकटक देखता रह जाया करता था। वह सोचता था– "आखिर पत्नी निशा का इतना समर्पण होते हुए भी वह तृप्ति पर अपना सब कुछ न्यौछावर करने को विवश क्यों है।" कोई उत्तर उसके पास नहीं होता था। वैध–अवैध की चिंता वह नहीं करता था, पर अपनी विवशता पर वह हैरान रह जाता था।

प्रयागराज आकर भी वह तृप्ति को बार–बार फोन करता रहा था। हर बार वह यही कहता– "बहुत कठिन है, इस सोच के साथ जीना कि कोई जबरदस्ती अपना बनाकर बेरहमी से ठुकरा गया।"

एक दिन तृप्ति ने बड़ी ही बेरुखी से साफ–साफ सुना दिया था– " मैं उस सबसे बाहर आ चुकी हूँ, मैं बात नहीं करना चाहती, आप समझ जाइए और परेशान करने से बाज आइए। आपके जीने–मरने से मुझे कुछ लेना–देना नहीं है... कल पुलिस में रिपोर्ट भी लिखवा दूँगी।"

प्राण अवाक् था। फिल्मों में घटने वाली बातें उसके जीवन का हिस्सा बनती चली जा रही थीं। पत्नी निशा के बारे में सोचकर वह ग्लानि से भर जाता, मगर तृप्ति का ख्याल उसके मन से एक पल को भी न जाता।

जयपुर का दफ्तर तृप्ति द्वारा प्राण पर लगाए गए आरोपों और शिकायतों से अटा पड़ा था।

इसी बीच अनहोनी अपने चरम तक जा पहुँची। एक दिन प्राण निष्प्राण हो गया। एक पत्र डाकखाने की पेटी में पड़ा मिला और तृप्ति के हाथों तक जा पहुँचा।

प्राण का वह कागज तृप्ति तक देर से तो नहीं पहुँचा था... फिर भी बहुत देर तो हो ही गई थी। वह सपने में भी यह नहीं सोच सकती थी... इस कल्पना पर भी वह विश्वास नहीं कर सकती थी कि कोई प्रौढ़ व्यक्ति, जिसका अपना घर–बार, गृहस्थी, परिवार, बच्चे सब हों, वह उसके प्यार में दिन–रात आँसू बहा सकता है... स्वयं को समाप्त भी कर सकता है। वह सोचती– "यह सब तो लड़कपन की बातें हैं, मर्दों के चोंचले ...।"

वह कोहरे की धुंध में टिमटिमाते तारों को देखते हुए कागज के टुकड़े को सहलाती रह गई थी। बाहर सदी का सबसे बड़ा चाँद, चाँदनी के सन्नाटे बिखेरता मौन खड़ा था।

अगले दिन पुलिस की टीम आई थी। दारोगा ने पूछा था– "आपकी शिकायत पर अब कार्रवाई होनी है, आप अपने उत्पीड़न के मामले में अंतिम बयान दे दीजिए।"

उसके पास अंतिम बयान यही हो सकता था कि प्राण आत्महत्या कर निष्प्राण हो चुका है, अब कोई बयान अंतिम या अंतरिम नहीं हो सकता, जिसे जो कार्रवाई करनी है, करे... करता रहे...प्राण अब नहीं लौट सकेगा, कभी नहीं...और सच !

...सच तो यही है कि वह प्राण से बेहद प्यार करती थी...है... और आजीवन करती रहने को विवश है, मगर... अब झूठ को ही सच बनाए रखना होगा। सिर्फ वही जानती है कि वह प्राण की मौत की जिम्मेदार है...एक सच्चे–समर्पित व्यक्ति की हत्या की दोषी... हत्यारिन..., परंतु प्राण जो कि मर चुका है, उसके शारीरिक शोषण का अपराधी प्रमाणित कर ही दिया जाएगा।

वह तीसरा अब कुछ कहे या न कहे... सच तो झूठ के गुबार में गुम हो चुका है। निशा अपने पति को पहले ही खो चुकी थी, अब उसके बेटे से भी बाप जुदा हो चुका है।

तृप्ति का पति अपनी पत्नी की निष्कलंकता पर न्यौछावर है।

तृप्ति की बेटी को अपने माता–पिता पर गर्व है...।

पुलिस की कार्रवाई आगे भी तब तक जारी रहेगी, जब तक प्राण की आत्महत्या की आधिकारिक खबर प्रयागराज से न आ जाए... उसके बाद यदि बाल की खाल कुछ समय तक और खींची जाती रहेगी तो हो जल्दी ही निशा पर अपने पति की हत्या का नया मुकदमा भी शुरू हो जाएगा ...

❑❑❑

हिंदी कहानी

बड़ी–बड़ी आँखें

रामदरश मिश्र

राजेश जब बड़ा हुआ और साहित्य के साथ गहरा लगाव हुआ तब अनेक कवियों द्वारा नारी की बड़ी–बड़ी आँखों की सुंदरता पर लिखी गई कविताओं से गुज़रने लगा। उसने जाना कि आँखों की सुंदरता की अभिव्यक्ति के लिए अनेक उपमानों का प्रयोग किया गया है। बड़ी–बड़ी आँखों वाली नारियों को मृगनयनी, मीनाक्षी, कमलाक्षी, सुनेयना, आदि कहा गया है। बड़ी–बड़ी आँखों में सौंदर्य की अद्भुत छटा देखी गई है। वह छटा आँखों में उतर कर मन को मोह लेती है। कवियों ने मोहने की कला को जादू करने का भी नाम दिया है। मुझे रहीम का दोहा याद आ रहा है।

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।

ज्यों बड़री अंखियान लखि, आंखिन को सुख होता।

क्या विडंबना है कि कवियों और सौंदर्य प्रेमियों को जिन बड़ी–बड़ी आँखों में मोहक सौंदर्य जगमगाता हुआ दिखाई पड़ता है, प्रेम छवि और वात्सल्य का मौन गान सुनाई पड़ता है, लक्ष्मी चाची की बड़ी–बड़ी आँखों में जाहिल गाँव वालों को अशुभ और डरावना टोना दिखाई पड़ता था।

राजेश तब आठ वर्ष का था। एक दिन उसने अपने पिता रामेश्वर जी से पूछ लिया "बाबू जी, लोग लक्ष्मी चाची को टोनहिन क्यों कहते हैं? वे तो मुझे माँ जैसी प्यारी लगती हैं?"

रामेश्वर जी बोले "बेटे मैंने तुम्हारी माँ के द्वारा तुम्हारी लक्ष्मी चाची की सुंदरता और मंगलकारी स्वभाव की खूब प्रशंसा सुनी है लेकिन...."

"लेकिन क्या बाबू जी"?

"बेटे पूरा गाँव जानता है कि प्रधान कामेश्वर मिश्र को अपने प्रधान और धनवान होने का कितना गुमान है। प्रधान तो गाँव की अच्छी देखभाल के लिए होते हैं किंतु यह प्रधान तो अपने अहंकार में डूबा रहता है। गाँव के लोग भी कितने निखट्टू हैं कि उसकी हाँ में हाँ मिलाया करते हैं। बेटे जिन दिनों तुम ननिहाल गए थे उन दिनों की बात है– मैं लक्ष्मी के पति यशदेव के यहाँ बैठा हुआ था। यशदेव के मन में एकाएक आया कि आज वे मुझे मटर की घुघुरी खिलाएँगे और खाएँगे। उन्होंने अपने हलवाहे से कहा कि गोड़ के खेत से दो तीन किलो छीमियाँ तोड़ लाओ। हलवाहा छीमिया तोड़ कर चलने ही वाला था कि प्रधान वहाँ पहुँच गए। उनका

खेत यशदेव से सटा हुआ था। उन्होंने हलवाहे को पकड़ लिया।

एक लड़का दौड़ा–दौड़ा यशदेव के घर आया और बताया कि प्रधानवा आपके हलवाहे को मार रहा है। बस क्या था हम दोनों प्रधान के घर की ओर दौड़े। हमें देखते ही रामभजन चिल्ला उठा "देखिए न मालिक, प्रधान बाबा कह रहे हैं कि मैंने उनके खेत से छीमियाँ तोड़ी हैं। मैं बार–बार कहता रहा कि मैंने यशदेव मालिक के खेत से तोड़ी हैं। उन्होंने मँगाई हैं। लेकिन प्रधान बाबा मुझे झूठा कह कर घसीटते हुए यहाँ ले आए हैं और मार रहे हैं। कह रहे हैं कि मैं झूठा हूँ।" यशदेव ने रामभजन को प्रधान के हाथ से खींच कर अपने पीछे कर लिया और प्रधान से बोले– "झूठ यह नहीं आप बोल रहे हैं। रामभजन बहुत ईमानदार आदमी है। मैंने ही उसे मेरे खेत से छीमियाँ तोड़ने को भेजा था।" बेटा मैं भी तैश में भर आया था किंतु चुप रहा। सोचा बोलूँगा तो प्रधान पर प्रहार की बोली बोलूँगा और बात बढ़ जाएगी। यशदेव बहुत स्वाभिमानी हैं। मैट्रिक पास हैं इसलिए प्रधान के अत्याचार को समझते हैं और गाँव के अन्य लोगों की तरह उसकी हाँ में हाँ नहीं मिलाते। उसकी गलत बातों का विरोध करते रहते हैं। तो उन्होंने तैश में आकर प्रधान को ललकारा "आपको मुझसे कोई शिकायत हो तो मुझसे सीधे टकराइए, आपको मालूम हो जाएगा कि टकराहट क्या चीज़ होती है। फिर वे हलवाहे की बाँह पकड़कर खींचते हुए चले– "चल रामभजन, थाने चलते हैं, प्रधान के खिलाफ रपट लिखवाने।"

रामभजन बोला– "जाने दीजिए मालिक जो हो गया सो हो गया।"

"अरे रामभजन तू मालिक–मालिक की रट क्यों लगाए रहता है यहाँ कोई तुम्हारा मालिक नहीं है। तुम्हारे दोनों हाथ तुम्हारे मालिक हैं।" गाँव वाले इस व्यंग्य से भीतर ही भीतर तिलमिला उठे होंगे।

यशदेव राजभजन को लेकर अपने घर चले गए। मैं भी अपने घर आ गया। बेटे, प्रधान को ज़रूर लगा होगा कि वे सबके सामने बुरी तरह अपमानित हुए हैं। उन्होंने मन ही मन सोचा होगा कि इस अपमान का बदला लेंगे।

चलते–चलते यशदेव ने रामभजन से पूछा– "यह बेहूदा आदमी तुझसे इतना खार क्यों खाए हुए है?"

रामभजन बोला– "मालिक इन्होंने साल भर पहले मुझसे अपनी हलवाही करने को कहा था। मैंने मना कर दिया। अपने लोगों से सुन रखा था कि इसकी हलवाही बहुत दुःखदाई होती है। और सबसे बड़ी बात तो यह है मालिक कि मैंने आपकी हलवाही के लिए मन बना लिया था।"

यशदेव हँसकर बोला– "तू मालिक मालिक की रट नहीं छोड़ेगा" रामभजन हँसकर रह गया।

काफ़ी समय पहले प्रधान की माँ, पत्नी ने प्रधान से बात–बात में लक्ष्मी की सुंदरता के बारे में बताया था। उन्होंने लक्ष्मी की बड़ी–बड़ी आँखों की प्रशंसा की थी लेकिन वहीं बैठी प्रधान की बूढ़ी माँ ने कहा– "बहू, लेकिन बड़ी–बड़ी आँखों वाली औरत तो टोनहिन होती है। गाँव की औरतें तो आपस में कहती रहती हैं कि लक्ष्मी की बड़ी–बड़ी आँखों में टोना भरा हुआ है।" संयोग देखिए दस दिन

बाद यशदेव के पड़ोसी का एक छोटा बच्चा मर गया। बस क्या था प्रधान को प्रतिशोध का रास्ता सूझ गया। उन्होंने बच्चे के घरवालों से पूछा— "बच्चे को क्या हुआ था कि देखते—देखते मर गया।" बच्चे की माँ बोली— "अरे उसे कुछ नहीं हुआ था। खेलने गया था। घर लौटा तो सुस्त दिखाई पड़ा। हम लोगों ने सोचा खेलने के कारण थक गया होगा लेकिन हमने महसूस किया कि उसकी सुस्ती जाने का नाम नहीं ले रही है बल्कि बढ़ती ही जा रही है। रात को बुखार आ गया। सुबह उसके बाबू जी वैद जी से बुखार की दवा लाए लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ और शाम होते—होते मेरा लाडला चल बसा।"

"हूँ..." प्रधान बोले —"मुझे लगता है कि बच्चे के मरने के पीछे कोई राज है।"

माँ बोली— "क्या राज हो सकता है प्रधान जी?"

"मैं पता करने की कोशिश करूँगा राज जानने की" उन्हें अपनी माँ का कहा हुआ याद आ गया।

प्रधान जी ने दूर के एक गाँव के अपने परिचित ओझा को बुला लिया। उनके दरवाज़े पर गाँव के अनेक लोग बैठे हुए थे। प्रधान जी ने ओझा से कहा— "ओझा जी! गाँव का एक छोटा सा हँसता—खेलता बच्चा देखते—देखते यों ही मर गया। मुझे तो लग रहा है कि उसकी मृत्यु के पीछे कोई राज़ है। आप ज़रा देवी माता का ध्यान कर पता कीजिए कि वह राज़ क्या है।" प्रधान ने उसे पैसे देकर समझा दिया था कि उसे क्या कहना है।

ओझा ने देवी का ध्यान करने का नाटक किया। फिर एकाएक चिल्ला उठे— "बोल माँ बोल, इस प्यारे—प्यारे बच्चे को मौत ने क्यों निगल लिया।"

वे फिर ध्यान में चले गए और कुछ देर बाद आविष्ट स्वर में बोले— "देवी कह रही हैं कि किसी बड़ी—बड़ी आँखों वाली ने टोना देकर मारा है। टोनहिन उस बच्चे के घर के आस—पास ही होनी चाहिए।" फिर तो लोग फुसफुसाने लगे— यह हुलिया तो यशदेव की पत्नी लक्ष्मी का है। अब तो गाँव में यह बात फैल गई कि यशदेव की पत्नी की बड़ी—बड़ी आँखों में टोना है, उससे और उसके घर से बचना चाहिए। कवियों और सौंदर्य—प्रेमियों ने जिन बड़ी—बड़ी आँखों के सौंदर्य की महिमा गाई है, उन्हीं आँखों में गाँव के गँवार के गँवार रूढ़िवादी लोगों को टोना दिखाई पड़ने लगा। गाँव के गँवार लोग एक धोखेबाज ओझा के कहने में आ जाते हैं।

गाँव के लोगों ने इस घर का बहिष्कार कर दिया। तय हुआ कि कोई भी यशदेव के यहाँ नहीं जाएगा और न यशदेव के घर का कोई व्यक्ति किसी के घर जाएगा। यह घर अकेला पड़ गया। तीज—त्योहार, शादी—ब्याह की गहमा—गहमी गाँव में होती रही किंतु लक्ष्मी को किसी भी सामूहिक महिला—उत्सव में शरीक होने की मनाही थी। यशदेव प्रधान के षड़यंत्र और गाँव वालों के अंधविश्वास को क्रोध की आँखों से देख रहे थे मगर करते क्या? गाँव वालों के इस कुविचार के बाद भी राजेश लक्ष्मी चाची के यहाँ जाया करता था। वह आठ साल का लड़का था न इसलिए उसके मन में गाँव वालों के कुविचार का विष समाया हुआ नहीं था। उसे तो चाची की बड़ी—बड़ी आँखें बड़ी प्यारी लगती थीं। उनमें से उसके लिए स्नेह बरसता था। जब वह

जाता था तब उसे लगता था कि चाची की आँखों में उदासी की हल्की सी पर्त छाई हुई है किंतु उसे देखते ही उनकी आँखे हँसने लगती थीं। वे प्यार से उसका माथा सहलाती थीं, गाल थपथपाती थीं। कभी–कभी कोई कहानी भी सुनाती थीं, खाने के लिए कोई मीठी चीज भी दे देती थीं वह जब चाची के घर से निकलता था तब उसका मन प्रसन्नता से भरा होता था।

एक दिन राजेश की दादी ने उसे बुरी तरह डाँट पिलाई– "तुम उस टोनहिन के पास क्यों जाते हो? गाँव का कोई लड़का वहाँ नहीं जाता। अब जाओगे तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा।" राजेश ने चिल्लाकर कहा– "मैं तो वहाँ जाऊँगा, जाऊँगा।" दादी ने मारने के लिए हाथ उठा लिया। राजेश बोला– "तुम मुझे मारोगी तो मैं भी तुम्हें मारूँगा।" राजेश के पिता पास के गाँव के मिडिल स्कूल में हेडमास्टर थे। वे राजेश को बहुत प्यार करते थे, वह अपनी माँ का भी बड़ा लाडला था। अतः उसके ऊपर परिवार का कोई दबाव नहीं था।

लक्ष्मी कभी अपने पति यशदेव के साथ, कभी अकेली अपने खेतों की ओर जाती थीं। उन्हें देख कर लोग रास्ते से हट जाते थे। वे अपनी फसलों से बातें करती थीं। अब उनके और उनके परिवार के साथ केवल राजेश परिवार था और हलवाहा तो था ही। उनके हलवाहे को भी काफ़ी बरगलाया गया लेकिन उसने लोगों को सुना दिया "मैं टोना–फोना नहीं मानता"। मुझे तो लक्ष्मी मालकिन की आँखों से आशीर्वाद बरसता मालूम होता है और यशदेव मालिक तो मुझे अपने घर का ही सवांग मानते हैं।"

सब कुछ यों ही चलता रहा। एक दिन जब लक्ष्मी अपने खेत से लौट रही थीं तो देखा फसलों के बीच के एक रास्ते में कोई गिरा पड़ा है। अरे यह तो प्रधान का बेटा है। तिजहर का समय था। आस–पास सन्नाटा छाया हुआ था। बच्चे के मुँह से गाज निकली हुई थी। उसका बस्ता पास में फिंका पड़ा था। वह शायद स्कूल से आ रहा था। लक्ष्मी को जब कोई दिखाई नहीं पड़ा तो वह पास के पोखर से अपना आँचल भिगो लाई। उसका मुँह पोंछा। धीरे–धीरे उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। लड़का जब कुछ प्रकृतिस्थ हुआ तो लक्ष्मी उसे सहारा देकर प्रधान के घर तक ले आई। उसे वहाँ पहुँचाकर अपने घर चली गई।

"क्या हुआ, क्या हुआ इसे?" प्रधान के दरवाजे पर बैठे लोगों ने पूछा। लड़का बोलने की स्थिति में आ रहा था किंतु अभी चुप ही था। प्रधान जी बोले– "अरे इस टोनहिन ने मेरे बेटे को टोना से घायल किया और यहाँ तक पहुँचाने का नाटक भी। यहाँ पहुँचाकर लोगों के क्रोध के डर से एकदम अपने घर की ओर सरक गई।" लोग भी अंड–बंड स्वर में लक्ष्मी को कोसने लगे। एकाएक प्रधान का लड़का चिल्ला उठा– "बंद कीजिए आप लोग बकवास। लक्ष्मी चाची न होतीं तो मैं आज रास्ते में पड़ा–पड़ा खत्म हो गया होता । चलते–चलते मुझे बेहोशी आ गई और मैं सड़क पर गिर पड़ा। मेरे भाग्य से लक्ष्मी चाची वहाँ आ गईं और मुझे बचा कर यहाँ ले आईं और आप लोग हैं कि उन्हें क्या–क्या कहते रहते हैं।"

अब सब लोग चुप होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे। मगर एक ने पूछ लिया कि तू गिरा कैसे?

प्रधान जी धीरे से बोले–इसे कभी–कभी मिर्गी आती है न, उसी से गिर गया होगा। अब प्रधान को अनुभव होने लगा कि उन्होंने जिस औरत के बारे में झूठी कहानी प्रसारित कर दी थी उसी ने उसके बेटे को संजीवनी प्रदान कर दी। अब वे पास बैठे लोगों के साथ लक्ष्मी के घर की ओर चल पड़े प्रयाश्चित करने के लिए।

❑❑❑

<u>हिंदी कविता</u>

महान ऋषिवर : मानव उद्धारक स्वामी दयानंद सरस्वती

नरेश कुमार

मार्ग बताया ऋषिवर ने स्वराज्य का,
कर्तव्य–पालन बोध कराया,
बचाया देश, अधर्म भगाया,
भ्रमित जन–मानस को प्रकाश दिखाया,
उखाड़ दिया सामाजिक अन्यायों को,
परमेश्वर का ज्ञान कराया,
जगाया राष्ट्र, डूबता समाज बचाया,
मूर्ति–पूजा निराधार बताया,
किया कुप्रथाओं पर कुठाराघात,
रूढ़ियों–अंधविश्वासों को दूर भगाया,
मिटाया भेदभाव और पाप,
मोह–पाश बाँधन पाया,
छेड़ा जात–पात विरूद्ध आंदोलन,
राष्ट्रभाषा हिंदी को सम्मान दिया,
पर्दाफाश किया ढोंग–पाखंड का,
पुजारियों को कर्तव्य–ज्ञान कराया,
उठाया सभी को, कातिल गले लगाया,
अंतिम साँस मानवता–हित जिया,
पिया ज़हर, अमृत पिलाया,
दुष्ट को क्षमा–दान दिया,
समझा विधवाओं के दुःख को,
बहु विवाह को अन्याय बताया,
डोला महंतो का आसन,
ज्योतिष– मिथ्या ज्ञान कराया,
किया खंडन मृतकश्राद्ध का,
दुष्कर्मों से रहना दूर सिखाया,
न झुको हिंसक के आगे,
करो सामना आततायी का,
न डरो आतंकवादी से,
डटो निर्भय होकर,
चेताया गौ–रक्षा हमारा धर्म,
गौ–रक्षा कर्तव्य–बोध कराया,
बताया ब्रह्म, गायत्री का मर्म,
स्तुति कर ईश्वर–प्रेम सिखाया,
दिखाया उपदेशों ने प्रभाव,
शिवालय नहीं, विद्यालय बनवाया,
आओ सब वेदामृत का पान करें,
करें ऋषिवर को श्रद्धा–सुमन अर्पित,
करें यशगान सच्चे पृथ्वीपुत्र का,
हर कोना करें आलोकित,
बनाएँ भारत–भू को स्वर्ग,
पावन–संदेश स्मरण करें,
आओ सब मिलकर बोलें,
सब वेदामृत पान करें।

❑❑❑

<u>हिंदी कविता</u>

उस दौर में

देवेंद्र कुमार मिश्रा

आ गए उस दौर में
जहाँ हैं निपट अकेले
पीछे छूट गए सब मेले
अब कुछ भाता नहीं है
कोई भी मंजर लुभाता नहीं है
चल रहे है वियावान में
सूनी आँखों के रेगिस्तान में
चले जा रहे हैं
रास्ते अंजान में
न समस्या के किसी समाधान में
न अपना कोई न पराया
हम जीतकर भी नहीं खेले
छोड़ दिए हमने
प्रश्नोत्तर के रेले।

अब बस देखता हूँ
गुजरता नहीं हूँ
दृश्य चाहे कैसे भी हों
बँधता नहीं हूँ
सहना पड़े कुछ भी
कराहता नहीं हूँ
न शिकायत न चाहिए इनायत
कटीले, नुकीले, चमकीले, सुनहरे
कैसे भी हो रास्ते
नहीं है अपने वास्ते
गुजर जाना सभी को आहिस्ते–आहिस्ते
घर हो बाजार हो या हो श्मशान
नहीं फँसता अब किसी झमेले में
पीछे छोड़ आए सब मेले में।

❑❑❑

<u>हिंदी कविता</u>

कल्पवृक्ष

हेमंत गुप्ता

तुम
भटक रहे हो
खाना–ब–दोश
नीले आकाश के तले
मैं तुम्हारे लिए
बनाऊँगा
एक सुरक्षित घर
स्थाई
तुम प्यासे हो
मैं तुम्हारी प्यास बुझाऊँगा
तुम भूखे हो
मैं तुम्हारी भूख मिटाऊँगा
तुम दहक रहे हो
दुनियावी दुःखों में
मैं तुम्हें शीतलता दूँगा
अपने आँचल की
तुम ठिठुर रहे हो
मैं तुम्हें गरमाऊँगा
खुद ख़ाक होकर भी
तुम्हें ज़िंदगी दूँगा
तुम्हारी हर इच्छा को
तृप्त करूँगा
तुम थके हुए हो
जीवन एक अवकाश–रहित क्षण
मैं तुम्हें
थपकियाँ दे–देकर झुलाऊँगा
लोरियाँ गा–गाकर सुनाऊँगा
दूँगा एक निश्चिंत नींद
भरपूर
जागरण
ताज़गी भरा
तुम केवल इतना करो
मेरी परवरिश
सुनिश्चित कर दो
मेरा अस्तित्व
सुरक्षित कर दो
तुम
मानव हो
मैं
वृक्ष हूँ
तुम्हारा
कल्पवृक्ष।

❑❑❑

अनूदित खंड

मराठी कहानी

तिम्मा

प्रकाश ज्ञानोबा जाधव

अनुवाद : सुनीता मोटे

गर्मियों के दिन थे। सूरज अंगारे बरसा रहा था। धांगडों को पीने के लिए पानी नहीं मिल रहा था। कुँए दूर–दूर थे। इसलिए औरतें सबेरे–सबेरे ही पानी लाने चली जाती लेकिन गाँव के कुँए वाले कहते–"ए धांगड औरतों पानी की छूआछूत मत करो, सारा गाँव पानी पीता है, उसमें भी हमारे गन्नों को पानी कम पड़ रहा है।"दुत्कार सही लेकिन पानी तो जरूरी था प्यास बुझाने के लिए। एक भी आदमी पानी नहीं लाता था। यह काम मर्दों का थोड़े ही है? अगर पानी भरेंगे तो लोग क्या कहेंगे? बीबी की कैसे गुलामी कर रहा है। इसलिए मर्द पानी नहीं लाते थे। छोटे बच्चे और औरतें सबेरे–सबेरे ही कुँओं पर जाते थे। पानी पास नहीं था। दो ढाई मील दूर था। इसलिए औरतें परेशान हो जाती थीं। लेकिन मर्दों को एक शब्द भी पलटकर जवाब नहीं देती। तिम्मा का परिवार अच्छा था। ब्याह के बाद उन्हें जैसे राहत मिल गई थी। तिम्मा 'कभी–कभी' कहता, "अब मुझे कोई फिक्र नहीं है, एक बार गंगा नहा लिया ऐसा लगता है।" गर्मियों के दिन थे, पानी की कमी, किसान भी पानी का इस्तेमाल सँभल–सँभलकर कर रहे थे। वे सबेरे हल जोतकर दोपहर में आम के पेड़ के नीचे लेट जाते।

उस दिन धांगड बस्ती की औरतें–मर्द सब काम पर गए थे। छोटे बच्चे घर पर ही थे। इतनी दूर इन्हें क्यों ले जाएँ, इसलिए उन्हें घर पर ही छोड़ देते। तिम्मा के घर के सभी लोग काम पर गए थे। सबेरे एक मटका भर पानी ला रखा था। बालू ने उसी पानी से दोपहर में नहा लिया। इसलिए घर में पानी की एक बूँद भी नहीं बची। बाई को प्यास लगी थी। आस–पास के टाटों में जाकर पूछा लेकिन पानी नहीं था। मुँह सूख गया। धूप भी तेज थी इसलिए बच्चे टाट से बाहर नहीं निकल रहे थे। बाई टीन का लोटा लेकर सबके घर घूमी पर पीने के लिए पानी नहीं मिला। पानी के बिना उसका गला सूख गया था। उसने सूर्या से कहा, "चल मटका भर पानी लाते हैं...... बहुत प्यास लगी है....।" मुझे इतनी धूप लग रही है और तू पानी लाने के लिए बोल रही है। धूप उतरने पर जाएँगे, रुक थोड़ी देर कहते हुए सूर्या ने उसे रुकने के लिए कहा,"मुझे बहुत प्यास लगी है, चल ना रे" कहते हुए बाई उसे साथ चलने का आग्रह

करने लगी। "जा मैं नहीं जाता"– कहते हुए, वह शंकर के टाट की ओर बच्चों के साथ खेलने चला गया। धूप कहर बरसा रही थी, हवाएँ भी लू की तरह बह रही थी। बाई ने कलसी ली और नंगे पाँव ही कुएँ की ओर चल पड़ी। किसान इस समय पेड़ों की छाँव में लेटे हुए थे। खेतों में कोई दिखाई नहीं दे रहा था। बाई दादाराव चौधरी के कुएँ पर पहुँची। पाईप से पानी आता है क्या देखने लगी। सबेरे मोटर शुरू नहीं की थी। इसलिए बूँद–बूँद करके पाईप का पानी खत्म हो बह गया था। उसने कुएँ में झाँककर देखा, पानी बहुत नीचे था। पानी देखते ही उसकी प्यास और बढ़ गई। गला सुख चुका था। गहरे कुएँ में काला पत्थर दिखाई दे रहा था। औरतें कभी–कभी यहाँ से पानी लाती थीं, बाई ने यह देखा था। मैं भी उतरकर पानी ले लूँगी, सोचकर पतरी पर पाँव रखकर उतरने लगीं कुएँ में उतर उसने जी भर पानी पिया। पेट भर गया। उसने कलसी भरी, कलसी भी छोटी नहीं थी, बीस किलो की थी। सर पर कलसी रखकर एक हाथ से पत्थर पर चढ़ने लगी। आधा कुआँ चढ़ गई लेकिन कलसी वजनदार रहने के कारण उसका पाँव फिसल गया। वह नीचे गिर ही जाती मगर उसने कलसी वाला हाथ छोड़ दिया और खुद को सँभालने लगी। कलसी नीचे गिरने से वह जोर से चिल्लाई। उसका सिर पत्थर से टकरा गया और वह जोर से पानी में गिर गई। "साच्ची फोतान एक अम्माक...बात का मतंडा (मर गई रे माँ मुझे बचाओ)" ऐसे वह चिल्लाने लगी। कुआँ इतना बड़ा था कि उसकी आवाज अंदर ही घूमने लगी। वह हाथ–पाँव पटकने लगी। पानी में डूबने लगती तो कभी उठती, मुँह में पानी भर जाता। पहले ही उसने पेट भर के पानी पी लिया था। पानी में डुबकियाँ खाने के कारण उसके पेट में और भी पानी भर गया और वह डूब गई। थोड़ी देर बाद साँस रुकने पर उसका शरीर पानी पर तैरने लगा।

तिम्मा ने औरतों को घर भेज दिया था। घर में पानी नहीं था, बाई भी दिखाई नहीं दे रही थी। नागम्मा उसे जोर–जोर से पुकारने लगी– "ऐ बाई, ऐ सूर्या कहाँ चले गए? साले बहुत मस्ती में आए हैं, इनके पाँव ही घर में नहीं ठहरते।" सूर्या घर में आया। "बाई कहाँ गई?" नागम्मा ने पूछा। कहीं गई होगी, मुझे खाने को दे, सूर्या नाक पोंछते हुए बोला। नागम्मा के पास कुछ रोटी के टुकड़े बचे हुए थे उसने उसे खाने के लिए दिए। "यह झवणी कहाँ गई?" नागम्मा बाई को गालियाँ देने लगी। पानी का खाली मटका देखा, कलसी नहीं दिखाई दी तो उसने कहा किस कमीनी ने कलसी ली है? सीधे लौटा दो नहीं तो एक–एक को कैसे लगाती हूँ देखो...... "पहले ही काम का तनाव, घर में पानी की एक बूँद नहीं, इसलिए अपना क्रोध व्यक्त करने लगी। धांगड औरतें काम से वापस लौट रही थीं। नागम्मा की गालियाँ सुनकर "यह बहुत बरतन भांडे वाली आई माँ, झगड़ा नहीं कुछ नहीं फिर भी जान–बुझकर झगड़े निकालती है" ऐसा कहने लगी। दिन ढलने लगा था। लाईट का पावर आने पर दादाराव का नौकर मोटर शुरू करने के लिए कुएँ के पास आया मोटर कुएँ में ही थी। गन्नों के खेत को पानी देना था। वाध्या ने बटन दबाया। पानी नहीं आ रहा था। पाईप को हाथ लगाकर देखा; पाईप फूटा हुआ था। पानी कैसे आएगा? माईला, पाईप से पानी नहीं आ रहा, अब क्या करें? ऐसा सवाल

खड़ा हो गया। कॉक भी तो चालू करके देखे, पाईप में पानी होगा तो मोटर में गोबर डालकर पानी डालने की जरूरत नहीं रहेगी। इसलिए उसने कॉक घुमाया पाईप का पानी फुटवॉल तक भर गया। मोटर चालू की। पानी जाता है या नहीं, यह पाईप को हाथ लगाकर देखने लगा। पाईप ठंडा लगा। इसलिए कुएँ में झाँककर देखा तो उसे पानी में लँहगा तैरता दिखाई दिया। लंबी बालों वाली लड़की का शव तैरता नज़र आया। वह घबराकर, 'अरे बाबा। यह क्या मुसीबत है? छोरी मरी पड़ी है' उसके मुँह से निकला। उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे? उस छोरी को निकाला तो सब मेरा ही नाम लेंगे। धांगड बहुत बदमाश होते हैं। मुझे मार ही डालेंगे। उन्हें जाकर बताया तो कहेंगे, निकाला क्यों नहीं? फिर मुझे ही गालियाँ देंगे और मेरी ही बदनामी करेंगे। यह सोचते हुए उसने मोटर बंद की और दुम दबाकर कोठी पर चला गया। उसका मन काम में नहीं लग रहा था। वह बेचैन होने लगा। किसी को बताने का साहस नहीं हो रहा था।

इधर नागम्मा की बड़बड़ चल रही थी। नीलाबाई ढग्या के कुएँ से पानी लाई। तब भी बाई घर नहीं लौटी। नागम्मा को शक हुआ, "यह छोरी कहाँ खेलती बैठी होगी? घर पर रोटी तक नहीं थी, दिनभर कुछ खाया भी नहीं।""वह इधर–उधर ढूँढ़ने लगी। इस टाट से उस टाट में पूछने लगी।" अरी ए रसिका छोरी कहीं दिखती है क्या देखा।" रसिकाबाई पानी बरतन से उँडेलते हुए–"मुझे भी आई तब से दिखाई नहीं दी।" नागम्मा गाली देते हुए, "छोरी कहाँ चली गई, क्या मुसीबत है, कहाँ जाकर बैठी होगी।" बोलकर पुकारने लगी– "बायो कहाँ हो? आ जा मैं तुझे मारूँगी नहीं"। बाई का पता नहीं चल रहा था। गाँव में गई होगी सोचकर, "अरे ए गधे, गाँव में जाकर भी तो देख, कुछ सामान–वामान लेने गई होगी।" सूर्या शर्ट पहनते चड्डी सीधी करके नाक ऊपर खींचते भागा। दुकान में नहीं दिखी तो बालू की तरफ गया। बालू सूर्या से पूछने लगा– "क्यों आया है रे?" अपनी बाई कहीं दिखाई नहीं दे रही। अम्मा ने भेजा इसलिए आया हूँ। बालू जानवर बाँधकर घास, चारा लाने घास के पास गया। सूर्या दुम की तरह उसके पीछे–पीछे चल रहा था। "कहाँ जाएगी, छोरियों के साथ कहीं खेल रही होगी।" बालू ने सात–आठ घास की पेटी काँधे पर रखी और बोला–"मालकिन, घर जाकर आता हूँ, माँ ने बुलाया है।" मालकिन ने पूछा–"जानवर अच्छी तरह बाँधे क्या?""हाँ जी, घास भी निकालकर रखी है।" "रात को आ जा, सबेरे पानी भरना है।"

बालू सूर्या को लेकर हनुमान मंदिर के सामने वाले मातंग बाडी के रास्ते सीधा टाट पहुँचा। दिन ढल चुका था। लोग दिया जला रहे थे। नागम्मा परेशान थी, उसे घबराहट होने लगी। सारे बाई को ढूँढ़ने लगे। निठूर को गई हुई औरतें वापस आई। उनके साथ गई होती तो कोई ना कोई बता देता पर कोई भी बाई के बारे में कुछ नहीं बता रहा था। नागम्मा निठूर मोड से आनेवाले लोगों से पूछ रही थी, "ऐ हमारे घर लोग आ रहे हैं या नहीं?" निकल गए थे आक्का आते ही होंगे। नीलाबाई थक हार पकाने के लिए बैठ गई रोटियाँ बनाने लगी। तो सोचा कि कलसी तो नहीं है–"आक्का कलसी लेकर कहीं कुएँ पर तो नहीं.........। ऐसा विचार मन में आते ही वह

चिल्लाई– आक्का ए आक्का, इधर आ। नागम्मा परेशान होकर शेरीबा के पास बैठी थी।" क्या काम निकाली अब? छोरी का पता नहीं। पाँव की उँगलियाँ तोड़कर हताश आह भरकर उठी। टाट में आते ही नीलाबाई बोली, "अपनी कलसी भी नहीं रही कहीं अपनी बाई कलसी लेकर कुएँ पर तो नहीं गई?" अम्मा सही बोल रही है माई। छोरी का घात हो गया। अब क्या करूँ? कहकर सीने पर हाथ पटक–पटककर रोने लगी।

❑❑❑

ओड़िया कहानी

बेटी लौट आई

गौरहरि दास

अनुवाद : सुरभि बेहेरा

जिसका सिर फट जाता है, उसका खून बहने लगता है; लेकिन कपाल फूट जाते हैं, उसका खून बहे या न बहे, उसकी आँखों से अश्रुधारा अवश्य बहने लगती है। उमाकांत भी अच्छी तरह समझ गए थे कि आज उनके सिर और कपाल दोनों ही फूट गए हैं। माथे का घाव शायद समयानुसार सूख भी जाए, लेकिन कपाल का घाव तो इस जन्म में ठीक हो ही नहीं पाएगा, क्योंकि पिछले पच्चीस साल पहले उन्होंने अपने ही हाथों से इसे उजाड़ दिया था। जो व्यक्ति अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मारता है, वह भला दूसरों को कैसे दोष दे सकता है!

आज से पच्चीस वर्ष पहले अंधकार में डूबे हुए शाम के समय की छवि उनके स्मृतिपटल पर स्पष्ट झलकने लगी थी। उस दिन करुणा नर्सिंगहोम में लगभग पंद्रह मिनट के लिए बिजली गुल हो गई थी। चारों ओर घना अंधकार छा गया था। जनरेटर ऑन होने से पहले, उस अँधेरे में चार हाथ सक्रिय हो उठे थे। घर के अंदर से दो हाथ एक महिला के तथा दूसरी तरफ हाथ जोड़कर खड़े हुए एक पुरुष के! दोनों बड़े ही शांत भाव के साथ अपने–अपने काम निपटा कर लंबी साँसें ले रहे थे। कुछ देर बाद महिला घर से बाहर चली जाती है, और वह पुरुष उसके हाथ में एक मोटा–सा लिफाफा थमा देता है। कमरे में रोशनी आते ही वह सुंदर महिला मुस्कुराते हुए कहती है, "अब आप जाइए और सभी को मिठाई बाँट दीजिए।"

उमाकांत ने अपने हाथों को जोड़कर ध्यान से देखा। उनके साफ–सुथरे हाथ में खून के दाग कहाँ से आए? ये क्या वही खून है, जो पच्चीस वर्ष पहले से उनके दोनों हाथों में लगे हुए हैं? नहीं, नहीं, यह कैसे संभव हो सकता है? वे तो हर दिन पाँच बार अपने हाथों को नामी–गिरामी साबून से रगड़–रगड़ कर धोते हैं, सफेद तौलिए से गीले हाथों को पोछते हैं। ऐसे में उनके हाथों में खून का दाग भला कैसे रह सकता है? इसके अलावा उन्होंने कभी किसी की हत्या तो की ही नहीं है?

हाँ, तूने हत्या की है...... अचानक उमाकांत की अंतरात्मा चीत्कार करने लगी। "जीवित इनसान की हत्या करने पर, उस खून का दाग एक दिन में ही मिट जाता है, लेकिन विश्वास की हत्या कर देने पर वह दाग महीना, साल, या फिर कई युग बीत जाने पर भी नहीं मिट पाता है।"

उमाकांत ने अँधेरे में दोबारा अपने हाथों को गौर से देखा और चौंक पड़े। सचमुच, यह खून का दाग इतना ताजा क्यों दिखाई दे रहा है?

वे अचानक चलना बंद कर एक पेड़ के नीचे चुपचाप खड़े हो गए। कल से ही उनके माथे में पट्टी बँधी हुई है। डॉक्टर का कहना है कि सात दिन तक यह पट्टी इसी तरह बँधी रहेगी। उन्होंने उस पट्टी को गुस्से से

खींचकर निकाल दिया। शायद, इसीलिए वहाँ से खून बहते जा रहा है।

कल डॉक्टर मिश्रा ने पूछा भी था, "ऐसे कैसे हो गया?"

उमाकांत समझ नहीं पाए कि वे उनके सवाल का क्या उत्तर देंगे। हड़बड़ाकर वे इधर–उधर देखने लगे थे। डॉक्टर बाबू के चैंबर की दीवार पर इनसानों के शरीर के भीतरी हिस्से का चित्र टंगा हुआ था। वह उसी चित्र की ओर देखे जा रहे थे। डॉक्टर मिश्रा ने अपनी ओर से मंतव्य देते हुए कहा, "ईश्वर की कृपा है कि चोट ज्यादा नहीं लगी है। वर्ना मरीज वहीं पर खत्म हो गया होता।" उसके बाद हँसते हुए कहने लगे, "आपको किसी ने मारा तो नहीं है?"

उमाकांत उनकी बातें सुनकर चौंक पड़े। ये डॉक्टर हैं या पुलिस?

उसी बात को याद कर उनकी आँखों से आँसू छलक पड़े। चारों ओर झाँककर देखा, कोई उन्हें देख तो नहीं रहा! रात के बारह बज रहे थे। अब तक अर्पणा उनका इंतजार कर–करके थक गई होगी। परेशान होकर बार–बार उसे फोन कर रही होगी; लेकिन उमाकांत जानबुझकर फोन अपने साथ नहीं लाया था। टी टेबल के ऊपर जानबूझकर उसने फोन छोड़ दिया था। यह सोचकर कि रहने दो अब मोबाइल फोन के साथ उनका कोई संपर्क ही नहीं है।

उनके मन में फिर से पच्चीस वर्ष पुरानी एक शाम की याद ताजा हो गई। दरअसल, उस दिन की उस घटना को वे कभी भूल ही नहीं पाते। जबकि उस घटना के बाद उन्हें लगने लगा था कि समय के साथ धीरे–धीरे वह सब कुछ भूल जाएँगें। घने अंधकार में घटित वह क्षण भी सभी की आँखों से हमेशा की तरह धूमिल हो जाएगा। हालाँकि उस घटना के बारे में अपर्णा कुछ भी नहीं जानती थी और न ही योगमाया के माँ–बाप को भी इसकी कोई जानकारी थी। इसलिए उन्होंने मन ही मन सोच लिया था कि किसी को इस बात की कभी हल्की–सी भनक भी नहीं पड़ेगी।

योगमाया!

एक छोटी–सी बच्ची की मासूम आँखें उमाकांत कीआँखों के सामने स्पष्ट झलकने लगी। उसके हाथ से नर्सिंगहोम के टैग को निकालकर एक छोटे बच्चे के हाथ में उस टैग को डालते वक्त उसके दाहिने हाथ की अँगूली से नर्स के हाथ में खरोंच लग गई थी। शायद वह मासूम बच्ची कह रही हो, कि ऐसा मत करो।

अतीत की बातों को याद कर उमाकांत की आँखें भर आईं। वह मन ही मन कहने लगे, "मैं सचमुच दोषी हूँ, अपराधी हूँ। उस दिन मैं दुर्गा को छोड़कर महिषासुर को अपने घर ले आया था। मेरी इस हरकत पर मुझे सजा नहीं मिलती तो और किसे मिलती?"

इसी बीच एक मालगाड़ी कर्कश आवाज करती हुई कटक स्टेशन के प्लेटफार्म को अतिक्रम करते हुए आगे बढ़ गई।

उमाकांत अपने बेटे देवदत्त की पढ़ाई के विषय में सोच रहे थे। उसकी तालीम और लालन–पालन में पत्नी अपर्णा और उसने कभी कोई कमी नहीं की। नर्सरी से लेकर एम.बी.ए. की पढ़ाई तक हमेशा उसे अच्छे शिक्षानुष्ठान में ही पढ़ाया गया। अपने इकलौते बेटे की खुशी के लिए माँ–बाप दोनों ने मिलकर यथासंभव सब कुछ करने की कोशिश की है; लेकिन इतने प्रयत्न और इतने प्यार–दुलार के बाद भी देवदत्त एक अच्छा इनसान नहीं बन पाया।

उमाकांत के सिर में दर्द हो रहा था। प्लेटफार्म के एक कोने में एकांत जगह देखकर वे चुपचाप बैठ गए। कल देवदत्त ने उनके सिर पर क्रिकेट बैट का एक जोरदार

प्रहार कर दिया था। उसी के नजदीक खड़ी अपर्णा की चीख सुनकर वह पागल थोड़ा डर–सा गया था। वर्ना, जिस भयंकर रूप में उसने बैट पकड़कर अपने हाथों को उठाया था, अगर उतनी जोर से चोट लग गई होती तो उमाकांत के सिर के दो टुकड़े हो गए होते।

उस दिन उमाकांत ने अपने बेटे को गुस्से से तमतमाते हुए पूछा, "वह लड़की जो कुछ भी कह रही है, क्या वह सच है? तू ऐसा काम कैसे कर सकता है?"

बस! इस जरा सी बात पर पच्चीस वर्ष के बेटे ने पलंग के नीचे रखी हुई बैट को उठाकर बाप के सिर पर वार कर दिया।

धिक्कार है ऐसे जीवन का! उमाकांत मन ही मन बुदबुदाते हुए अतीत की यादों में खो गए थे। उस दिन करुणा नर्सिंगहोम में कैलास महांति की पत्नी और अपर्णा दोनों ने एक ही समय में केवल पाँच मिनट के अंतर में दो बच्चों को जन्म दिया था। बच्चे के जन्म होने तक कैलास महांति नर्सिंगहोम पहुँच नहीं पाए थे। उसकी पत्नी बेहोशी की हालत में बिस्तर में लेटी हुई थी। उसी सुयोग का फायदा उठाकर उमाकांत ने अपने मन में बहुत दिनों से छिपे हुए लालच को नर्स की मदद से चरितार्थ कर दिया था। कैलास महांति के बेटे की जगह अपनी बेटी को रख देने का बंदोबस्त उसने भली–भाँति कर दिया था।

बुद्धिमती नर्स ने उन्हें उत्साहित करते हुए कहा भी था, "लड़का कार्तिक्य की तरह बहुत सुंदर है। चाहे जो भी हो लड़का तो लड़का ही है और लड़की तो लड़की ही है। एक बार ससुराल चले जाने के बाद लड़की तो पराई ही हो जाती है।"

नर्स की बात सुनकर उमाकांत बलवंतराय चौंक पड़े थे। डॉक्टर ने भी उन्हें पहले से चेतावनी भी दी थी कि अपर्णा को दूसरी बार माँ बनने का सौभाग्य नहीं मिल पाएगा। "आपका पहला बच्चा स्वस्थ और सबल रूप में जन्मे, आपके जीवन में वही आपके प्रति ईश्वर का आशीर्वाद होगा।" यही सोचकर एक ही पल में आशंका ने उनके विवेक को कमजोर बना दिया था। अगर बेटा उनकी गोद में नहीं आएगा तो उनके इतने बड़े कारोबार को कौन सँभालेगा? उनकी सारी जमा–पूँजी मिट्टी में मिल जाएगी! उन्हें मुखाग्नि कौन देगा, उनके वंश में उनका श्राद्ध करने वाला कौन होगा? उनके बाद कौन उनके परिवार कर नाम रखेगा? क्या उनके मरने के बाद बलवंतराय के वंश का नाम मिट जाएगा?

उमाकांत के मन के भाव को पढ़कर नर्स ने उन्हें समझाते हुए कहा, "आप परेशान मत हों, मैंने आपकी आंतरिक भावनाओं को समझकर अपना काम कर दिया है। अब आप मेरी बातों का ध्यान रखिएगा।" उसकी बात सुनते ही उमाकांत ने रोबोर्ट की तरह तुरंत पॉकेट से एक लिफाफा निकालकर उसके हाथों में थमा दिया। कुछ ही देर में पूरे नर्सिंगहोम में यह खबर फैल गई कि उमाकांत को 'बेटा जन्मा' है।

सिजेरिअन ऑपरेशन होने की वजह से माँ और बच्चा दोनों को सात–सात दिन के लिए नर्सिंगहोम में ही रहना पड़ा। आठवें दिन जब उमाकांत अपनी पत्नी को लेने के लिए नर्सिंगहोम जा रहे थे, तो उन्होंने देखा कैलास महांति उनकी बेटी को अपनी समझकर घर लौट रहे थे। उस दृश्य को अपनी आँखों से देखने के बाद उमाकांत को मन ही मन बहुत सुकुन मिल गया। दोनों बच्चों के फेर–बदल से किसी के मन में कोई शंका उत्पन्न नहीं हुई थी, यहाँ तक कि कैलाश महांति की पत्नी को भी इसकी भनक तक नहीं पड़ी थी। उमाकांत के लिए यही सबसे बड़ी तसल्ली थी।

यह बिल्कुल सच है कि इस बात की जानकारी किसी को नहीं थी। इस षड्यंत्र को

केवल चार लोग ही जानते थे। उनमें से दो तो अबोध बच्चे ही थे, जिनके पास कुछ भी कहने की क्षमता ही नहीं थी; और दो लोगों में एक नर्स राधारानी और दूसरा स्वयं उमाकांत। कुछ ही दिनों पहले उमाकांत को अपनी खोज–खबर से जानकारी मिली कि नर्स राधारानी की मौत लगभग पाँच वर्ष पहले ही हो गई थी। अब इस घटना के एकमात्र गवाह वे स्वयं ही थे।

एक दिन अपना काम खत्म कर घर लौटते वक्त उमाकांत अपने बेटे और कैलाश महांति की बेटी के भविष्य की कल्पना करने लगे। ब्लॉक ऑफिस में काम करने वाले कैलाश महांति की बेटी की पढ़ाई–लिखाई सरकारी स्कूल में होगी, किसी तरह मैट्रिक पास करने के बाद किसी सरकारी कॉलेज में बी.ए. पास करेगी और उसके बाद या तो बी. एड की डिग्री लेकर किसी स्कूल में शिक्षिका बन जाएगी। कुछ दिनों बाद कैलाश महांति अपनी ही तरह एक छोटे ऑफिसर या फिर किसी क्लर्क के साथ अपनी बेटी का विवाह कर उसे उस दायित्व से मुक्ति मिल जाएगी। इतना पूरा कर देने के बाद उसकी बेटी का भविष्य वहीं थम जाएगा।

लेकिन उमाकांत का बेटा जीवन भर ऊँचाइयों को छूता रहेगा। उसकी ऊँचाई की सीढ़ी का कभी अंत नहीं होगा। बलवंतराय कंसट्रक्शन और बलवंतराय ऑटोमोबाइल कंपनी के साथ और भी कई सारी कंपनी के नाम जुड़ते चले जाएँगे। वह अपने बेटे को बिजनेस में तरक्की करने के लिए अमरीका पढ़ने के लिए भी भेजेंगे। वहाँ से पढ़ाई पूरी करके लौटने के बाद ओड़िशा के किसी प्रभावशाली एवं क्षमतापूर्ण राजनेता की बेटी के साथ उसकी शादी करा देगा। राजनीति और व्यापार दोनों का तालमेल न हो तो किसी भी व्यवसाय का निर्माण करना आसान नहीं होता।

उमाकांत ने मन ही मन अपने बेटे के विवाह के लिए रिश्ता पक्का कर लिया था। शासक दल के विधायक दिव्यसिंह मउगजराय की एक ही लड़की है। वह भी एम.बी.ए. की पढ़ाई पूरी कर चुकी है। वैसे इस संबंध में उसने उसके पिता के साथ बातचीत भी कर ली थी। रिश्ते की बात हो जाने के बाद उसने खुद अपने बेटे को भी इस बात की जानकारी दे दी थी। लड़की वाले घर आकर देवदत्त से मिल भी चुके थे। देवदत्त और अपर्णा ने उनके घर जाकर लड़की को अँगूठी पहनाकर बात पक्की कर दी थी।

लेकिन, उसके पीठ पीछे देवदत्त इतना बड़ा कांड कर देगा, भला ऐसी बात वे कैसे जान पाते? अपने पिता के पास पाँच मिनट बैठकर कभी कुछ बताता भी तो नहीं था। जब भी नजदीक आता, केवल अपनी जरूरतों के विषय में ही बात करता, पैसे के अलावा उसे और कुछ नजर ही नहीं आता। क्रेडिट कार्ड मिल जाने के बाद तो उसे और किसी भी काम के लिए उमाकांत के पास आने की जरूरत ही महसूस नहीं होती। उसके पास अपने पिता से बात करने के लिए समय ही कहाँ रहता, जो अपनी बात उन्हें बता सके।

कैलाश महांति की बेटी भी अपने विषय में कोई भी बात अपने पिता को नहीं बताती। लेकिन वह चाहे या न चाहे उसकी हर छोटी–बड़ी बातें उमाकांत के पास किसी न किसी माध्यम से पहुँच ही जाती।

बेटी के जन्म के कुछ दिनों बाद ही कैलाश महांति का तबादला बारिपदा शहर में हो गया था। उसके तबादले की सूचना सुनकर उमाकांत को बहुत शांति महसूस हुई थी। हमेशा के लिए उसके सिर से एक बड़ा बोझ टल गया था। लेकिन चौदह वर्ष के बाद रामचंद्र जी के वनवास से लौटने की तरह कैलाश महांति भी वापस लौट आए थे।

2001 अप्रैल शाम के समय उमाकांत बाबू अपने बैठकखाने में बैठकर टी.वी. देख रहे थे। उसी समय टी.वी. के पर्दे पर कैलास महांति की तस्वीर दिखाई पड़ी। हठात् उसकी

तस्वीर देखकर उमाकांत चौंक पड़े। अभी तक वे भलीभाँति कुछ समझ भी नहीं पाए थे कि अचानक कैलाश महांति की बेटी योगमाया की तस्वीर भी टी.वी. में आने लगी, उसे मैट्रिक की परीक्षा के लिए पूरे राज्य में टॉपर घोषित किया गया था, बिना किसी कोचिंग, बिना ट्यूशन के योगमाया अट्ठानवे प्रतिशत नंबर लेकर पूरे राज्य में टॉपर बन गई थी! टी.वी. के पर्दे पर दोनों बाप–बेटी एक–दूसरे को मिठाई खिला रहे थे। लड़की की माँ पर्दे के नजदीक खड़ी होकर दोनों बाप–बेटी की ओर आंनद और गर्व से निहारे जा रही थी।

उमाकांत के रिमोर्ट से टी.वी. बंद करते वक्त पीछे खड़ी अपर्णा ने अपना मंतव्य देते हुए कहा, "सचमुच, उनकी लड़की रूप–गुण सभी में सुंदर है।"

उस दिन पत्नी की जुबान से उसके लिए तारीफ सुनकर उमाकांत चोर की तरह दुबककर क्लब चले गए थे।

उस दिन से योगमाया का चेहरा एक स्थिर तस्वीर की तरह उनकी आँखों से ओझल ही नहीं हो पाता। वे जहाँ भी जाते, जो कुछ भी करते, हर वक्त योगमाया का चेहरा उनकी आँखों के आगे घूमता रहता। योगमाया बारहवीं कक्षा विज्ञान में सर्वश्रेष्ठ (टॉपर) हुई एवं उसके बाद एम.बी.बी.एस में भी टॉपर हुई। अंत में ऑल इंडिया इंस्टिट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस परीक्षा में टॉपर होकर दिल्ली विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की डिग्री हासिल की। कुछ दिन पहले छह महीने के लिए कॉमनवेल्थ ट्रेनिंग के लिए योगमाया लंदन भी गई थी।

पिछले दिनों की उसी खबर को समाचारपत्र से फाड़कर उमाकांत ने चार भाग में मोड़कर अपने पॉकेट में रख लिया था। उमाकांत कुछ–कुछ देर में उसे पॉकेट से निकालकर बार–बार देखते। अब तो अंधेरे में भी उन्हें अच्छी तरह योगमाया का हँसता –मुस्कुराता चेहरा दिखाई पड़ने लगता।

जिस दिन सुबह समाचार पत्र के मुखपृष्ठ में योगमाया के कृतिव्य का पूरा विवरण छपा था, उसी दिन देवदत्त के क्रिकेट बैट की मार से उनका सिर फट गया था। यह किस्मत का निष्ठुर परिहास के अलावा और क्या हो सकता है? उमाकांत योगमाया की तस्वीर वाले पेपर को हाथ में पकड़ बिजली के खंभे के पास गए। डॉक्टरों का कहना है कि इनसान की आँखें उनके जन्म के समय जितनी बड़ी होती हैं, मरते वक्त भी उतनी ही बड़ी रहती हैं। शरीर के दूसरे अंगों की वृद्धि होती है, लेकिन आँखों का आकार नहीं बढ़ता। इन्हीं आँखों को उन्होंने उस दिन नर्सिंग होम में देखा था। जब कैलाश महांति अपनी पत्नी और बच्चे को लेकर रिक्शेसे घर जा रहे थे, उसी वक्त वे चोरों की तरह मुँह छिपाकर वहाँ से चले आए थे। उसी समय योगमाया की आँखों पर उनकी नजर पड़ी थी।

उमाकांत बिजली के खंभे के पास बैठकर फफक–फफक कर रो पड़े। उस एक क्षण में उन्हें अपनी क्षमता, संपत्ति, बुद्धि एवं विद्या सब कुछ निरर्थक प्रतीत होने लगी थीं।उन्होंने मन ही मन अपने–आपको कोसते हुए कहा, ऐसी जिंदगी जीकर कोई फायदा नहीं है। अब वे जीवित रहकर भी प्रतिदिन मौत का सामना करेंगे; और मरने के लिए जीवित रहना भी कोई इनसानियत है? अपने ही घर में देवदत्त के हाथों से मार खाया। जिस घर में उसकी शादी की सोच के साथ सगाई करने के लिए जाने वाले थे, अब उस घर में उसकी शादी कभी नहीं हो पाएगी। उन्हें महसूस होने लगा कि योगमाया के अभिशाप से वे अंदर ही अंदर खोखले होते जा रहे हैं। ऐसे जीने से तो अच्छा रेल की पटरी में मर जाना ही बेहतर होगा।

उमाकांत इन्हीं ख्यालों से परेशान थे कि उसी समय एक ट्रेन कटक स्टेशन को पारकर आगे चली गई। उमाकांत बिजली के खंभे के

नजदीक से उठकर महानदी की दिशा की ओर आगे बढ़ने लगे।

देवदत्त की शादी तय होने के बाद उसके दूसरे दिन रविवार का दिन था। पिछले दिन सुबह साढ़े नौ बजे उमाकांत अपने ऑफिस पहुँच गए थे। करीब सुबह के दस बजे होंगे अचानक एक लड़की उनसे मिलने के लिए वहाँ आईं शुरुआत में उस लड़की को नजदीक आते देख उमाकांत ने सोचा, गाड़ी खरीदने के लिए कोई ग्राहक होगी। इसलिए उमाकांत ने सोचा, शायद यह लड़की भी कोई ग्राहक ही होगी। कभी–कभी कोई परिचित लोग, या फिर कोई बड़े पदवी वाले लोग थोड़ा रियायत माँगने के लिए उनके पास आते हैं। यही वजह थी कि उमाकांत ने सोचा, यह लड़की भी कोई ग्राहक ही होगी।

उन्होंने उस लड़की को कुर्सी की ओर इशारा करते हुए बैठने के लिए कहा। लेकिन वह लड़की कुर्सी पर न बैठकर उनके पास आई और उन्हें पैर छूकर प्रणाम किया। उसके इस व्यवहार से उमाकांत आश्चर्यचकित हो गए। कोई भी ग्राहक इस तरह उनके पैर छूकर उन्हें प्रणाम तो नहीं करता है। शायद यह उनके किसी दोस्त की बेटी होगी?

उन्होंने उससे पूछा भी था, "बेटा", मैं तुम्हें पहचान नहीं पाया। क्या तुम मुझे अपना परिचय दे सकती हो?

उस लड़की ने मेरे प्रश्न को सुनते ही सीधे सरल शब्दों में पूछा, आपने अपने बेटे देवदत्त की शादी दिव्यसिंह मउगजराय की बेटी के साथ करने का तय किया है न?

उमाकांत उसकी बात सुनकर आश्चर्यचकित हो गए। इस बात की चर्चा तो केवल अपने रिश्तेदारों तक ही सीमित थी। किसी भी बाहरी लोगों को उन्होंने कुछ भी नहीं कहा था। सारी बातें तय होने के बाद ही दूसरे लोगों को इस बारे में जानकारी दी जाएगी। सगाई की सारी रस्में धूम–धाम से होने के बाद, अँगूठी पहनाने और भोजन का कार्यक्रम होटल में होगा; लेकिन इस लड़की को इन सारी बातों की जानकारी पहले से कैसे हो गई?

इतनी देर तक इन्हीं ख्यालों में उलझे रहने के बाद उन्होंने उसकी बातों का जवाब देते हुए कहा, "हाँ; लेकिन तुम्हें कैसे पता चला? क्या तुम दिव्यसिंह बाबू की लड़की की दोस्त हो?"

लड़की ने थोड़ा इधर–उधर देखा। उस कमरे में उस वक्त उन दोनों के अलावा कोई नहीं था। कुछ देर बाद आँखें नीची करे उसने जो कुछ भी कहा, उसे सुनकर उमाकांत हतप्रभ रह गए थे। उसने बताया, "मेरा नाम तनुश्री है। पिछले तीन साल से मैं और देवदत्त एक दूसरे से प्यार करते हैं। हम दोनों ने शादी करने की तारीख भी तय कर ली थी। मुझे यह बताते हुए शर्म आ रही है कि अभी दो महीने से मेरे पाँव भारी हैं। लेकिन अभी कुछ दिनों से देवदत्त न ही मुझसे बात करता है और न ही मुझसे मिलने आता है। कल उनके दोस्तों से मुझे पता चला कि आपने उनकी शादी दूसरी जगह तय कर दी है। आप मुझे न्याय देगें, इसी उम्मीद से मैं यहाँ आई हूँ।"

उसकी बातें सुनकर अचानक उमाकांत बाबू का चेहरा झुलस गया और सिर भी चकराने लगा। उसकी बातें अपने कानों से सुनने के बावजूद उन्हें विश्वास करने का मन नहीं हो रहा था। परेशान होकर उन्होंने टेबल पर रखे हुए पानी के गिलास को उठाया और एक ही साँस में वे पूरा पानी पी गए।

तनुश्री ने अपने वेनिटी बैग से कुछ फोटो निकालकर उमाकांत बाबू के हाथों में थमा दी थीं। उनमें देवदत्त के साथ तनुश्री की कई सारी तस्वीरें थीं।

तनुश्री ने कहा, "आप मेरे पिताजी को जानते होंगे, मैं पुलिस आईजी आर.के सिंह की

बेटी हूँ। मैंने इस बारे में उन्हें कुछ नहीं बताया है; लेकिन मेरी माँ सब कुछ जानती है। अंकल मुझे विश्वास है आप मुझे निश्चित रूप से न्याय देंगे।"

इतना कहकर वह जाने लगी थी।

उसे जाते देख उमाकांत अपनी कुर्सी से उठकर खड़े हो गए और दोनों हाथ जोड़कर कहने लगे, "बेटा, मेरी एक बात को ध्यान से सुन, मैंने देवदत्त की शादी लगभग तय कर दी है। तू मेरी इज्जत का थोड़ा तो मान रख।"

उमाकांत का जवाब सुनकर, कुछ देर पहले असहाय दिखने वाली तनुश्री का चेहरा, अचानक गंभीर हो गया था। उसने तुरंत उत्तर दिया, "आपको अपनी इज्जत की बड़ी चिंता है; लेकिन मेरी क्या कोई इज्जत नहीं है? आप दो दिन के अंदर अपनी राय मुझे बता दे, वर्ना मैं। कमिश्नर या कोर्ट की मदद लेने के लिए मजबूर हो जाऊँगी। देवदत्त जैसे लोफर को सही रास्ता दिखाने के लिए मैं मिडिया के सामने अपनी बदनामी होने से भी नहीं डरूँगी।"

इतना कहकर तनुश्री गुस्से से भन्नाते हुए चली गई।

उसके चले जाने के बाद उमाकांत बाबू को ऐसा लगा मानो उनके वातानुकूलित कमरे में गर्म हवा बहने लगी हो। करीब दस मिनट तक अपने माथे में हाथ रखकर वे चुपचाप कुर्सी में बैठे रह गए।

उस दिन दुकान से लौटने के बाद उन्होंने अपने बेटे से केवल इतना ही पूछा वह लड़की जो कह रही है, सच है या झूठ? उन्होंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि उनका बेटा एक दिन उन्हें सभी की नजर में इस तरह बदनाम करके छोड़ देगा। उसके रिश्ते की बात करने से पहले उन्होंने बार–बार अपर्णा और देवदत्त से अच्छी तरह पूछ लिया था। उन लोगों ने जब इस शादी करने के लिए हामी भर दी, उसके बाद ही उन्होंने दिव्यसिंह बाबू के साथ इस रिश्ते की बात को आगे बढ़ाया था। अगर अभी यह रिश्ता टूट गया तो दिव्यसिंहबाबू अपमानित महसूस करेंगे। वे शासन दल के एक नामी विधायक के रूप में जाने जाते हैं। उनकी लड़की के साथ रिश्ता टूट जाने वाली बात को इतनी आसानी से ग्रहण नहीं कर पाएँगें। उनकी जगह अगर उमाकांत खुद भी रहते तो वे भी इस बात को इतने सहज रूप में नहीं ले पाते। यह बात सुनने के बाद दिव्यसिंह बाबू के उग्ररूप से, उमाकांत के व्यवसाय पर भी असर पड़ेगा। इसलिए तनुश्री की धमकी पर विशेष ध्यान न देकर विवाह के आयोजन को आगे बढ़ाने से ही, अपनी इज्जत को बचाया जा सकता था।

शायद पिछली रात को देवदत्त कुछ ज्यादा ही शराब पीकर घर लौटा था। सुबह के साढ़े ग्यारह बजे तक उसकी नींद ही नहीं खुल पाई थी। उस दिन उमाकांत ने उसे नींद से जगाते हुए ऊँची आवाज में कुछ पूछा था। सिर्फ इतनी सी बात में देवदत्त पलंग के नीचे से क्रिकेट बैट को खींचते हुए लाया और उमाकांत के माथे में कई बार प्रहार करता रहा।

उमाकांत चीखते हुए "मर गया, मर गया" कहकर वहीं जमीन पर बैठ गए थे। अपर्णा ने अपने पति की चीख सुनते ही दौड़कर फ्रीज से बर्फ लाई। यही मौका पाकर देवदत्त घर से निकलकर भाग गया था।

उमाकांत अपनी आँखों से बहते हुए आँसूओं को पोंछते हुए सोचने लगे, इसमें बेचारी अपर्णा का दोष ही क्या है? उसे तो पता ही नहीं है कि देवदत्त को उसने अपनी कोख से जन्म नहीं दिया। अगर इस दृष्टि से परखा जाए तो उमाकांत ने अपनी पत्नी को बहुत बड़ा धोखा दिया है। योगमाया से भी अधिक तकलीफ अपर्णा को होगी, जिस दिन उसे यह पता चलेगा कि देवदत्त उसका खुद

का कोखजाया बेटा नहीं है। इसलिए जो जहाँ है, उसे वहीं रहना ही सही होगा। वह खुद ही अपने परिवार से अलग हो जाएगा। इस पूरे संसार में उसके जैसे अभागे के लिए कोई जगह नहीं है।

उमाकांत अपने आप से प्रश्न करने लगे थे, क्यों सिर्फ एक बेटे को पाने के लिए वह इतना बेचैन हुए जा रहे थे। भला ऐसा बेटा उसके कुल की रक्षा कैसे करेगा? जो बेटा अपने माँ–बाप के जीवित रहते उन्हें तिल–तिलकर मारने का बंदोबस्त करता है, उनके मरने के बाद किस तरह से उनकी आत्मा को शांति दे पाएगा?

योगमाया जैसी बेटी ही कितनी सारी आशा, अभिलाषाओं के साथ माँ की कोख में आती हैं; लेकिन पुत्र के मोह में पड़कर उनके अपने ही बाप उन्हें कंस के हाथों सौंप देते हैं। कंस उन्हें मार तो नहीं पाते, क्योंकि योगमाया बिजली कन्या बनकर उनके हाथों से खिसक जाती है। वे लोग दरिद्र, लांछण, उपेक्षा एवं अनादर के पात्र बनकर रह जाते हैं। समयानुसार धीरे–धीरे वे अंधकार की छाती को चीरकर सुबह की पहली किरण बनकर अपनी–अपनी प्रतिभा की रोशनी में चमकने लगती हैं।

उमाकांत शायद अंतिम बार अपने प्रिय शहर कटक की ओर एकनजर घुमाकर वापस लौट आए।

रात्रि का पहर लगभग समाप्त ही होने वाला था। इसलिए अब देर करने से कोई फायदा होने वाला नहीं था। अंधेरे–अंधेरे में ही अपने जीवन से मुक्त हो जाना उचित होगा। यही सोचकर उमाकांत प्लेटफार्म से थोड़ा दूर चले गए। यहाँ से उन्हें कोई नहीं देख सकता था। वहाँ से नदी के पुल को पारकर ट्रेन आने से पहले वे पटरी पर लेट जाएँगे। उसके बाद उनके जीवन की सारी तकलीफ खुद–ब–खुद समाप्त हो जाएगी।

कुछ देर बाद एक चमकदार रोशनी हिलते–डुलते पटरी पर पड़ रही थी। उसके साथ–साथ ट्रेन के ईंजन की भी आवाज आ रही थी। हाँ, ये ट्रेन ही आ रही थी। इन्हीं ख्यालों में उमाकांत घास केढेर, प्लास्टिक बोतल आदि को लाँघते हुए रेल की पटरी पर आ गए। अचानक उनका पैर एक नरम लिचलिचे से पदार्थ के ऊपर पड़ा और उसके तुरंत बाद उन्हें किसी नवजात शिशु के रोने की आवाज सुनाई पड़ी।

उमाकांत अचानक चौंक पड़े। ऐसी विचित्र परिस्थिति के लिए वे कभी भी तैयार नहीं थे। उन्होंने झुककर ध्यान से देखना चाहा तो उनकी आँखों के बिल्कुल नजदीक साड़ी में लिपटा हुआ एक नवजात शिशु लेटा हुआ था।

उमाकांत ने पटरी के आगे देखा तो रेल का ईंजन दो–तीन सौ मीटर हाथ की दूरी पर दिखाई दे रहा था। क्या वे बच्चे को नीचे फेंक देगें? या फिर बच्चे के साथ उसी तरह रेल की पटरी पर खड़े रह जाएँगे! अचानक किसी का धक्का खाने की तरह उनके कदम पीछे खिसकने लगे। एक मालगाड़ी धड़धड़ाते हुए उमाकांत को अतिक्रम कर आगे बढ़ गई।

अब उमाकांत और उनके दोनों हाथों के आलिंगन में एक छोटी सी नवजात बच्ची उन्हें एकटक गौर से देखे जा रही थी। कोई हतभागिनी माँ या फिर उन्हीं की तरह कोई अपराधी बाप उसे फेंककर चला गया होगा, उमाकांत को भी इस बात की कोई जानकारी नहीं थी।

अचानक महानदी की ओर से ठंडी हवा का झौका उमाकांत को भिगोकर चला गया। कुछ ही क्षण में उन्होंने तय कर लिया कि यह छोटी–सी नन्हीं बच्ची उनके प्रश्नों का जवाब बनकर आई है। शायद आज से पच्चीस वर्ष पहले के अपराध का प्रायश्चित करने के लिए जीवन ने उन्हें एक मौका दिया है।

उमाकांत दौड़कर प्लेटफार्म की तरफ भागने लगे। उनके सिर का दर्द भी अब उन्हें तकलीफ नहीं दे रहा था। बल्कि इस वक्त उस मासूम बच्चे को कुछ आहार देना उन्हें ज्यादा जरूरी महसूस हो रहा था।

उमाकांत ने प्लेटफार्म के टेलीफोन बूथ से अपर्णा के मोबाइल में रिंग किया। उमाकांत की आवाज सुनते ही फोन की दूसरी तरफ से अपर्णा फूट–फूटकर रोते हुए कहने लगी, "कहाँ हैं आप? सारी रात मैं आपका इंतजार करती रही। सभी जगह फोन कर–करके थक गई हूँ। आप कहाँ से बोल रहे हैं?" उमाकांत ने धीरे से कहा, "सुनो, अभी ड्राइवर तो नहीं आया होगा। इसलिए तुम जल्दी से कार लेकर इसी कटक स्टेशन के एक नंबर प्लेटफार्म में आ जाओ। तुम्हें आज बहुत सारी बातें बतानी हैं, फोन पर सारी बातें नहीं कह पाऊँगा।"

इतना कहकर उमाकांत ने रिसीवर रख दिया और उस छोटी–सी मासूम बच्ची की ओर ध्यान से देखने लगे। अब तक बच्चे के रोने की आवाज बंद हो गई थी। उन्होंने बच्चे को अपनी छाती से चिपकाते हुए कहा, "बेटा, और थोड़ा इंतजार कर ले, तेरी माँ जल्दी ही आ रही है।"

❑❑❑

डोगरी कविता

सरिश्टी, जीवन ते माह्नू

कृष्ण शर्मा

त्रिकुटा दे कींगरें पर कुतै
ब'रेआ होना मींह्
दरेया दी धार मटेआली ही
बेड़ी रेता पर पुट्ठी पेदी ही
कुसै जमांधरू मांदे आंगर–
चुप्प ते नझूक!

दरेया दी रोढू भौड़ें थमां परें
जतांह् हा पानी खड्डुत्त
दरैंह्कै दी इक टाह्ली
कुप्पड़ें मझाटै खड्डुत्त पानिया च धम्कियै
फ्ही आई खड़ोंदी ही जित्थूं टुरदी ही–
बज्झी दी ते बन्होई दी!

किश पक्खरू इक रीं' धै च
तेजी नै उड्डरदे
गासै दी खु'ल्ली पराता च
ब्हाऊ च तरदे निकली गे ते
तौले गै बझोन लगी पे–
काले चि'न्न मातर!

चानक
प्हाड़ें दे किंगरे उप्परा
उट्ठी ही घनी धुंद जिन्नै
बातावरणै दी दुआसी ते चुप्पी
समेटी लेई ही–
अपनी चिट्टी चादरै च!

❑❑❑

सृष्टि, जीवन और मानव

अनुवाद : कृष्ण शर्मा

त्रिकुट[1] के शिखरों पर कहीं
बरसा होगा पानी
दरिया की धारा मटमैली थी
नाव रेत पर औंधी पड़ी थी
किसी चिररोगी प्राणी की तरह–
मूल व निर्वाक्!

दरिया की सजीव लहरों से दूर
जहाँ थी जलराशि स्पंदनहीन
वृक्ष से टूटी एक टहनी
स्थिर जलावर्त में घूमती पुनः
लौट जाती थी जहाँ से चलती थी–
मर्यादित व बाधित!

कुछ पक्षी क्षितिज की ओर
विस्तृत ऊँचाई पर तीव्र गति से
आकाश की अतल गहराई में
अथक उड़ते चले गए
और शीघ्र ही प्रतीत होने लगे–
काले धब्बे मात्र!

सहसा
पहाड़ों की मुंडेरों से
उपजा घना कोहरा जिसने
वातावरण में व्याप्त
विरक्ति और सन्नाटे को समेट लिया
अपनी सफ़ेद चादर में.......

❑❑❑

1. त्रिकुटा : जम्मू अंचल की वह पर्वत–शृंखला जहाँ श्रीमाता वैष्णों देवी की गुफ़ा स्थित है।

स्त्री–जीवन और समकालीन यथार्थ को अभिव्यक्ति देती ग़ज़लें

कमलेश भट्ट कमल

कवयित्री ममता किरण मुशायरों एवं कवि सम्मेलन के मंचों से निकली हुई ग़ज़लकार हैं। उन्होंने उर्दू शायर राजेंद्र सिंह रहबर और दूसरे अन्य शायरों से प्रभावित होकर ग़ज़ल की दुनिया में प्रवेश किया है। लेकिन वह मूलतः और मन से हिंदी ग़ज़लकार ही हैं। जैसा कि पचहत्तर ग़ज़लों के इस सद्यः प्रकाशित आलोच्य ग़ज़ल संग्रह 'आँगन का शजर' की ग़ज़लों को पढ़कर बख़ूबी जाना जा सकता है। यह उनकी ग़ज़लों का पहला ही संग्रह है। इससे पूर्व वर्ष 2012 में उनकी कविताओं का एक संग्रह 'वृक्ष हरा भरा है' आ चुका है जो चर्चित भी रहा है। कहना न होगा कि हिंदी की छंदमुक्त कविता का कोई रचनाकार जब हिंदी ग़ज़ल में आता है तो वह अपने साथ वे सारे सरोकार भी ले आता है जो हिंदी कविता और उसकी परंपरा से जुड़े रहे हैं। लगभग ऐसे ही अंतरण से गुज़र कर कभी दुष्यंत कुमार ने हिंदी ग़ज़ल की राह पकड़ी थी। तब उन्होंने न केवल स्वयं के लिए अभिव्यक्ति का एक धारदार माध्यम खोज लिया था बल्कि उनके माध्यम से हिंदी में ग़ज़ल ने भी एक ऐसा मुहावरा पा लिया था जिसे उर्दू ग़ज़लकी परंपरा से अलग 'हिंदी ग़ज़ल' नाम मिला और जिसकी अनुगूँज हिंदी साहित्य के परिदृश्य पर लगातार पाँच दशकों से सुनाई दे रही है।

कविता और गीत की तुलना में ग़ज़ल शिल्प के स्तर पर एक विशिष्ट और अलग विधा है। एक ही ग़ज़ल विचारों और अभिव्यक्तियों के कई सारे पुष्पों के गुलदस्ते की तरह होती है। ऐसे में 'आँगन का शजर' की ग़ज़लों से गुज़रने पर यह पता चलता है कि ममता किरण की ग़ज़लें बहुस्तरीय और बहुआयामी हैं। उनके सरोकारों में यदि स्त्री–जीवन से जुड़े कई आयाम शामिल हैं तो समय और समाज के कड़वे यथार्थ का भी महत्वपूर्ण आयाम दिखाई देता है। इसी प्रकार पर्यावरण और कुछ वैश्विक मुद्दे भी उनकी चिंताओं में शामिल मिलते हैं। ईश्वर के प्रति उनके अंदर एक ख़ास तरह की विनम्रता का भाव है तो जीवन की जटिलताओं को लेकर अद्भुत जिजीविषा और संघर्ष–शक्ति तथा आत्मविश्वास भी उनकी ग़ज़लों से छन–छनकर बाहर आता रहता है। अपने तमाम शेरों में ममता किरण ने कुछ ख़ास कहने की

आँगन का शजर(ग़ज़ल संग्रह)/लेखक : ममता किरण/ किताबघर प्रकाशन, 4855–56/24, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली/प्रकाशन वर्ष – 2020/कुल पृष्ठ–96/मूल्य– ₹200/–

कोशिश की है। यह कोशिश किसी संदेश, किसी प्रतिबद्धता,किसी प्रतिकार,किसी प्रतिरोध या जिजीविषा के रूप में सामने आती है।

यदि सरोकारों की बात की जाए तो ममता किरण का मन सबसे ज़्यादा स्त्रियों की दुनिया में रमता दिखाई देता है, जो स्वाभाविक भी है। इन विषयों में उनकी अनुभूतियाँ न केवल गहरी हैं बल्कि उनकी अभिव्यक्तियाँ जिस रूप में सामने आई हैं, वे मन को भीतर तक छूती, भिगोती और उद्वेलित करती हैं। स्त्री–जीवन की इन अभिव्यक्तियों के कई पक्ष हैं। जैसे वे बेटियों के प्रति ख़ास क़िस्म के अनुराग और आत्मीयता से लबरेज दिखाई देती हैं। निम्न शेर से इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है–

बाग़ जैसे गूँजता है पंछियों से,
घर मेरा वैसे चहकता बेटियों से।
(पृष्ठ–15)

जन्मी जो एक प्यारी सी बिटिया हमारे घर,
बेनूर था जो घर उसे पुरनूर कर गई।
(पृष्ठ–19)

ऐसी बेटी को जन्म देने के लिए वे बग़ावत के स्तर तक उतरने के लिए भी तैयार दिखाई देती हैं–

बग़ावत है तो है अब जो भी होना है सो हो जाए,
जन्म देना है बेटी को न मारा जाए है मुझसे! (पृष्ठ–88)

बड़ी होती बेटियों के साथ ग़ज़लकार मज़बूती से खड़ी दिखाई देती हैं और उनके साथ मैत्रीभाव से पेश आते हुए अपने अनुभव से उन्हें सहेजती और सावधान भी करती चलती हैं–

नए ज़माने की लड़कियों तुम परंपरा का भी ध्यान रखना,
सँभालो तहज़ीब की विरासत जो हाथ से अब फिसल रही है। (पृष्ठ–25)
बदलेगी रीति आज तलक चल रही जो,
तुम अपने हक़ के वास्ते बिटिया लड़ा करो! (पृष्ठ–66)

लेकिन एक दिन यही बेटी जब अपने घर से विदा होकर ससुराल चली जाती है तो पूरे माहौल को उदासियों से भर जाती है–

वो बेटी जिससे चहकता था घर, चली गई
है वो दूसरे घर,
हमारे घर की हर इक ख़ुशी अब,
उदासियों में बदल रही है।
(पृष्ठ–25)

एक माँ के रूप में किसी स्त्री के साथ उसके बेटे के भी अटूट संबंध होते हैं। लेकिन जब ये संबंध बेटों की निष्ठुरता की वजह से कमज़ोर होते हैं तो माँ के दिल की घुटन तरह–तरह से अभिव्यक्त होती है और हर अभिव्यक्ति के साथ ही वह बिखरती चली जाती है। कुछ ऐसा ही एहसास हमें ममता किरण के निम्न शेरों से मिलता है–

आख़िरी लम्हे में माँ बेटे को चाहे देखना,
आँख दरवाज़े पे है और साँस अटकी जाए है। (पृष्ठ–41)
मेरा बेटा करता है जब गिला क्या किया है तुमने मेरे लिए,
उस वक्त लगता है बस यही जैसे ख़ुद ही अपनी सज़ा हूँ मैं।(पृष्ठ–79)
बेटे मैं तेरी माँ हूँ ज़रा बोल अदब से,
अच्छा नहीं है ये तेरा लहजा मेरे आगे।
(पृष्ठ–21)
ये क्या तुम पूछती रहती हो ख़त बेटे का आया है,
यक़ीं है तुमको अम्मा पत्र वो अब भी लिखेगा क्या? (पृष्ठ–81)
घर था बेटे का चुप ही रहना था,
उम्र ढलती हुई बितानी थी।
(पृष्ठ–94)
ये है फ़लसफ़ा नई नस्ल का कि हैं सर पे
बोझ ये माँ–पिता,

पड़े मस्तियों में ख़लल कोई यही बात
उनको जँची नहीं। (पृष्ठ–96)

एक माँ का अपने बच्चों के साथ वात्सल्य का जो रिश्ता होता है,वह बहुत ख़ास होता है। ममता किरण के यहाँ इस वात्सल्य के भी सुंदर नमूने उपलब्ध हैं–

अदा से अपनी वो सब को रिझाए,
खिलौना एक घर आया हुआ है।
(पृष्ठ–28)

घरके सब लोग भी चहकने लगे,
नन्हीं मुस्कान के बिखरते ही।
(पृष्ठ–46)

वो रख देगी चंदा को हाथों में उसके,
कि माँ अपने बच्चे को फुसला रही है।
(पृष्ठ–56)

माता–पिता को लेकर भी ममता किरण का स्त्री–मन ख़ासा संवेदनशील है। वे इस संवेदना को अलग–अलग कोनों से स्पर्श करते हुए उसे शेरों में ढाल देती हैं–

यूँ लगा जब ख़्वाब में देखा पिता को,
हों सदाएँ मंदिरों की घंटियों से!
(पृष्ठ–15)

दरख़्त पर जिस तरह से कोई पके है फल
बस उसी तरह से,
पिता के अनुभव की हर कहानी इक एक झुर्री में ढल रही है।
(पृष्ठ–25)

फिर लगा हाथ है माँ का सर पर,
फिर मुझे 'दीद–ए–तर' याद आया।
जिसकी छाया में सभी ख़ुश थे 'किरण'
घर के आँगन का शजर याद आया।
(पृष्ठ–26)

दिल का कठोर था वो मगर बाप भी तो था,
डोली चढ़ी जो बेटी तो आँखें हुईं सजल। (पृष्ठ–39)

कभी तो होता ही होगा पिता को दुख कोई,
न जाने कौन से जादू से थे छिपा देते।
(पृष्ठ–47)

तेरी सेवा से बढ़कर अब इबादत और क्या होगी,
तेरी गोदी में माँ मिलती है चारों धाम की ख़ुश्बू। (पृष्ठ–92)

ममता किरण की ग़ज़लों में।स्त्री–जीवन की विडंबनाओं ने भी काफी स्थान पाया है कदाचित ऐसी स्थितियाँ प्रत्येक स्त्री–जीवन की कड़वी सच्चाई हैं। इन्हें नीचे दिएगए कुछ उदाहरणों से समझने में मदद मिलेगी–

ऊँची उड़ान भरने की सौ हसरतें लिए,
पिंजरे में क्या फँसी कि वहीं वो ठहर गई। (पृष्ठ–19)

एक निर्णय भी नहीं हाथ में मेरे बेटी,
कोख मेरी है मगर कैसे बचा लूँ तुमको?
(पृष्ठ–20)

बेटियाँ गर ज़ियादा पढ़ जाएँ
उनके अनुकूल वर नहीं मिलता।
(पृष्ठ–37)

लाख चाहा था छुपा लूँ अपनी पीड़ा को मगर,
वो फफोलों की तरह लेकिन उभरती जाए है। (पृष्ठ–41)

इक जन्म ही ख़ुशी से निभा ले,
सात जन्मों की बातें करे है। (पृष्ठ–49)

ट्विटर, व्हाटसैप को तो अपना रही है,
हक़ीक़त के रिश्तों को बिसरा रही है। (पृष्ठ–56)

ज़रा–सा हँस के कभी बोल क्या दिया उससे,
कि शक के घेरे में रख दी वफ़ा मेरी तुमने। (पृष्ठ–65)

कोख में कत्ल किया क्या थी ख़ता माँ मेरी,
मुझसे पूछे मेरी बेटी तो बताए न बनें।

चाहती है कि वो उड़ जाए गगन को छू ले,

बेड़ियाँ पाँवों में ऐसी कि हटाए न बने। (पृष्ठ–73)

एक स्त्री को ऐसी विडंबनाएँप्रायः ही झेलनी पड़ती हैं। बावजूद इसके वह परिवार के लिए सदैव कुर्बान होने के लिए भी तैयार रहती है,जिसमें स्त्री–जीवन का सौंदर्य– बोध और प्रेमभाव कहीं दब–सा जाता है,छुप जाता है। कदाचित यही कारण है कि ममता किरण की ग़ज़लों में ऐसे भाव थोड़े कम दिखाई देते हैं–

घर में आया चाँद उसका जानकर वो,
छुपके देखे चूड़ियों की झिर्रियों से।
(पृष्ठ–15)

मेरी दुनिया में है कुछ इस तरह से उसका आना भी,
घटा सावन की या खुश्बू का झोंका जैसे आता है। (पृष्ठ–16)

अजब मेरी, ख़्वाहिश मैं क्या चाहती हूँ,
मैं तुझमें ही होना फ़ना चाहती हूँ।
हटे मेरे मन से ये कोहरे की चादर,
मैंबरसात में भीगना चाहती हूँ।
(पृष्ठ–51)

गली के मोड़ पर देखा था पहली बार जब तुमको,
बसी है आज भी मन में मेरे उस शाम की खुश्बू। (पृष्ठ–93)

तमाम सारे झँझावातों के बीच से गुज़रते हुए एक स्त्री–मन कैसे अपने आप को धैर्य बँधाए रखकर गहरे जीवट का परिचय देता है,इसके लिए ममता किरण के कुछ शेर अवश्य देखे जाने चाहिए–

है दूर तलक यूँ तो अँधेरा मेरे आगे,
है मुझको यकीं होगा उजाला मेरे आगे।
(पृष्ठ–21)

मंज़िलों को चूमने की ठान ली क़दमों ने जब,
राह की दुश्वारियों का सर उठाना कब हुआ? (पृष्ठ–36)

मेरा उड़ना ही था नहीं मुमकिन,
हौसलों का जो पर नहीं मिलता।
(पृष्ठ–37)

ये रख अहसास है तन्हा नहीं तू
कि तेरे साथ कोई चल रहा।
(पृष्ठ–41)

राह में काँटों का पहरा अच्छा लगता है मुझे,
और फिर उनसे निपटना अच्छा लगता है मुझे। (पृष्ठ–53)

भले दुश्मन हमें आघात देंगे,
भरोसा है उन्हें हम मात देंगे।
(पृष्ठ–55)

सारी दुनिया चाहे जो कहती रहे,
मैं जिसे पूजूँ वही भगवान है।
(पृष्ठ–17)

इक शजर खुद्दार टकराने को था तब,
थी चुनौती सामने जब आँधियों की।
(पृष्ठ–15)

ममता किरण की ग़ज़लों से उनके अंदर मौजूद संघर्ष की जद्दोजहद और आत्म–विश्वास जिस तरह फूट कर बाहर आता है, वह न केवल कवयित्री के प्रति आश्वस्ति का भाव पैदा करता है बल्कि उससे पाठक व श्रोता भी अपने आप को ऊर्जा से भरा हुआ महसूस करेंगे–

यूँ न ख़ामोश बैठेंगे हम,
तुम जो ढाते रहोगे सितम।
(पृष्ठ–61)

ज़िंदगी में वो रस्ता नहीं चाहिए,
जिसमें डर के हो जीना, नहीं चाहिए।
ज़िंदगी का सफ़र ख़ुद से पूरा करूँ।
मुझको कोई सहारा नहीं चाहिए।
(पृष्ठ–67)

तेज़ हवाएँ जब भी आएँ जलते दीप बुझाने को,
उनकी साज़िश बेपर्दा कर हर कोशिश बेकार करूँ। (पृष्ठ–69)

ठान ली है जवाब अब दूँगी,
चुप कहाँ तब रहूँ शराफत में। (पृष्ठ–74)

भले कुछ भी कहते रहो मुझे ये पता मुझे है,
कि क्या हूँ मैं,
मेरे बाजुओं में है दम बहुत नहीं कम किसी से ज़रा हूँ मैं।
(पृष्ठ–79)

उधर है फूल सुविधा के इधर काँटे उसूलों के,
मगर रस्ता उसूलों का न छोड़ा जाए है मुझसे। (पृष्ठ–88)

ममता किरण का संवेदनशील स्त्री–मन घर–गृहस्थी और परिवार व रिश्ते जीते हुए भी समय और समाज के कड़वे व नंगे यथार्थ को जिस सजगता से देखता–पकड़ता और अभिव्यक्त करता है,वह उनके ग़ज़लकार और कवि के सामाजिक सरोकारों को स्पष्ट करता है। इसलिए भी कि यह स्वर उनकी ग़ज़लों में भरपूर मात्रा में मौजूद दिखाई देता है। कुछ शेरों का उदाहरण अप्रासंगिक न होगा–

हालात ज्यों के त्यों ही रहे मेरे गाँव के,
काग़ज़ पे ही विकास की दिल्ली ख़बर गई।
भूमंडलीकरण ने बनाए बहुत अमीर,
लेकिन ग़रीब लोगों की दुनिया बिखर गई।
पूरी तरह से खिल भी न पाई थी जो कली,
हाथों में वहशियों के कुचलकर वे मर गई। (पृष्ठ–18)

जैसे भारत का शहीदों ने था सपना देखा,
ये जो भारत है ये उस ख़्वाब की ताबीर नहीं।
एक रोटी को चुराने की मुकर्रर है सज़ा,
मुल्क जो लूट ले उसकी कोई ताज़ीर नहीं। (पृष्ठ–27)

ईंट–पत्थर के इन जंगलों में किरण,
मेरे हिस्से था जो आसमान खो गया।
(पृष्ठ–29)

टिक नहीं पाएगा कोई सच यहाँ,
झूठ ने जारी किया फ़रमान है।
(पृष्ठ–17)

ममता किरण के यहाँ तमाम सारे सुख–दुख और यथार्थ के साथ पर्यावरण की संवेदनशील चिंताएँ भी मौजूद हैं, जो आज के समय की सबसे बड़ी चुनौती है। संतोष की बात है किहिंदी ग़ज़ल में इस तरह की चिंताएँ कई दूसरे ग़ज़लकारों में भी देखने को मिल रही हैं। लेकिन यहाँ ममता किरण के ही शेर प्रासंगिक हैं–

कच्चा मकान तो ऊँची इमारत में ढल गया,
आँगन में वो जो रहती थी चिड़िया किधर गई। (पृष्ठ–18)

देखता है परिंदा कटे पेड़ हैं,
ढूँढ़ता है कहाँ आशियाँ खो गया।
(पृष्ठ–29)

चाँद तारे नदी पेड़–पौधे,
ख़ूब कुदरत के भी काफ़िए हैं।
(पृष्ठ–49)

आने वाली नस्ल इसको देख पाए,
लोग कुछ धरती बचाने में लगे हैं। (पृष्ठ–58)

पर्यावरण के साथ–साथ ममता किरण की संवेदना में दुनिया की दूसरी भी कई चिंताएँ शामिल हैं। ऐसे शेर संग्रह की ग़ज़लों में एक निश्चित ऊँचाई पर खड़े दिखाई देते हैं–

सदियाँ लगी हैं पहुँचे हैं जो इस विकास तक,
बारूद से न खेल कि दुनिया तबाह हो।
(पृष्ठ–22)

दिन–ब–दिन बढ़ते ही जाते हैं जहाँ में रावण,
राम के हाथ में लगता है कोई तीर नहीं। (पृष्ठ–27)

ये चमकता हुआ जाल बाज़ार का,
इस चकाचौंध में नौजवाँ खो गया।
(पृष्ठ–29)

ये माहौल हिंसा व नफ़रत का हर सू,
ख़ुदा जाने दुनिया किधर जा रही है। (पृष्ठ–56)

अपनी ग़ज़लों में ममता किरण गाँव से शहर आए आदमी की मुश्किलें भी देख पाती हैं। तब वे कुछ इस तरह के शेर कहती हुई दिखाई देती हैं–

बहुत से ख़्वाब लेकर शहर में आया था वो एक दिन,
मगर दो वक्त की रोटी बमुश्किल ही जुटाता है। (पृष्ठ–16)

गाँव की अमराइयों का भूल जाना कब हुआ,
भागते इस शहर में इक आबोदाना कब हुआ। (पृष्ठ–36)

वे कितनी ही बार अपने अतीत में लौटती हैं और पुरानी यादों का एक पिटारा–सा खोल कर बैठ जाती हैं। तब उनके शेर कुछ इस अंदाज़ में उनका खुलासा करते हैं–

फोन वो ख़ुशबू कहाँ से ला सकेगा,
वो जो आती थी तुम्हारी चिट्ठियों से।
(पृष्ठ–15)

अपने बचपन का सफ़र याद आया,
मुझको परियों का नगर याद आया।
(पृष्ठ–26)

रफ़्ता–रफ़्ता ज़िंदगी का कारवां बढ़ता गया,
पर सफ़र बचपन का था जो वो पुराना कब हुआ। (पृष्ठ–36)

अबकी गाँव गई तो मैंने,
जी भर के आँगन देखा है।
(पृष्ठ–41)

ममता किरण की ग़ज़लों से एक और स्वर फूटता हुआ कई बार दिखाई दे जाता है और वह है ईश्वरीय सत्ता के प्रति विनम्रता के भाव का। वे ईश्वर के अस्तित्व को चुनौती नहीं देती हैं बल्कि उसे सहर्ष स्वीकार करती हैं और उसकी उपस्थिति को सृष्टि में सर्वत्र अनुभव भी करती चलती हैं। यहाँ वे उन बौद्धिकों से अलग दिखाई देती हैं जो स्वयं सहित दूसरी कई दुनियावी सत्ताओं को तो स्वीकार करते हैं, लेकिन ईश्वर की विराट सत्ता को लेकर एक कृत्रिम अस्वीकार उनके अंदर बना रहता है। कुछ शेर ममता किरण की इस आस्था के भी देखे ही जाने चाहिए–

कोई आँसू बहाता है कोई खुशियाँ मनाता है,
ये सारा खेल उसका है वही सबको नचाता है। (पृष्ठ–16)

सजदे में उसी सूर्य के झुकता है मेरा सर,
रखता है जो हर रोज़ उजाला मेरे आगे। (पृष्ठ–21)

जब कोई आस ही बाकी न बची,
तब मुझे तेरा ही दर याद आया।
(पृष्ठ–26)

टिकी जिसके दम पे है सृष्टि ये उसे है नहीं अभिमान कुछ,
कभी अपने मुँह से कहे नहीं कि हर एक कण में बसा हूँ मैं। (पृष्ठ–79)

इस प्रकार हम देख पाते हैं कि ममता किरण की ग़ज़लों में एक संवेदनशील ग़ज़लकार की तमाम विशेषताएँ मौजूद हैं। उनके साथ सिर्फ समस्या एक ही है कि वे हिंदी–उर्दू के द्वैत में उलझी हुई नज़र आती हैं। यह उलझाव इस हद तक भी है कि वे शेरों में एक ही जगह एक ही शब्द को दो तरह से लिखती हैं (उदाहरण स्वरूप 'मेरा' और 'मिरा'), एक उर्दू वालों के लिए और दूसरा हिंदी वालों के लिए! यदि उन्हें हिंदी का ग़ज़लकार बने रहना है जो कि वह हैं भी तो उन्हें इस द्वैत से बाहर आना होगा।

ममता किरण की कई ग़ज़लें उर्दू के तरही मुशायरों से निकली हैं पर वहाँ भी उन्होंने सार्थक हस्तक्षेप कर अपने गहन

सरोकारों के चलते अपनी ज़मीन तैयार की है। चाहे मुशायरे का मंच हो या कवि सम्मेलन का दोनों जगह उनकी उपस्थिति है।

अपने पहले ही ग़ज़ल संग्रह में ममता किरण ने अभिव्यक्ति और सौंदर्यबोध के कई स्तरों को स्पर्श कर लिया है, जो अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। उनकी साफ़–सुथरी कहन मन को छूती भी है और बाँधती भी है। जो कुछ भी उन्हें कहना है, उसे सीधा और साफ़ कह देना है। लाग–लपेट, घुमाव और राजनीति उनकी कहन का हिस्सा नहीं है। हाँ, उनका ध्यान तग़ज़्जुल पर भी बना ही रहता है। उनके यहाँ ग़ज़ल में यह साफगोई एक मूल्य की तरह है, जिसे वे बख़ूबी जीती हैं। स्त्री–जीवन के अनुभव और मर्म को उन्होंने ख़ासा जीते हुए ही अभिव्यक्त किया है, जो मन को भिगो जाता है। यह भिगो देना और भिगो ले जाना उनकी ताकत है, जिसे उन्हें सहेजने और सँभाले रखने की आवश्यकता है।

❑❑❑

कुछ आख़िरी नहीं होता : जीवन की अक्कासी

स्नेह सुधा नवल

'कुछ आखिरी नहीं होता', डॉ. ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश' द्वारा लिखित कविता संकलन है जिसमें इक्यावन कविताएँ हैं। संकलन की कविताएँ बताती हैं कि कवि का मन गाँव में भी है और शहर में भी, उन्हें जीवन का विशद अनुभव है। उनकी कविताओं में जाहिर होता है कि वे एक समाज–शास्त्री भी हैं, मनोवैज्ञानिक भी हैं और दार्शनिक भी। उनके संकलन में जिन कविताओं ने मुझे प्रभावित किया, मैं उनके विषय में जो सोचती हूँ वही मेरी समीक्षा जानिए।

'आने वाली पीढ़ियाँ' एक ऐसी कविता है जिसमें एक सच्चा, सरल और सीधा मनुष्य अपने विषय में क्या सोचता है, इसमें दिया गया है। यह एक मनोविश्लेषणात्मक कविता है जिसमें कवि सोचता है कि आने वाली पीढ़ियों को हम क्या देकर जाएँगे। हमने पर्यावरण की रक्षा नहीं की, तालाब, झील सभी सूख रहे हैं, भूमि बंजर हो रही है, हमारे किए की सजा आने वाली पीढ़ी को मिलेगी–

मानव खड़ा अकेला आज/संगी–साथी –विहीन/कितने दिन जिएगा
जो फैलाया है खुद/ वह ज़हर कितने दिन पिएगा।?

'डामर की सड़क से बचते हुए' कवि का मन अपने बचपन के परिवेश को भूला नहीं। उसे शहर में रहते हुए बहुत समय हो गया है किंतु वह अपने गाँव की पगडंडी को भुला नहीं पाया। वह कच्ची नरम मिट्टी, शीतल हरियाली की याद में रहता है। डामर की सड़क के लिए वह सोचता है कि यह दूरी पैदा करती है। कवि को हरी गीली मिट्टी से जुड़ाव है वह पगडंडी को रिश्तों की धारा मानता है, उसे लगता है कि डामर की सड़क रिश्तों को खा जाती है–

डामर की सड़क जहाँ जाती है/वहाँ से कोई लौटता नहीं/ न बेटा, न पोता, न घर, न लुगाई, न लोग।

'शाम सुनहरी' में कवि चिड़ियों के माध्यम से बताना चाहता है कि क्यों आजकल मनुष्य इतनी इच्छाएँ पाल लेता है और उन्हें पूरा करने की होड़ में लगा रहता है। उसे लगता है कि चिड़िया भी चहचहाते हुए यही कह रही है–

शाम सुनहरी में/ सतरंगा आकाश है/ निहारें कभी पल दो पल निकालकर।

'आज और कल' इस कविता में– कवि नई पीढ़ी कोदेखकर सोचता है कि यह पीढ़ी बिना कुछ किए सब कुछ पाना चाहती है वह पीढ़ी को संबोधित करते हुए लिखता है–

आज सब पा लोगे/तो/कल भोर की किरण/इतनी मधुर कैसे होगी?

'कविता लेखन' जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है कि कवि कविता लेखन के विषय में

कुछ आख़िरी नहीं होता 'कविता संग्रह'/ लेखक : डॉ. ओम प्रकाश शर्मा/प्रकाशन–77/1 ईस्ट आजाद नगर, दिल्ली–51/प्रकाशन वर्ष–2019/ कुल पृष्ठ–88/ मूल्य – ₹295/–

बताना चाहता है। वह क्यों लिख रहा है? उसके मन में कुछ प्रश्न उठते हैं और वह उनके उत्तर चाहता है जिनकी तलाश का रास्ता उसे कविता लगती है–

कविता समस्याओं से/दो चार हाथ करती है/कई बार उन्हें/और भी उलझा देती है।

'मंझधार' कविता में संतोष को महत्व दिया गया है। कवि के मन में अधिक की अभिलाषा नहीं है केवल उसकी ज़रूरत जितने से पूरी हो जाए उतना ही उसे चाहिए–

जरूरी नहीं/अमरता का वर मिले/चंद हसीन लम्हें भी पर्याप्त हैं।

'पहचान' कविता में आज का मानव जिन आधुनिक उपकरणों के बीच फँसा हुआ है उससे उबरना कठिन होता जा रहा है। 'पक्षी और मैं' कविता में वह देखता है कि चिड़िया अपने बच्चे को चोंच से खाना खिलाती है और एक दिन पंख आते ही वह उड़ जाती है।

लता वहीं है/वैसे ही/पक्षी भी वैसे ही हैं/मैं भी वैसा ही हूँ।
जैसा मैं था।

'खुश कौन' कवि का ग्रामीण मन उदास है। उसे लगता है कि गाँव के लोग क्यों छोटी–मोटी नौकरियों के लिए शहर गए हैं कोई उसे खुश नज़र नहीं आता। 'रोशनी की औलादें' कविता में कवि अपने बचपन को याद करता है जब रात को चारपाई पर लेटकर चाँद और तारों को देखता था। लेकिन अब–

उन्हें कभी पता नहीं चलेगा/कि/रात में निर्मल, शीतल आकाश/सुच्चे मोतियों की लड़ियों के/सजाता था बाज़ार।

कवि अपने जीवन के उस अंश को नहीं भूल पाता। उसे अतीत के दिन ही सुनहरे लगते हैं। अतीत ही उसके मन में सदा बसा रहता है।

'जीवन की टेर' कविता में भी कवि अतीत में जीता है लेकिन वह वर्तमान के महत्व को भी भली–भाँति पहचान रहा है–

इस संसार को निहारो/इसमें रहो/जो एकदम तुम्हारे सामने है/और/तुम्हें टेर रहा है।

'शहर में' इस कविता में कवि इस विसंगति को बताता है कि शहर में किसी के बिना काम मिलना आसान नहीं है वह सबसे मिलना चाहता है– शहरी परिवेश में सब अपने आप में रहते हैं, खुलते नहीं।

'क्रैच' में शहरी व्यस्तता का चिंतन है। शहर में पति और पत्नी दोनों ही नौकरी करते हैं वह अपने बच्चों को सुबह से शाम तक के लिए क्रैच में छोड़ आते हैं। कवि को अपना बचपन याद आता है, जब वह अपनी दादी की गोद में छिप जाता था और दादी उसके माता–पिता पर गुस्सा करती थी।

'बात और बात' यह बहुत छोटी सी कविता है किंतु बहुत भावपूर्ण है और कवि शीर्षक कविता में अपने को चिरनिर्वासित मानता है, 'कुछ आखिरी नहीं होता' यह पुस्तक की शीर्षक कविता है जिसमें कवि बताता है कि कुछ भी अंतिम नहीं होता, हमें निराश नहीं होना चाहिए, मंज़िल पा लेने के बाद दूसरी मंजिल दिखाई देने लगती है। इस प्रकार कवि आशावाद को प्रश्रय देता है।

हर सपना एक मंज़िल होती है/और कोई मंज़िल आख़िरी नहीं होती/क्योंकि मंज़िल के बाद एक और मंज़िल होती है।

'दृष्टि उन्मेष' में प्रकृति के पूर्ण सौंदर्य को देखने के लिए कहा गया है। प्रकृति का उन्मुक्त स्वभाव उसकी अनंतता को देखने की दुहाई देता है। 'अनपढ़ लोग' में भी प्रकृति का महत्व है। जो प्रकृति से जीवन का पाठ नहीं पढ़ता वह अनपढ़ है। 'खेन' कविता में कवि इस तथ्य को परोक्ष ढंग से उन लेखकों पर व्यंग्य करता है तो आम जन की पीड़ा बिना जाने उन पर कलम चलाता है। 'भविष्य' में कवि इस विसंगति पर ध्यान दिलाता है कि हम क्यों आज के समय में पुराना ढूँढ़ते हैं। उसका प्रश्न है वह अतीत में है या भविष्य में? यह एक उत्कृष्ट कविता है जो सोचने को विवश करती है। 'नीद' भी एक विचारणीय कविता है जिसमें बचपन के जाने गए वैभव के सपनों को लोरी के रूप में सुनते हुए बालक सो जाता है, लेकिन बड़े होने पर जब यथार्थ सामने आता है और उसमें वह सब नहीं हो पाता जो लोरी द्वारा बताया गया था।

नई पीढ़ी जैसे– पुरानी चीजों को पसंद नहीं करते और नयापन चाहते हैं, यही बात रिश्तों में भी आ जाती है।

पर्यावरण के महत्व दिखाती कविता 'हवा बोली' को पढ़ कर भान हो जाता है कि कवि पर्यावरण का रक्षक है उसे लगता है मानो हवा उससे कहती हो कि तुम तो मलिन हो गए हो किंतु मुझे तो साफ रहने दो–

मैं तो रह लूँगी ज़िंदा/किसी तरह/तुम साँस लोगी लेकिन/किस धरा पर?

संकलन की अंतिम कविता 'बाँस का आत्म–कथ्य' है। यह एक प्रतीक कविता है जिसमें बाँस के माध्यम से मनुष्य को प्रेरणा दी गई है कि जैसे बाँस सब कुछ अपने भीतर समा लेता है चाहे दर्द हो? या कोई राज़ वैसे ही हमें– भीहोना चाहिए–

बतकही होती है क्या/प्रकट नहीं करता कभी/समा लेता हूँ भीतर ही भीतर/पीड़ा, दर्द और राज/पी जाने का माद्दा है मुझमें।

डॉ. ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश' की कविताएँ ज़मीन से जुड़ी हुई हैं, जनजीवन से जुड़ी हैं और उनमें निहित ग्रामीण परिवेश की कल्पना कवि शहर में सदा करता रहता है। इस संकलन की कविताएँ पाठक को बहुत कुछ सोचने पर विवश कर देती हैं। रिश्तों को इन कविताओं में बहुत महत्व दिया गया है। मनुष्य का रिश्ता जैसा मुनष्य के साथ हो वैसा ही रिश्ता प्रकृति के साथ भी हो, यह कवि की उच्च भावना है।

डॉ. प्रकाश की शैली आत्मीय है। उनकी भाषा सहज होते हुए भी साहित्यिक उन्मेष की भाषा का रूप गढ़ती है। उनका विज़न बहुत विस्तृत है, जहाँ समस्त जीवों पर समदर्शिता उन्हें बहुत महत्वपूर्ण लगती है।

पहली से आख़िरी कविता तक पढ़ने पर यही लगा कि सच में 'कुछ आख़िरी नहीं होता'।

❑❑❑

समय को सही परिप्रेक्ष्य देने की कोशिश

जितेंद्र श्रीवास्तव

आचार्य जगमोहन सिंह राजपूत अंतर–राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान हैं। शिक्षा और समाज चिंतन उनका मुख्य क्षेत्र रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 150वें जन्मोत्सव के अवसर पर प्रकाशित उनकी पुस्तक 'गांधी को समझने का यही समय' कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यह बिल्कुल सही है कि समय ज्यों–ज्यों जटिल होता जा रहा है, भारतीयता के भाव की जरूरत बढ़ती जा रही है और कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीयता के उस भाव को पाने के लिए महात्मा गांधी से अधिक प्रासंगिक दार्शनिक महामानव कोई दूसरा नहीं है। उनके विचार गहन अंधियारे में उस आकाशदीप की तरह हैं जिसकी रोशनी में मार्ग से भटका हुआ नाविक भी किनारा पा जाता है। प्रो. राजपूत गांधी जी को समझने और समझाने के लिए निकट अतीत और वर्तमान के बीच वैचारिक आवाजाही करते हैं। वे समकालीन समय और समाज की भीषण चिंताओं और शंकाओं का गांधी जी के विचारों के माध्यम से समाधान निकालने की श्लाघ्य कोशिश करते हैं।

यह पुस्तक चौबीस अध्यायों में योजनाबद्ध ढंग से विभाजित है। पहले अध्याय में वे गांधी जी की सार्वभौम उपस्थिति को रेखांकित करते हुए उनके महात्मा बनने की कठिन यात्रा को उद्देश्यपूर्ण ढंग से सामने रखते हैं। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अपने विद्यार्थी जीवन और तत्कालीन वैचारिक गहमागहमी को याद करते हुए वर्तमान की स्थिति पर उदास भी होते हैं। स्वाधीनता की कोख से जन्में जीवनमूल्यों के बिला जाने की गहरी पीड़ा इस किताब में है। वे महात्मा गांधी जी के उस कथन को एक महामंत्र की तरह अपने पाठकों के समक्ष रखते हैं जिसमें गांधी जी कहते हैं– "भारत अपने मूल रूप में कर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं।" कहना होगा कि नए भारत के निर्माण में गांधी जी के इसी प्रकार के अनेक प्रेरक मंत्र और उनके जीवन प्रसंग काम आएँगे।

शिक्षा और शिक्षा व्यवस्था को लेकर इस पुस्तक में गहन चिंतन–मनन है। 'शिक्षा से अपेक्षाएँ', 'गांधी, अध्यापक और शिक्षा नीति', 'शिक्षा में परिवर्तन की असीमित आवश्यकताएँ', 'भविष्य के लिए शिक्षा', 'शिक्षा, शिक्षा दर्शन और समाज' तथा 'शिक्षा का मूल तात्पर्य' जैसे अध्याय/आलेख इस पुस्तक की सार्थकता और महत्ता को स्वयंसिद्ध कर देते हैं। प्रो. राजपूत की बड़ी और गहरी चिंता है कि विकास की किसी आँधी में न गाँव विस्मृत हो न गांधी। इस पुस्तक में बीच–बीच में गांधी वांग्मय से चुने हुए ऐसे अंश दिए गए हैं जो पाठक की चिंतन प्रक्रिया में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करते हैं। प्रो. राजपूत गांधी जी के

गांधी को समझने का यही समय/लेखक : जनमोहन सिंह राजपूत/प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली/संस्करण–2021/कुल पृष्ठ–176/ मूल्य–₹400/–

अप्रैल, 1922 के एक पत्र के हवाले से रेखांकित करते हैं कि गांधी जी को इस बात का अनुमान था कि स्वाधीनता के बाद भी उनके विचारों को व्यवहार में लाने में कई कठिनाइयाँ सामने आएँगी। हम सब जानते हैं कि वे कठिनाइयाँ आईं कदाचित अब भी हैं। पुस्तक के एक अध्याय 'विकास की आँधी, न गाँव की न गांधी' में वे गहरा क्षोभ व्यक्त करते हैं। वे लिखते हैं– गाँव से निकलकर शहरों में पढ़ने गए अधिकांश युवा भी यदि वहीं कुछ कार्य कर सके तो शहर जाकर वहीं के रंग में रंगकर; वहीं के हो गए! अनेकानेक गाँव सुनसान हो गए। कहना होगा कि यह हमारे युग का ऐसा घाव है जिसपर कोई मरहम काम नहीं करता। इसी निबंध में वे किसानों और गाँवों के संबंध में गांधी जी के मंतव्यों को याद करते हैं। उनका यह मानना उचित लगता है कि यदि हम सबने गांधी जी को समझते हुए आचरण किया होता तो ये दुर्दिन न देखने पड़ते।

इस पुस्तक में गांधी जी के शिक्षा संबंधी विचारों की न सिर्फ व्याख्या है बल्कि अलग से स्वतंत्र पृष्ठों पर उनके शिक्षा संबंधी विचारों को उद्धृत भी किया गया है। ऐसे ही एक विचार को यहाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण करना कठिन है। गांधी जी का मानना था कि– "आजकल के मामूली जीवन में, जिसमें शिक्षक और प्रोफेसर केवल उतना ही काम करते हैं जितनी उन्हें तनख्वाह मिलती है, उनके पास इतना समय नहीं है कि वे कक्षा से बाहर विद्यार्थियों को समय दे सकें और यही चीज आजकल के विद्यार्थियों के जीवन तथा चरित्र के विकास में बड़ी बाधा है।" अलग से रेखांकित करने की जरूरत नहीं है कि जब कोई लेखक किसी महापुरुष की बातों को अपनी पुस्तक में शामिल करता है तो उसका उद्देश्य बहुत स्पष्ट होता है। वह वैसा ही अपने समय में देखना चाहता है। शिक्षा व्यवस्था को लेकर जो प्रतिबद्धता और दूरदृष्टि प्रो. राजपूत में है वह इस पुस्तक में सुंदर ढंग से अभिव्यक्त हुई है।

अपनी इस पुस्तक में प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत अध्यापक और शिक्षा नीति पर तो खुलकर बात करते ही हैं। वे बल देकर कहते हैं कि गांधी जी का यह मानना बिल्कुल उचित था कि "सच्ची शिक्षा का यह अर्थ नहीं है कि दिमाग में बहुत सी बातें भर दी जाएँ या विविध पुस्तकें पढ़कर परीक्षाएँ पास कर ली जाएँ, प्रत्युत उसका अर्थ है चरित्र गठन।" यह पूरी पुस्तक इसी प्रकार गांधी जी की समकालीन प्रासंगिकता पर बात करती है। यह कैसी विडंबना है कि हम लोग गांधी जी की ओर से मुँह मोड़े पश्चिम की ओर ताकते रहे। जाहिर है ऐसे में वास्तविक शिक्षा नहीं मिलनी थी और वह मिली भी नहीं। निश्चय ही प्रत्येक भारतीय को जीवन में कम से कम एक बार 'हिंदी स्वराज' का पारायण अवश्य करना चाहिए। वह सिर्फ एक किताब नहीं, भारत निर्माण का दर्शन है।

किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित यह पुस्तक हमारे समय में शिक्षा और समाज कार्यों से जुड़े लोगों के लिए एक आईने की तरह है।

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल, 56, अशोक नगर, अधारताल जबलपुर, मध्य प्रदेश–482004, ईमेल–tnshukla13@gmail.com, मो.– 9425044685
2. प्रो. संध्या वात्स्यायन, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, ईमेल–dr.sandhyavats@gmail.com मो.– 9911115352
3. डॉ. नीलम सिंह,सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, ईमेल–nelulns@gmail.com
4. डॉ. भावना मासीवाल,असिस्टेंट प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कुणीधार, मानिला, अल्मोड़ा, उत्तराखंड, ईमेल–bhawnasakura@gmail.com मो.– 8447105405
5. डॉ. मुन्ना लाल प्रसाद, रानीसती रोड, मौनीबाबा मंदिर के पास, गंगानगर, सिलीगुड़ी–5, दार्जिलिंग, पश्चिम बंगाल, ईमेल–munnalalprasad1@gmail.com मो.– 8617613569, 9434217250
6. सुश्री सुनिता चौधरी एवं डॉ. विशी शर्मा, महात्मा ज्योति राव फूले विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, ईमेल –sunitarsg02@gmail.com
7. श्री कृष्ण बिहारी पाठक, व्याख्याता हिंदी, तिरुपति नगर, हिंडौन सिटी, जिला–करौली, राजस्थान–322230
8. डॉ. निशा शर्मा, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी (सम विश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखंड–249407, ईमेल–nishi.tyagi@sharda.ac.in मो. – 9451989362
9. प्रो. मीरा सरीन, 45, सुलभ विहार, गैलाना रोड, आगरा–282007, ईमेल–omeerasarin@gmail.com मो. – 9927074329
10. सुश्री सविता धामा,मकान नं.–55, सेकेंड फ्लोर, राइट पोर्शन, गली नं. 19, ए–2 ब्लॉक, वेस्ट संत नगर, बुराड़ी, दिल्ली–110084, मो. – 7060080065
11. डॉ. मानसी रस्तोगी, 211/1, धरमजीत नगर कॉलोनी, आई टी आई सड़क, करोंदी, एस बी आई एटीएम के नजदीक, वाराणसी–221005, ईमेल–mansirastogi6@gmail.com मो– 9560750748
12. डॉ. कुमारी उर्वशी, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रांची विमेंस कॉलेज, रांची, झारखंड, ईमेल–urvashiashutosh@gmail.com मो.– 9955354365
13. डॉ. प्रदीप शर्मा 'स्नेही', 1448, सेक्टर–9, अंबाला शहर, हरियाणा–134003, मो. – 9896135105
14. सुश्री सुमन वाजपेयी,12, एकलव्य विहार, सेक्टर–13, रोहिणी, दिल्ली–110085, ईमेल–sumanbajipai@gmail.com मो.– 9810795705
15. श्री भगवान अटलानी, डी–183, मालवीय नगर, जयपुर–302017, ईमेल–bhagwanatlani@rediffmail.com मो.–9828400325

16. श्री अजय मलिक, आई–5, आई ब्लॉक, गोविंदपुरम, गाजियाबाद–201013

17. श्री रामदरश मिश्र, आर 38, वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059, मो.– 7303105299

18. डॉ. नरेश कुमार, जे–235, पटेल नगर प्रथम, गाजियाबाद–201001

19. श्री देवेंद्र कुमार मिश्रा, राजुल ड्रीम सिटी, ए–29 फर्स्ट फ्लोर, अमखेड़ा रोड, जबलपुर, मध्य प्रदेश–482004

20. श्री हेमंत गुप्ता, ए–101, जयश्री विहार, थेगड़ा पुलिया के पास, कैथून रोड, कोटा, राजस्थान–324003

21. डॉ. प्रकाश ज्ञानोबा जाधव, मराठी विभाग, प्रेमराज सारदा महाविद्यालय, अहमदनगर

22. डॉ. सुनीता मोटे, असो. प्रोफेसर, पदव्यूत्तर हिंदी विभाग एवं अनुसंधान केंद्र, न्यू आर्ट्स् कॉमर्स एंड साइंस कॉलेज, अहमदनगर

23. डॉ. गौरहरि दास, दास अनुभव, 378, बरमुंडा विलेज, भुवनेश्वर, ओडिशा–751003, ईमेल–gourahari60@gmail.com मो.– 9437077288, 9178467008

24. सुश्री सुरभि बेहेरा, मकान 'स्वरांजलि' गडसाही, पोस्ट–जांला, जिला–खोरधा, भुवनेश्वर–752054, ईमेल–surabhibehera@gmail.com

25. श्री कृष्ण शर्मा, 152/119, पक्की ढ़क्की, जम्मू–180001, मो.– 9682188713

26. श्री कमलेश भट्ट कमल, 1512, कारनेशन–2, गौड़ सौंदर्यम् अपार्टमेंट, ग्रेटर नोएडा वेस्ट, गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश–201318, ईमेल–kamlesh59@gmail.com मो.– 9968296694

27. डॉ. स्नेह सुधा नवल, 65 साक्षरा अपार्टमेंटस, ए–3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली–110063

28. प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव, हिंदी संकाय, मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–68, ईमेल–jitendra82003@gmail.com

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066

ई.मेल–chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय / महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए / दस वर्ष के लिए / बीस वर्ष के लिए दिनांक .... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक / पंचवर्षीय / दसवर्षीय / बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क .... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .... दिनांक .... द्वारा भेज रहा / रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : ....

पूरा पता : ....

....

....

मोबाइल / दूरभाष : ....

ई–मेल : ....

संबद्धता / व्यवसाय : ....

आयु : ....

पूरा पता जिस परपत्रिका: ....

प्रेषित की जाए : ....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वाषिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in – Quick Payment – Ministry (007 Higher Education)- Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

पंजी संख्या. 10648/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. इ. औ. 305-3-2022
700

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in
bhashaunit@gmail.com